मुहम्मद इलियास 'नवैद' गुन्नौरी

रुबाईकार खैयाम और रुबाइयों का उर्दू अनुवाद

हकीम खैयामी उमर जिसके पिता का नाम इब्राहीम था, फ़ारसी-काव्य में उमर खैयाम के नाम से प्रसिद्ध है। वे अपने युग का एक प्रसिद्ध दार्शनिक, सूफ़ी, हकीम, गणितज्ञ एवं ज्योतिषी थे। उमर खैयाम को प्रसिद्धि मिली उसकी रुबाइयों के आधार पर, जबकि उसके फ़ारसी कवि होने पर संदेह करने के लिए इतने प्रमाण हैं कि इनके प्रकाश में खैयाम दूर-दूर तक इन रुबाइयों का रचयिता ठहरता ही नहीं। कारण यह रहा कि अब तक मात्र अनुवाद के दर्पण में खैयाम और उसकी रुबाइयों का अध्ययन किया जाता रहा। अंतःसाक्ष्य का आश्रय लेने वाले विद्वान खैयाम के नाम से प्रसिद्ध रुबाइयों के शाब्दिक माया-जाल में फंसकर उससे आनंद प्राप्त करते रहे, उन्होंने कभी यह जानने का प्रयत्न ही नहीं किया कि खैयाम के नाम से प्रसिद्ध रुबाइयाँ क्या वास्तव में उसी की हैं? क्या खैयाम वास्तव में रुबाईकार था? इस समस्या के समाधान हेतु हमें सर्वप्रथम यह देखना होगा कि रुबाई काव्य विधा कहाँ से और कब शुरू हुई तथा खैयाम से पूर्व के ऐसे कौन से रुबाईकार हैं जिनकी रचनाएँ खैयाम के नाम से प्रसिद्ध हो गई होंगी।

जिस प्रकार पिंगल-शास्त्र के अनुसार वर्णिक एवं मात्रिक छंदों को वर्णों एवं मात्राओं के आधार पर पहचाना जाता है उसी प्रकार इल्म-ए-अरूज़ में बहरों को औज़ान, जिहाफ़ात अथवा अरकान के आधार पर जाना जाता है। रुबाई का वज़न ज्ञात होने के संबंध में यह कथा प्रसिद्ध हैः

गज़नैन या सुजिस्तान के किसी नगर में कुछ बच्चे अख़रोटों से गोलियों का खेल खेल रहे थे। एक अखरोट गुच्ची से दूर लुढ़क कर जाने लगा। बच्चा ख़ुशी से उछल पड़ा और उसके मुँह से निकला--''ग़लतां-ग़लतां हमीरवद तालिवेगो''। यह बच्चा ख़ानदाने

सफ़्फ़ारिया के प्रवर्तक याक़ूब सफ़्फ़ार का बेटा था। याक़ूब सफ़्फ़ार स्वयं शायर था। बच्चे की बात उसे पसंद आई। वह सोचता रहा, किंतु उसकी समझ में यह बात न आई कि वह मिस्राअ किस बह्र (छंद) में है। उसने अपने दरबारी कवियों अबदूल्फ़उजबी और इब्नुल काब को बुलाकर पूछा। उन्होंने चिंतन-मनन के बाद बताया कि वह वह्र-ए-हज़ज की एक शाख़ है और इस पंक्ति के साथ तीन पंक्तियाँ और जोड़ दीं। इस प्रकार ये दो शेर बने जो दो बीती कहलाए। यही दो बीती आगे चलकर तराना-ए-कौल, चहार-बीतीं और अंत में रुबाई के नाम से प्रसिद्ध हुई। यह कथा तीसरी शताब्दी के सातवें दशक की है, क्योंकि याक़ूब सफ़्फ़ार का समय 265 हि. बताया जाता है।

आश्चर्य की बात यह है कि खैयाम जैसे प्रसिद्ध शायर के जन्म एवं मृत्यु की तिथियाँ निर्धारित नहीं। अनुमान के आधार पर प्राप्त समस्त तिथियों में सैयद सुलैमान नदवी द्वारा निर्धारित तिथि अधिक युक्तिसंगत ज्ञात होती है। उन्होंने खैयाम का जन्म 440-41 हि. तथा मृत्यु 515 से 530 हि. तक का समय स्वीकार किया है। याक़ूब सफ्फ़ार से संबंधित कथा के आधार पर रुबाई खैयाम से लगभग 250 वर्ष पूर्व आरंभ हो चुकी थी। दीर्घावधि में ऐसे अनेक प्रसिद्ध शायर हुए हैं जिन्होंने मुख्य रूप से या सर्वाधिक रूप में रुबाई विधा को अपनाया। ऐसे प्रसिद्ध शायरों में बायजीद बस्तामी (मृत्यु चौथी शताब्दी का उत्तरार्द्ध), रोदकी (मृत्यु 304 हि. किंतु सुलेमान नदवी के अनुसार 339 हिजरी), अबूनस्र फ़ाराबी, अबू शकूर बलखी, बूअली सीना, बाबा ज़ाहिद हमदानी (मृत्यु 410 हि.), उस्जुदी (मृत्यु 432 हि.), उनसुरी (मृत्यु 441 हि.), शम्स-उल-मुआला, शेख़ अबुलसईद अबुल खैर, अली बिन हसन (मृत्यु 467 हि.), शैश्र अब्दुल्लाह अंसारी (मृत्यु 481 हि.), इमाम मुहम्मद ग़ज़ाली (मृत्यु 505 हि.) और उनके भाई अहमद ग़ज़ाली (मृत्यु 520 हि.) इत्यादि हैं। यही वे प्रसिद्ध रुबाईकार हैं जो खैयाम के पूर्वकालीन और उसके समकालीन थे। इन रुबाईकारों के साथ-साथ खैयाम की तथाकथित रुबाइयों पर भी दृष्टिपात करना अनिवार्य है। विभिन्न संग्रहों में इन रुबाइयों की संख्या 1200 से 5000 तक है। अनेक संकलित एवं संपादित संग्रहों का विवरण इस संबंध में प्रस्तुत करना अनिवार्य है।

फ़िट्ज़ेराल्ड ने 1858-60 ई. में अत्यंत परिश्रमपूर्वक जो संकलन प्रस्तुत किया उसमें इन रुबाइयों की संख्या केवल 75 थी। 937 हि. में एक संग्रह पेरिस से प्रकाशित हुआ। उसमें भी रुबाइयों की संख्या 75 ही थी।

ऑक्सफ़ोर्ड के एक पुस्तकालय में 865 हि. की लिखित एक प्रति है जो खैयाम की मृत्यु के लगभग 350 वर्ष बाद लिखी गई। उसमें रुबाइयों की संख्या 158 है। मोसियो निकोलस फ़्रांसीसी ने 1867 ई. में जो संग्रह पेरिस से प्रकाशित किया, उसमें

464 रुबाइयाँ है। व्हाइट फ़ील्ड (1883 ई.) के अनुसार 512, जान पाइन के अनुसार 548 और कैम्ब्रिज यूनिवर्सिटी की एक प्रति में 801 रुबाइयाँ हैं। डॉ. स्प्रंगर का मत है कि उन्होंने लखनऊ की एक प्रति में 400 रुबाइयां देखीं। एशियाटिक सोसाइटी की एक प्रति में 516, बांकीपुर पटना की एक प्रति में 604, सुलेमान नदवी (1351 हि.) की प्रति में 206, मिस जी.सी.ई. केडिल के अनुसार 1200, मुंशी जयनारायण वर्मा के अनुसार 500, वली उल्लाह बी.ए. के अनुसार 600 रुबाइयाँ हैं और मलक उल कलाम ने 764 रुबाइयों का अनुवाद प्रस्तुत किया है।

इस प्रकार लगभग तीस प्रतियाँ विभिन्न महानुभावों द्वारा संपादित, प्रकाशित अथवा हस्तलिखित रूप में प्राप्त हैं। इन प्रतियों के अध्ययन से यह तथ्य उजागर होता है कि वास्तव में इन प्रतियों की शुद्धता संदिग्ध है। यदि ऐसा नहीं होता तो खैयाम की रुबाइयाँ भी अन्य प्रसिद्ध रचनाओं के समान अपने शुद्ध, मौलिक एवं क्रमिक रूप में प्राप्त होतीं। शब्दों के उलट-फेर को प्रकाशन की भूल कहा जा सकता है किंतु प्रतियों के परस्पर क्रम में एकरूपता का अभाव यह प्रदर्शित करता है कि वास्तव में यह खैयाम की रचना नहीं।

खैयाम के नाम से अब तक रुबाइयों की जितनी भी प्रतियाँ प्राप्त हुई हैं उनमें से किसी पर भी कोई शीर्षक नहीं दिया गया जबकि खैयाम की अन्य लगभग एक दर्जन रचनाओं में एक भी रचना ऐसी नहीं जिसका कोई शीर्षक न हो। कितने आश्चर्य की बात है कि कवि अपनी इतनी सुंदर रचनाओं को कोई शीर्षक न दे। यह भी नहीं कि उसके समय में रुबाइयों को शीर्षक देने का चलन न था। शम्स-उल-मुआली की रुबाइयों का संग्रह ''तरब नामा'' और अत्तार की रुबाइयों का संग्रह ''मुख़्तारनामा'' इस तथ्य का प्रमाण है कि उस युग में रुबाई संग्रहों को भी शीर्षक प्रदान करने का चलन था। वास्तविकता यह है कि खैयाम ने दूसरों की सुंदर रुबाइयों का संकलन किया और दूसरों की रचनाओं को स्वयं शीर्षक देना उस योग्य व्यक्ति के बस की बात न थी।

खैयाम के रुबाईकार होने पर आलोचना करते समय उपलब्ध रुबाईकारों की रचनाओं का अध्ययन अनिवार्य है। खैयाम से पूर्व के रुबाईकारों में बहुत से ऐसे हैं जिनका साहित्य समय के अंधकूप में गर्त हो गया। इन महान शायरों का जो साहित्य उपलब्ध है उसी के आधार पर खैयाम की रुबाइयों का अध्ययन किया गया है। इन प्रसिद्ध रुबाईकारों की रचनाएँ (जो खैयाम से पूर्व के हैं) स्वयं खैयाम के नाम से संकलित संग्रहों में मौजूद हैं। ऐसी स्थिति में यही कहा जा सकता है कि खैयाम के नाम से प्रसिद्ध वे रुबाइयाँ जो उससे पूर्व के रुबाईकारों की रचनाएँ हैं, यह इंगित करती हैं कि खैयाम की रचनाएँ क्या थीं। यदि उससे पूर्व के रुबाईकारों का समस्त साहित्य

उपलब्ध होता तो खैयाम मात्र तथाकथित कवि ही कहलाते। खैयाम कवि था अथवा नहीं, इस संबंध में सर्वप्रथम वे तथ्य प्रकाश में लाना अनिवार्य हैं जिनके आधार पर आज तक खैयाम को कवि अथवा रुबाईकार के रूप में स्वीकार किया जाता रहा है।

खैयाम के जीवन काल ही में 475 हि. में केकाऊस बिन असकेंदर बिन काऊस बिन वरामगरि रईस जरजान की रचना ''काबूसनामा'' में खैयाम के दो शेर दिए गए हैं। नुज़हत-उल-अरवाह (580 हि. से 611 हि. के बीच) में शहज़ोरी ने खैयाम की दो रुबाइयों के साथ उसे अरबी-फ़ारसी का शायर स्वीकार किया है।

'तारीख़-उल-हुकमा' (624 हि. से 646 हि. के बीच) में खैयाम के अरबी भाषा के कुछ शेर दिए गए हैं। खरी दतुलक़स्र (572 हि.) उस युग के शायरों के जीवन वृतांत पर आधारित पुस्तक है। इसमें अरबी के कुछ शेर ख़य्याम के जीवन वृतांत के साथ दिए गए हैं।

हो सकता है कि खैयाम कवि रहा हो किंतु केवल 'काबूसनामा' के दो शेरों के आधार पर उसे शायर स्वीकार कर लेना कोई प्रामाणिक बात नहीं।

शहज़ोरी की रचना में खैयाम के नाम से जिन दो रुबाइयों की चर्चा की गई है उनमें से एक रुबाई सनाई के नाम से जुड़ी है। दूसरी को 'तज़किरः--ए-आतिशकद' में सुल्तान अबू यज़ीद की रचना बताया गया है। मीर वली अल्लाह बी.ए. इस रुबाई को 'कतरां बिन मंसूर हिरमिज़ी' की रचना स्वीकार करते हैं।

तीसरा प्रमाण 'तारीख़-उल-हुकमा' का है जिसे 624 हि. से 646 हि. के बीच की रचना स्वीकार किया जाता है। यह रचना खैयाम से लगभग सौ वर्ष बाद की है। इतनी दीर्घावधि के पश्चात मौखिक और प्रसिद्ध बातों का यथावत रूप में रह जाना संदिग्ध है। इसके साथ यह बात भी विचार करने योग्य है कि इसमें खैयाम के अरबी के शेरों का उल्लेख किया गया है। किसी फ़ारसी शेर के संबंध में कोई सूचना नहीं दी गई, जबकि रुबाइयाँ फ़ारसी में हैं। शहज़ोरी ने अरबी के जो शेर खैयाम के नाम से प्रस्तुत किए हैं उनमें से तीन शेर अबू सुहैत सईद बिन अब्दुल अज़ोज़ नीली के बताए जाते हैं।

इस प्रकार जो तथ्य खैयाम को कवि सिद्ध करने के लिए विद्वानों ने प्रस्तुत किए हैं, वे अत्यंत दुर्बल है। उन पर विश्वास करने का कोई कारण समझ में नहीं आता। दूसरी ओर ध्यान देने योग्य बात यह है कि ''निज़ामी अरूज़ी समरकंदी'' (जो खैयाम का शिष्य था) अपनी रचना में खैयाम को गणितज्ञ एवं ज्योतिषी के रूप में मान्यता प्रदान करता है -- वह कहीं भी अपने गुरु को शायर नहीं बताता। इसी प्रकार बहीक़ी (जो खैयाम का समकालीन था) खैयाम का वर्णन नहीं करता। खैयाम की हस्तलिखित

अथवा उसके समकालीन किसी अन्य द्वारा लिखित कोई प्रति अब तक प्राप्त नहीं हुई। खैयाम के नाम से प्रसिद्ध रुबाइयों की संख्या आज तक निश्चित न हो सकी किंतु जितनी रुबाइयाँ खैयाम के नाम से प्रसिद्ध हैं उनमें से लगभग दो सौ रुबाइयाँ ऐसी हैं जो खैयाम के पूर्व के शायरों के संग्रहों में यथावत मौजूद हैं। खैयाम से संबंधित रुबाइयों में मिलावट, संदेह और अन्य कारणों की चर्चा करते हुए अब्दुल बारी आसी ने लिखा है कि खैयाम को अच्छी रुबाइयों के संकलन का शौक़ था, जो बाद में उसी के नाम से प्रसिद्ध हो गईं। वे खैयाम को कवि भी स्वीकार नहीं करते। उनके शब्दों में -- ''मेरा ख़याल है कि इसके बाद अगर यह कह दिया जाए कि खैयाम ने अपने मुआसिर (समकालीन) या मुतकद्दिमीन (पूर्वकालीन) की रुबाइयों पर मुशतमिल (आधारित) एक मजमूआ (संग्रह) जमा किया था और उसमें शायद कुछ अपनी भी रुबाइयाँ शरीक कर दी थीं या अपनी बिलकुल नहीं थीं तो इस पर बहस करना हठधर्मी से ज़्यादा... खैयाम के रुबाइयों होने के क़दीम से क़दीम (प्राचीनतम) गवाह भी जिरह में बेकार साबित होते हैं।''

इन तथ्यों के आलोक में यह कहने में कोई संकोच नहीं कि तथाकथित रुबाईकार खैयाम केवल रुबाइयों में रुचि रखता था। हो सकता है कि वह शायर रहा हो किंतु उसे फ़ारसी का शायर और मुख्य रूप से रुबाईकार स्वीकार करने का कोई उपयुक्त एवं सबल प्रमाण नहीं। एक-दो स्थानों पर उसे अरबी का कवि कहा गया है। एक स्थान पर उसे फ़ारसी का कवि बताते हुए फ़ारसी का एक क़ताअ उसके नाम से जोड़ा गया है किंतु वली उल्लाह बी.ए. ने इस क़ताअ के संबंध में कहा है कि उन्होंने यह क़ताअ हाफ़िज के दीवान की हस्तलिखित प्रति में हाफ़िज के नाम से देखा।

तर्क-वितर्क से यह तो स्वीकार किया जा सकता है कि खैयाम शायर भी था किंतु वह रुबाईकार भी था, इस बात को तर्कसंगत बुद्धि स्वीकार नहीं करती क्योंकि वे समस्त प्रमाण अथवा तर्क जो अब तक उसे रुबाईकार सिद्ध करने के लिए प्रस्तुत किए जाते हैं, खोखले और बेबुनियाद हैं। वस्तुतः वह रुबाइयों का प्रेमी था, रुबाईकार नहीं। अपनी रुचि के अनुरूप उसने अपने पूर्वकालीन तथा समकालीन रुबाईकारों की मनभावन रुबाइयों को संकलित किया था, जो उसकी मृत्यु के काफ़ी समय के पश्चात् उसी के नाम से प्रसिद्ध हो गईं। अध्ययन के बीच खैयाम के नाम से प्रसिद्ध रुबाइयों में मुझे अब तक लगभग ऐसी दो सौ रुबाइयाँ प्राप्त हुई हैं जो खैयाम के पूर्ववर्ती और समकालीन रुबाईकारों की कृतियों में यथावत मौजूद हैं। इतनी बड़ी संख्या में प्राप्त अन्य रुबाईकारों की रचनाएँ खैयाम के रुबाईकार न होने के संदेह को विश्वास में परिवर्तित करने के लिए पर्याप्त हैं।

विश्व की लगभग सभी सभ्य और प्रचलित भाषाओं में इन रुबाइयों के अनुवाद

किए जा चुके हैं। उर्दू में भी अनेक योग्य अनुवादकों ने इस विषय में सराहनीय कार्य किए हैं। विषय से संबंधित अनेक अनुवादों में से हमने निबंध के विस्तार को नियंत्रण में रखने के विचार से केवल तीन अनुवादों का चयन किया है, जिनमें एक स्वतंत्रता से पूर्व का है और दो स्वतंत्रता के पश्चात के हैं।

स्वतंत्रता से पूर्व का अनुवाद मलकुल कलाम सैयद लाइक़ हुसैन साहब क़वी अमरोहवी द्वारा किया गया है जिसका प्रथम संस्करण मार्च, 1924 ई. में और द्वितीय संस्करण अप्रैल, 1930 ई. में शाहजहानी प्रेस दिल्ली से प्रकाशित हुआ। इसके संपादक कुर्बान अली बिस्मिल हैं। स्वतंत्रता के पश्चात के अनुवादों में पहला अनुवाद इमामुल हिंद प्रोफ़ेसर 'वाक़िफ' का है, जो जनवरी 1960 ई. में सचदेवा प्रेस अजमेरी गेट दिल्ली से प्रकाशित एवं 'मशवरा बुक डिपो' गांधी नगर दिल्ली से प्रसारित हुआ। दूसरा अनुवाद पाकिस्तान के उमर खैयाम अब्दुल हमीद 'अदम' का है, जो स्वतंत्रता के पश्चात जुलाई सन् 1960 में 'कोहनूर प्रेस' दिल्ली से प्रकाशित हुआ। अदम स्वयं फ़ारसी और उर्दू के एक प्रसिद्ध कवि हैं। हो सकता है कि उर्दू-फ़ारसी साहित्य में रुचि रखने वाले पाठकगण अदम के नाम से परिचित न हों किंतु ऐसा होना आश्चर्य का विषय है कि उन्होंने अदम का यह क़तअ पढ़ा या सुना न हो :

शिकन न डाल जिबीं पर शराब देते हुए।
यह मुस्कुराती हुई चीज़ मुस्कुरा के पिला।।
सुरूर चीज़ की मिक़दार पर नहीं मोक्फ़।
शराब कम है तो साक़ी नज़र मिला के पिला।।

फ़ारसी लिपि के नागरी लिप्यंतरण की समस्या को ध्यान में रखते हुए हमने मूल रुबाइयों को इंगित मात्र प्रस्तुत किया है किंतु तीनों अनुवादकों के अनुवाद पूर्ण रूप में नागरी लिपि में प्रस्तुत किए हैं जिससे तीनों अनुवादकों की अनूदित रचनाएँ तुलनात्मक दृष्टि से सम्मुख रहे।

मूल--आमदे सहरे... पैमानाए-मा।

इस रुबाई में संसार के क्षणिक एवं नश्वर होने पर प्रकाश डाला गया है। क़वी साहब ने इसका अनुवाद इस प्रकार किया है :

एक सुबह निदा आई यह मयाख़ाने से।
ए रिंदे ख़राबात मेरे दीवाने।।
कब्ल इसके मये नाव से भर ले सागर।
पैमाना-ए-तन से बादा-ए-जां छलके।

वाक़िफ़ साहब के अनुसार :

हुई सहर तो पुकारा यह पीरे मयख़ाना।
भरे वह मस्त कहाँ है सदा का दीवाना।।
बुलाना उसको कि जल्दी से उसका जाम भरें।
मुबादा मौत न भर डाले उसका पैमाना।।

और अदम के द्वारा किया गया अनुवाद इस प्रकार है :

कल सुबह ख़राबात से आई यह निदा।
उठ जाग सुराही मये खन्दां की उठा।।
कब टूट के हो जाता है रेज़ा-रेज़ा।
पैमाना-ए-हस्ती का नहीं कोई पता।।

क़वी साहब का अनुवाद मूल से थोड़ा भटक गया है। पहली पंक्ति 'एक सुबह' में 'एक' शब्द अनुवादक ने अपनी ओर से जोड़ दिया है और दूसरी पंक्ति में 'ए रिंद' शब्द का प्रयोग किया है जबकि मूल में 'काए' शब्द का प्रयोग हुआ है जिसका अर्थ है 'कहाँ।' इसी प्रकार की भूलें अन्य पंक्तियों में भी परिलक्षित होती हैं।

प्रोफ़ेसर वाक़िफ़ ने इस रुबाई का सुंदर अनुवाद किया है। उन्होंने वास्तव में मूल के साथ पूर्ण न्याय किया है जबकि अदम ने 'एक सुबह' के स्थान पर 'कल सुबह' का प्रयोग किया है। ऐसा प्रतीत होता है कि अदम का यह अनुवाद मूल से अलग हटकर मात्र अपनी योग्यता का परिचायक है। इस अनुवाद में वाक़िफ़ ने एक-एक शब्द चुनकर मोती से पिरोए हैं। उन्होंने 'कल' और 'एक सुबह' के स्थान पर 'हुई सहर' का प्रयोग किया है। इसके अतिरिक्त अन्य दोनों अनुवादकों ने 'बरख़ैज़' शब्द पर बिलकुल ध्यान नहीं दिया जो कि रुबाई में परम सौंदर्य उत्पन्न कर रहा है। वाक़िफ़ ने 'बुलाना उसको कि जल्दी से उसका जाम भरे' कहकर मूल की रक्षा की है। एक अन्य उदाहरण द्रष्टव्य है :

मूल--ने को आ बदी... बेचारा हर अस्त।

इस रुबाई में भाग्यवादी स्वभाव अथवा दर्शन पर प्रकाश डाला गया है। क़वी अमरोही ने इसका उर्दू अनुवाद निम्न रूप में प्रस्तुत किया है :

तीनत में बशर की है नेकी-ओ-बदी।
और कदरा कज़ा में हज़म है नेकी-ओ-बदी।।
है अक्ल कि चर्ख़ के हवाले मत कर।
बेचारा हज़ार बार तुझसे है वही।।

वाक़िफ़ के अनुसार :

इंसान को तक़दीर से क्या चारा है।

गर अमरे मशीयत नहीं नाकारा है।।
इल्ज़ाम जमाने का फ़लक के माथे।
जो आप ही मजबूर है बेचारा है।।

और अदम ने निम्न रूप में इस अनुवाद को प्रस्तुत किया है :

नेको बद जो तेरे निहाद में है।
शादी-ओ ग़म जो तेरी याद में है।।
इसको मंसूब कर न गई से।
वह तो खुद सीले गर्दो बाद में है।।

प्रत्येक अनुवादक की अपनी-अपनी शैली होती है और उसी के आधार पर वह अनुवाद करता है। क़वी ने इस रुबाई का सुंदर अनुवाद प्रस्तुत करने का प्रयास किया है किंतु वाक़िफ़ और अदम इस रुबाई का अनुवाद मात्र भावात्मक दृष्टिकोण से प्रस्तुत करने के प्रयास में सफल न हो सके। क़वी ने प्रयास तो किया किंतु आकर्षक शब्दावली के अभाव में अनुवाद 'मक्खी पर मक्खी मारने' का सिद्धांत बनकर रह गया। एक और सुंदर रुबाई अनुवाद की कसौटी के रूप में देखा जा सकता है :

मूल--हर सब्ज़ा... रस्ता अस्त।

क़वी द्वारा प्रस्तुत अनवुाद :

जो सब्ज़ा कि दरिया के किनारे पे उगा।
गोया वह हुआ लबे मलक से पैदा।।
ठुकरा न सरे सब्ज़ा को ज़िल्लत से कभी।
यह लाला रुख़ों की ख़ाक से ख़ल्क़ हुआ।।

वाक़िफ़ के अनुसार :

यह हसीं सब्ज़ा जिसे करने चले हो पामाल।
हुसने मदफ़्न के ज़र्रात से है आज निहाल।।
इतनी बेफ़िक्री-ओ तहकीर से रोंदो न इसे।
इसकी हर पत्ती में ताबिन्दा है एक नूरो जमाल।।

और अदम का प्रयास :

साहिले जू के सुंबुलो रीहाँ।
हसरते रफ़तगाँ के डेरे हैं।।
पाँव आहिस्ता रख कि रस्ते में।
दर्द मर्दों ने दिल बिखेरे हैं।।

इस रुबाई में रचयिता ने अभिमान के प्रति संकेत किया है। इसके अनुवाद के प्रस्तुतीकरण में क़वी मूल के अधिक निकट हैं। उन्होंने मूल को आत्मसात कर सफल एवं सुंदर अनुवाद करने का प्रयास किया है। वाक़िफ़ और अदम ने भावनात्मक धरातल पर अनुवाद प्रस्तुत किए हैं। यदि क़वी के अनुवाद में शुद्ध, स्वच्छ एवं प्रवाहपूर्ण शब्दावली का अभाव और मूल की उचित पकड़ है तो वाक़िफ़ और अदम के अनुवादों में मूल से मुक्ति किंतु शब्दावली का सुंदर प्रयोग है।

तुलना की कसौटी पर एक और प्रसिद्ध रुबाई के अनुवादों को परखा जा सकता है। यह रुबाई निष्काम और निष्फल कर्म दर्शन से ओत-प्रोत है। तीनों अनुवादकों ने अपने-अपने ढंग से इसके अनुवाद को सुंदर, मनोरम एवं मोहक बनाने का प्रयास किया है। उदाहरणस्वरूप तीनों अनुवाद द्रष्टव्य हैं :

मूल--मन बंदा... कुजा अस्त।।

क़वी के अनुसार :

बंदा-ए-आसी हूँ यारब है रज़ा तेरी कहाँ।
दिल मेरा तारीक है नूरे ज़िया तेरी कहाँ।।
गर इबादत के सिले में तूने जन्नत दी मुझे।
यह मेरी उजरत हुई शाने अता तेरी कहाँ।।

इसी रुबाई के अनुवाद को वाक़िफ़ अपने ढंग से प्रस्तुत करते हैं :

मैं अब्दे गुनहगार हूँ मोहताजे रज़ा।
तारीक़ है दिल बख़्श मुझे नूरे सफ़ा।।
ताअत पै अगर देता है जन्नत मौला।
मज़दूरी हुई यह तो कहाँ तेरी अता।।

और अदम अपनी प्रमुख पद्धति के आधार पर इस अनुवाद को निम्न रूप में प्रस्तुत करते हैं :

एक ख़ता हो गई तो राँदे गए।
इतने मक़हूर हो गए इन्साँ।।
खुल्द अगर है सिला अताअत का।
फिर तो मज़दूर हो गए इन्साँ।।

इस रुबाई का अनुवाद तीनों अनुवादकों ने अत्यंत सुंदर एवं सुनियोजित ढंग से किया है। मूल को आत्मसात कर अनुवाद के प्रस्तुतीकरण की शैली तीनों में सफल अनुवादक के गुणों को प्रकट करती है। क़वी ने मूल का अनूदित रूप इस प्रकार प्रस्तुत

किया है कि अनुवाद स्वयं मूल प्रतीत होता है। वाक़िफ़ ने भी अनुवाद को सफल और आकर्षक बनाने का प्रयास किया है। फलस्वरूप उसमें कहीं-कहीं प्रवाह में बाधा उत्पन्न हो गई है, फिर भी अनुवाद की सुंदरता एवं उसके आकर्षण पर अधिक प्रभाव नहीं पड़ा है। इस रुबाई के अनुवाद में सर्वाधिक प्रवाह एवं आकर्षण अदम के अनुवाद में दिखाई देता है किंतु उन्होंने आरंभिक दो पंक्तियों को एकदम व्यंजना के माध्यम से प्रस्तुत किया है जिसके कारण साधारण पाठक सहज रूप से अनुवाद को नहीं समझ पाते।

उपर्युक्त अनुवादकों की अनूदित रचनाओं के कतिपय उदाहरणों को प्रस्तुत करने से हमारा तात्पर्य इनकी भाषा-शैली, प्रक्रिया एवं प्रवाह को परस्पर तुलनात्मक एवं सफलता की कसौटी पर परखने से है।

भाषा जितनी प्रौढ़ होगी उतनी ही सुंदर परिपक्व, परिमार्जित एवं धनी होगी। प्रौढ़ता के साथ-साथ उसकी शब्दावली में वृद्धि और विकास का होना स्वाभाविक है। तद्भव और देशज शब्दावली के अतिरिक्त विदेशी शब्दावली भी भाषा के विकास एवं उसकी क्षमता बढ़ाने में सहायक सिद्ध होती है। शब्दावली में वृद्धि से भाषा में सहजता एवं प्रवाह उत्पन्न होता है। शैली का प्रयोग अनुवादक की अपनी प्रवृत्ति एवं अनुसरण पर निर्भर करता है। वह जिस शैली को विषयानुकूल और सफलता के अधिक निकट समझता है, उसी का उपयोग करता है या फिर युगीन प्रचलित शैली के आधार पर वह भी एक बने-बनाए पथ पर चलकर मंज़िल तक पहुँचने का प्रयास करता है। प्रक्रिया अनुवादक की रुचि और योग्यता पर निर्भर करती है। अनुवादक किस सीमा तक विषय का ज्ञान रखता है, उसे अनुवाद संबंधी किस प्रक्रिया को मान्यता प्रदान कर अनुवाद प्रस्तुत करना है, यह मात्र अनुवादक की रुचि, बुद्धि और योग्यता का विषय है। उसकी योग्यता ही अनुवाद में सहजता एवं प्रवाह उत्पन्न करने में सहायक सिद्ध होती है।

मलकुल कलाम सैयद लाइक़ हुसैन क़वी अमरोहवी ने 1924 ई. में इन रुबाइयों का अनुवाद प्रस्तुत किया। स्वतंत्रता से पूर्व और स्वातंत्रोत्तर उर्दू में आकाश और पाताल का अंतर है। जिस समय क़वी यह अनुवाद कर रहे थे उस समय तक उर्दू इस रूप में विकसित नहीं हुई थी जिस रूप में आज है। यही कारण है कि क़वी के अनुवाद में भाषा के सुंदर प्रयोगों का अभाव है। भाषा फ़ारसी बाहुल्य है। प्रचलित रुबाई के औज़ान का असफल प्रयोग भी पुरानेपन की दलील है। सर्वाधिक ध्यान देने योग्य तथ्य यह है कि क़वी ने मूल को पूर्ण रूप से आत्मसात नहीं किया। यही कारण है कि उन्होंने मात्र अभिधाश्रित अनुवाद प्रस्तुत किया, जिसके कारण उनका अनुवाद शब्दानुवाद के व्रत को तोड़कर उदाहरण मात्र ही भावानुवाद की सीमा में प्रवेश कर सका। यद्यपि

उनके उत्तरकालीन अनुवादों को उनके अनुवाद की तुलना में रखकर आलोचक इनके अनुवाद की छवि धूमिल करने के तथ्य खोज सकते हैं किंतु 1924 ई. के संदर्भ में यदि इस अनूदित रचना का अध्ययन किया जाए तो उसे साहित्यिक अनुवाद कहने में कोई संकोच नहीं। वस्तुतः यह उनका सफल प्रयास था, जिसकी आलोच्यकाल में सराहना की गई क्योंकि यह अपने समय का एक महत्वपूर्ण एवं सफल कार्य था। उन्होंने खैयाम के नाम से प्रचलित 764 रुबाइयों का उर्दू अनुवाद किया। अनेक रुबाइयों के अनुवाद आज के संदर्भ में भी देखने पर सफल प्रतीत होते हैं।

जनवरी 1960 ई. इमामुल हिंद प्रोफ़ेसर वाक़िफ़ ने इन रुबाइयों का अनुवाद किया। प्रोफ़ेसर वाक़िफ़ के अनुवाद काल (अर्थात 1960 ई.) तक उर्दू अत्यधिक सहजता एवं प्रवाह प्राप्त कर चुकी थी। उनके सम्मुख उर्दू का आकर्षक एवं सुंदर रूप था। उर्दू शब्दावली में अत्यधिक वृद्धि हो चुकी थी और विदेशी साहित्य के संपर्क में अनेक शैलियों उर्दू में मान्यता प्राप्त कर चुकी थीं। उन्होंने कुछ सुंदर रुबाइयों के सफल एवं आकर्षक अनुवाद के माध्यम से अपनी योग्यता का परिचय दिया। सुंदर एवं जन-प्रचलित शब्दावली के साथ-साथ रुबाई के प्रचलित औज़ान में से सहज औज़ान का सफल प्रयोग अपने अनुवाद में किया। अभिधा के साथ-साथ लक्षणा तक पहुँचने पर ही उन्होंने पूर्ण विराम नहीं लगाया अपितु अर्द्ध-विराम देकर व्यंजना को माध्यम बनाकर अनुवाद को सफलतम अथवा चरम सीमा पर पहुँचाकर सुख की साँस ली। शब्दानुवाद के वृत्त को तोड़कर उन्होंने भावानुवाद का आश्रय लिया, जिसके परिणामस्वरूप अनुवाद में चरमोत्कर्ष उत्पन्न हो गया। इसके अतिरिक्त उर्दू साहित्यकार विषय के संबंध में लिखते समय इन्हीं अनुवादों को उदाहरणस्वरूप प्रस्तुत करते हैं। एक अनूदित रुबाई उदाहरणस्वरूप दृष्टव्य है :

यह तो बतला दे तुझे शाने करीमी की क़सम।
क्या गुनहगार न पाएँगे तेरा बागे इरम।।
क्या अताअत पै तू जन्नत का करेगा सौदा।
तेरे घर भी यह तिजारत है तो फिर तेरा करम।।

जुलाई 1960 ई. में पाकिस्तान के योग्य एवं जगत प्रसिद्ध उर्दू-फ़ारसी शायर अब्दुल अदम ने खैयाम के नाम से संकलित 159 रुबाइयों का अनुवाद किया। एक फ़ारसी शायर होने के नाते अदम ने इन रुबाइयों का अध्ययन किया था, किंतु अपने एक मित्र डॉ. तासीर साहब की इच्छानुसार इन रुबाइयों को मूल के साथ-साथ अनेक अन्य भाषाओं के अनुवाद के माध्यम से आत्मसात किया। मूल से पूर्ण परिचित होने पर उन्होंने इन रुबाइयों का सफल अनुवाद किया। इस अनुवाद की सफलता के कारण ही अदम

'पाकिस्तान का उमर खैयाम' की उपाधि से प्रसिद्ध हुए। उन्होंने सुंदर, शुद्ध, स्वच्छ, परिमार्जित, जन-प्रचलित, सहज और प्रवाहपूर्ण भाषा के प्रयोग से यह प्रमाणित कर दिया कि सफल अनुवाद हेतु विषय के पूर्ण ज्ञान के साथ-साथ संबंधित दोनों भाषाओं का पूर्ण ज्ञान एवं उसकी शब्दावली की प्रयोग विधि भी परम आवश्यक है। एक फ़ारसी शायर होने के नाते उनके अनुवाद में कहीं-कहीं फ़ारसी शब्दावली का प्रयोग भी मिलता है, जो प्रवाहपूर्ण अनुवाद की सरिता में बंद सीपियों के समान प्रतीत होती हैं। अदम ने मूल के साथ पूर्ण न्याय किया है। उनके अनुवाद की सफलता से प्रसन्न होकर यदि पाकिस्तानी साहित्यकार अथवा आलोचक उन्हें 'पाकिस्तान का उमर खैयाम' कहते हैं तो कोई अत्युक्ति नहीं। एक उदाहरण दृष्टव्य है :

दरिया-ए-नील से उठे जब सुबह की किरन।
निथरी हुई शराब का सागर उछाल दे।।
हर चंद नूरे सुबह में भी दिलकशी है कुछ।
इस दिलकशी में और भी कुछ जान डाल दे।।

❑

राजेन्द्र प्रसाद

काव्यानुवाद की समस्याएँ : उमर खैयाम के संदर्भ में

काव्यानुवाद करना एक टेढ़ी खीर है। कवि के हृदय में तरंगित कोमल भाव-लहरियाँ कविता के रूप में फूटकर बाहर आती हैं। इस प्रकार कविता का हृदय से घनिष्ठ संबंध है। अनुवाद करते समय अनुवादक के हृदय में भी वे ही भाव-लहरियाँ उसी वेग से तरंगित हों यह संभव नहीं। विक्टर ह्यूगो लिखते हैं--

"A translation in verse seems to me something absurd, impossible."

सफल काव्यानुवादक वही माना जाएगा जो मूल कवि से साधारणीकरण कर ले। कविता का एक-एक शब्द अपने स्थान पर महत्त्वपूर्ण होता है और स्थानापन्न शब्द में वह सौंदर्य नहीं आ पाता। जैनेन्द्र के अनुसार अनुवादक को मूल के व्यक्तित्व में पहले अपने को खो देना होता है, फिर उसी में आत्म-भाव पैदा करके अपनी भाषा के माध्यम द्वारा उस भाषा-भाषी के प्रति अपने को भावार्पित करना पड़ता है।

काव्यानुवाद में अनुवादक के सामने क्या-क्या कठिनाइयाँ आती हैं, वह उनका किस प्रकार निराकरण करता है, एक-एक शब्द के अनुवाद के लिए उसे कितनी साधना करनी पड़ती है, इन सबका स्पष्टीकरण यहाँ उमर खैयाम की रुबाइयों के संदर्भ में किया जा रहा है।

हकीम ग़यासुद्दीन अबुलफ़तेह उमर बिन इब्राहीम खैयाम का जन्म ईसा की ग्यारहवीं शताब्दी में खुरासान देश के प्रधान नगर नैशापुर में हुआ था। इनकी जन्मतिथि एवं मृत्यु-तिथि विवादास्पद है। मौलाना सुलेमान नदवी ने अपने ग्रंथ खैयाम (दारुल मुसन्नफ़ीन, आज़मगढ़) में इनका जन्म लगभग 1048 ई. एवं मृत्यु लगभग 1132 ई. मानी है। उमर खैयाम ने कितनी रुबाइयाँ लिखीं इसके बारे में निश्चयपूर्वक कुछ नहीं कहा जा सकता। उपलब्ध रुबाइयों की संख्या 31 से लेकर 1000 तक है।

उमर खैयाम का नाम जिस विद्वान ने ऊँचा किया उसका नाम है -- एडवर्ड फ़िट्ज़ेराल्ड।

इस विद्वान का अनुवाद इतना लोकप्रिय हुआ कि परवर्ती अनुवादक उमर खैयाम के मूल का अनुवाद न कर अनुवाद का अनुवाद करते गए।

फ़िट्ज़ेराल्ड ने खैयाम की रुबाइयों का अनुवाद करते समय बहुत छूट ली है। वे शब्दानुवाद के पक्ष में नहीं थे। उन्होंने स्वयं एक स्थान पर लिखा है--''मेरा विश्वास है कि... अनुवादक को अपनी रुचि के अनुसार संस्कार करना चाहिए... भूसा भरे गीध की अपेक्षा मैं जीवित गोरैया चाहूँगा।''[1]

फ़िट्ज़ेराल्ड के अंग्रेजी अनुवाद का आधार लेकर हिंदी में बच्चन[2], पं. केशवप्रसाद पाठक[3], रघुवंशलाल गुप्त[4], सुमित्रानंदन पंत[5] तथा मैथिलीशरण गुप्त[6] आदि कई विद्वानों ने अनुवाद किए हैं।

यहाँ खैयाम की मूल रुबाई लेकर उसके विभिन्न अनुवादों का तुलनात्मक विवेचन प्रस्तुत किया जा रहा है।

'रुबाई' शब्द अरबी भाषा का है और इसका अर्थ है -- चार। रुबाई में चार पद होते हैं जिसमें पहला, दूसरा और चौथा पद तुकांत एवं तीसरा अतुकांत होता है। इसके अतिरिक्त ध्यान देने योग्य बात यह है कि 'रुबाई' मुक्तक काव्य का एक रूप है। इसमें क्रमबद्ध भाव विकास और प्रबंधात्मक विचार-योजना के लिए स्थान नहीं। किसी भी भाव को चुभती हुई भाषा में कह देना ही रुबाई का उद्देश्य है।

उमर खैयाम की एक रुबाई है--

''आमद सहरे निदा ज़े मयख़ानाए मा
कि ए रिंद खराबाती व दीवानाए मा
बरख़ेज़ कि पुरकुनेम पैमानाए ज़े मय
ज़ां पेश कि पुरकुनंद पैमानाए मा।''[7]

अर्थात् प्रातःकाल हमें अपनी मधुशाला से आवाज़ आई कि हे मदिरा पान करने वाले एवं मेरे दीवाने! उठ! और मय से अपना प्याला भर ले। कहीं ऐसा न हो कि (देवता लोग) हमारे जीवन का प्याला भर दें अर्थात् यमराज का बुलावा आ जाए।

Dreaming when Dawn's Left Hand was in the Sky
I heard a Voice within the Tavern cry,
"Awake, my Little ones, and fill the Cup
"Before Life's Liquor in its Cup be dry".
–(Fitsgerald–"Rubiyat of Omar Khayyam" Sl.–2)

× × × ×

उषा ने ले अंगड़ाई, हाथ
दिए जब नभ की ओर पसार,

स्वप्न में मदिरालय के बीच
सुनी तब मैंने एक पुकारा --
"उठो, मेरे शिशुओ नादान,
बुझा लो पी-पी मदिरा भूख,
नहीं तो तन-प्याली की शीघ्र
जाएगी जीवन-मदिरा सूख।"
(बच्चन--"खैयाम की मधुशाला" संख्या 2)

× × × ×

अंगड़ाता था अरुण खड़ा, जब बढ़ा वाम कर अम्बर में
मुझे सुन पड़ा स्वप्न-राज्य में तब यह स्वर मदिराघर में
व्यर्थ सूखने के पहले ही जीवन-प्याली में हाला
जाग जाग, अय मेरे शिशु-दल, ढाल ढाल मधु पी प्याला।
(पं. केशव प्रसाद पाठक--रुबाइयात उमर खैयाम, सं. 2)

× × × ×

वाम-कनक-कर ने उषा के
जब पहला प्रकाश डाला,
सुना स्वप्न में मैंने सहसा
गूँज उठी यों मधुशाला --
उठो, उठो, ओ मेरे बच्चो,
पात्र भरो, न विलंब करो,
सूख न जावे जीवन-हाला,
रह जावे रीता प्याला।'
(मैथिलीशरण गुप्त--'रुबाइयात उमर खैयाम' सं. 2 पृष्ठ 31)

× × × ×

पौ फटते ही मधुशाला में, गूँजा शब्द निराला एक,
मधुबाला से हँस-हँस कर यों कहता था मतवाला एक --
"स्वांग बहुत है रात रही पर थोड़ी, ढालो ढालो शीघ्र
जीवन ढल जाने के पहले ढालो मधु का प्याला एक।"
(रघुवंश लाल गुप्त--'उमर खैयाम की रुबाइयाँ' सं. 2)

× × × ×

खोलकर मदिरालय का द्वार

प्रात ही कोई उठा पुकार
मुग्ध श्रवणों में मधु रव घोल,
जाग उन्मद मदिरा के छात्र!
ढुलक कर यौवन मधु अनमोल
रोष रह जाए नहीं मृदु मात्र,
ढाल जीवन मदिरा जी खोल
लबालब भर ले उर का पात्र।

(सुमित्रानंदन पंत--'मधुज्वाल' संख्या 2)

सबसे पहले हम फ़िट्ज़ेराल्ड कृत अनुवाद की चर्चा करेंगे। मूल से तुलना करने पर ज्ञात होगा कि फ़िट्ज़ेराल्ड ने खैयाम की तरह ही रुबाई छंद अपनाया है, अर्थात् अनूदित रुबाई की पहली, दूसरी और चौथी पंक्ति तुकांत एवं तीसरी अतुकांत है। मूल की पहली पंक्ति 'आमद सहरे निदा ज़े मयख़ानाए मा' का फ़िट्ज़ेराल्ड ने जो अनुवाद किया है -- 'Dreaming when Dawn's Left Hand was in the Sky.' उसमें अनुवादक की कल्पना एवं सूझबूझ स्पष्ट दिखाई पड़ती है। 'आमद सहरे' का अर्थ है -- 'सुबह होना' या 'सुबह का आना।' इन दो शब्दों को फिट्ज़ेराल्ड ने नौ शब्दों में कहा है। पर जिस ढंग से कहा गया है उसके पीछे अनुवादक का कवित्व झलकता है। पहली पंक्ति में 'Dreaming' शब्द बहुत सार्थक है क्योंकि सुबह-सवेरे हम स्वप्निल अवस्था में होते हैं। 'Dawn's Left Hand' से ज्ञात होता है कि फ़िट्ज़ेराल्ड को फ़ारसी साहित्य का पूर्ण ज्ञान था। सूर्योदय के समय जो सूर्य की पहली किरणें निकलती हैं उसे फ़ारसी में 'उषा का बायाँ हाथ' कहते हैं। इस प्रकार बेजान 'आमद सहरे' में अनुवादक ने चाक्षुष बिंब की सर्जना की है और यह प्रशंसनीय है। साथ ही फ़िट्ज़ेराल्ड ने मूल की पहली पंक्ति के दूसरे अर्धांश 'निदा ज़े मयखानाए मा' को अनुवाद की दूसरी पंक्ति में दिया है--'I heard a Voice within the Tavern cry' इस अनुवाद में द्रष्टव्य है कि फ़ारसी में 'मा' का अर्थ 'हम' है पर फ़िट्ज़ेराल्ड ने उसे 'I' कर दिया है। तीसरी पंक्ति में 'बरख़ेज' में जो शक्ति है वही 'Awake!' में है। मूल के 'ए रिन्द खराबाती' अर्थात् 'हे मधुशाला के शराबी' को फिट्ज़ेराल्ड ने 'My Little ones' कर दिया है। 'पुरकुनेम पैमानाए ज़े मय' अर्थात् 'चषक में मदिरा ढाल' का सटीक अनुवाद किया गया है -- 'fill the Cup'। 'कि' का पर्यायवाची 'and' ठीक दिया गया है। चौथी पंक्ति में 'जां पेश' का शब्दानुवाद 'Before' किया गया है। 'Life's Liquor in its Cup be dry' में रूपक अलंकार की छटा सुंदर प्रतीत होती है। अनुवादक ने जीवन को मदिरा का रूप दिया है और तन को प्याले का। समग्रतः यह अनुवाद अच्छा बन पड़ा है और इसमें

एक ख़ास 'अंदाज़े बयां' है। वे स्वयं लिखते हैं -- "My translation will interest you from its forms, and also in many respects in its detail..."

यह तो था फ़िट्ज़ेराल्ड कृत अनुवाद का मूल्यांकन और इसका अलग से विवेचन करना इसलिए आवश्यक था क्योंकि परवर्ती अनुवादकों ने हिंदी में जो अनुवाद किया है वह फ़िट्ज़ेराल्ड कृत अनुवाद का ही आधार लेकर किया गया है। अब हम बच्चन, पं. केशवप्रसाद पाठक, मैथिलीशरण गुप्त, रघुवंशलाल गुप्त तथा सुमित्रानंदन पंत कृत अनुवादों का शब्द-चयन, वाक्य, छंद, अलंकार, शैली आदि की दृष्टि से मूल्यांकन करेंगे।

छंद और काव्य का आदिकाल से ही संबंध है। छंद मानवोच्चरित वह ध्वनि समूह है जो प्रत्यक्षीकृत निरंतर तरंग-भंगिमा से आह्लाद के साथ भाव और अर्थ की अभिव्यंजना कर सके। फ़िट्ज़ेराल्ड ने मूल की तरह रुबाई छंद को अपनाया है। हिंदी अनुवादकों में से मैथिलीशरण गुप्त एवं रघुवंशलाल गुप्त[8] ने रुबाई छंद अपनाया है। पं. केशव प्रसाद पाठक ने चतुष्पदी तो ग्रहण की है परंतु पहली-दूसरी और तीसरी-चौथी पंक्ति तुकांत कर दी है। डॉ. बच्चन भी रुबाई छंद का पूर्ण रूप से निर्वाह नहीं कर पाए। वे लिखते हैं -- ''रुबाई का आदर्श तो यही है कि चार पंक्तियों में किसी भाव को पूर्ण कर दे। पर अनुवाद करते समय यह आदर्श न निभ सके तो मैं इसे कोई अपराध अथवा त्रुटि नहीं समझता।''[9]

काव्यानुवाद में शब्द चयन का विशिष्ट महत्त्व है। शब्दों का सम्यक चयन और उपयोग प्रत्येक श्रेष्ठ कवि की अपनी विशेषता होती है। एक ही भाव के निष्पादन के लिए कोमलकांत और कर्कश दो प्रकार के पर्याय हो सकते हैं। कवि रस-परिपाक के अनुकूल शब्द चुन लेता है। फ़िट्ज़ेराल्ड की पहली पंक्ति -- 'Dreaming when Dawn's Left Hand was in the Sky' के अनुवाद में डॉ. बच्चन ने सुंदर शब्द-चयन किया है। 'Dawn' के लिए 'उषा ने ले अंगड़ाई' का प्रयोग सुंदर बन पड़ा है। डॉ. बच्चन ने चाक्षुष बिंब प्रस्तुत करने का प्रयत्न किया है। ठीक ही कहा गया है कि अनुवादक के लिए कवि होना अनिवार्य है। उधर पं. केशवप्रसाद पाठक[10] के अनुवाद 'अँगड़ाता था अरुण खड़ा' में वह सुंदरता नहीं आ पाई है। 'अरुण' की अंगड़ाई की अपेक्षा 'उषा' की अँगड़ाई प्रयोग अधिक सुंदर है। रघुवंशलाल गुप्त तो 'पौ फटते' ही से संतुष्ट हो गए हैं। सीधे-सादे व्यक्तित्व वाले मैथिलीशरण गुप्त जी ने यहाँ भी अपनी तथ्यात्मकता को नहीं छोड़ा है और सीधे ही 'प्रकाश डाला' अनुवाद किया है। 'मधुज्वाल' के प्रेमी पंत ने तो 'प्रातः ही' मदिरालय का द्वार खोल दिया।

पहली पंक्ति के उत्तरार्द्ध -- 'Left Hand was in the Sky' का बच्चन ने सटीक अनुवाद 'दिए जब नभ की ओर पसार' किया है। यहाँ 'पसार' शब्द ध्यातव्य है। जब

भी कोई अँगड़ाई लेता है तो उसके हाथ अपने आप फैल पसर जाते हैं।

बच्चन की अभिव्यक्ति की कुशलता पं. केशवप्रसाद पाठक के 'बढ़ा वाम कर अम्बर में' में नहीं आ पाई है, हालाँकि बच्चन ने 'Left Hand' का अनुवाद नहीं किया। जैसा कि पीछे कहा गया है सूर्योदय के समय जो सूर्य की पहली किरणें निकलती हैं उसे फ़ारसी साहित्य में 'उषा का बायाँ हाथ' कहा जाता है। डॉ. बच्चन लिखते हैं, ''मेरे बदले हुए रूपक में दाएँ-बाएँ का भेद अनावश्यक है और रुबाई के मूल भाव में इससे कोई अंतर नहीं आता।''[11]

मैथिलीशरण गुप्त ने इसका अनुवाद 'वाम-कनक-कर' किया है जो मात्र शब्दानुवाद तो है ही साथ ही बेजान भी है। रघुवंशलाल गुप्त तथा पंत ने तो इसका अनुवाद किया ही नहीं। एक ने 'पौ फटते' देखी है तो दूसरे ने 'प्रातः'।

फ़िट्ज़ेराल्ड की दूसरी पंक्ति--'I heard a Voice within the Tavern cry' का बच्चन का अनुवाद तो बिलकुल सटीक है :

'स्वप्न में मदिरालय के बीच
सुनी तब मैंने एक पुकार'

इसमें वह चमत्कार नहीं है जो पाठक के निम्नलिखित अनुवाद में है :

'मुझे सुन पड़ा स्वप्न-राज्य में
तब यह स्वर मदिराघर में'

इसका शब्द-चयन सुंदर है। ध्यान देने योग्य है कि जब मनुष्य नींद में होता है तो वह एक अनोखे 'स्वप्न-राज्य' में विचरता रहता है और ऐसी अवस्था में आवाज़ 'सुनाई' नहीं 'सुन पड़ती' है। उधर मैथिलीशरण गुप्त के अनुवाद 'सुना स्वप्न में मैंने सहसा गूँज उठी यों मधुशाला' सादा ही है और यही 'गूँज' रघुवंशलाल गुप्त को भी सुनाई पड़ी है। 'एक' शब्द का प्रयोग रघुवंशजी ने मात्र तुकबंदी के लिए किया है। कल्पनाजीवी पंत को 'मैं' का ध्यान ही नहीं रहा -- 'प्रातः ही कोई उठा पुकार।'

इस प्रकार हमें 'Cry' के तीन अनुवाद मिलते हैं -- 'गूँज', 'स्वर' और 'पुकार।' 'स्वर' में जो मृदुलता है वह 'पुकार' या 'गूँज' में नहीं है।

फ़िट्ज़ेराल्ड की तीसरी पंक्ति -- "Awake, my Little ones, and fill the Cup" के अनुवाद में सभी अनुवादकों ने अपनी कल्पना एवं बुद्धि से काम लिया है। बच्चन का अनुवाद है :

'उठो, मेरे शिशुओ नादान,
बुझा लो पी-पी मदिरा भूख'

'Awake' का पाठक ने 'जाग-जाग' अनुवाद किया है और वह बहुत ही सुंदर बन

पड़ा है। अनुवादक की मनोवैज्ञानिकता यहाँ दृष्टिगत होती है। स्वप्न-राज्य में मस्त आदमी को तो झिंझोड़कर ही जगाया जाता है। अतः यहाँ 'जाग-जाग' शब्द सार्थक बन पड़ा है। मैथिलीशरण गुप्त के 'उठो-उठो' में वह तीव्रता नहीं आ पाई है। रघुवंशलाल ने अगर 'मधुबाला' के 'हँस-हँस' कर कहने की कल्पना की है तो पंत को ऐसे लगा मानो कोई उसके 'मुग्ध श्रवणों' में मधु घोल रहा हो।

'Little ones' के कई अनुवाद देखने में आते हैं। बच्चन ने 'मेरे शिशुओ नादान कहा है' तो पाठक ने 'अय मेरे शिशु-दल।' गुप्तजी की सौहार्दता देखिए। उन्होंने 'ओ मेरे बच्चो' अनुवाद किया है। रघुवंशलाल इस फेर में न पड़कर सीधे 'मधुबाला' से बात करते दिखाई देते हैं और अंत में रह गए पंत। उन्होंने शिक्षक का मोह नहीं छोड़ा और 'मदिरा के छात्र' ही अनुवाद कर दिया है।

'fill the Cup' के अनुवाद में सभी मदिरा-पान करने वालों की व्यग्रता बढ़ती दिखाई देती है। बच्चन ढालने तक ही नहीं रुके पीने के लिए आग्रह करने लगे -- 'बुझा लो पी-पी मदिरा भूख' और उनकी मदिरा की प्यास भी कोई छोटी-मोटी नहीं वह तो मदिरा की 'भूख' है। उधर पाठकजी का अनुवाद 'ढाल ढाल मधु पी प्याला' भी सुंदर बन पड़ा है। ढाल-ढाल में व्यग्रता तो है ही, ध्वन्यात्मकता भी है। इधर गुप्तजी आहिस्ता से 'पात्र भरो, न विलंब करो' कहते है क्योंकि संभवतः वैष्णव होने के नाते पीने से डरते हैं। उधर रघुवंशजी को समय का अभाव खटक रहा है -- 'स्वांग बहुत है रात रही पर थोड़ी, ढालो-ढालो शीघ्र', 'ढालो-ढालो शीघ्र' में व्यग्रता सीमा पर पहुँच गई है। उधर पंतजी का 'मधुज्वाल' इन पंक्तियों में साफ़ दिखाई पड़ रहा है :

ढाल जीव मदिरा जी खोल
लबालब भर ले उर का पात्र!

'fill' के लिए 'लबालब भर' बहुत उपयुक्त एवं सार्थक है।

अब हम फ़िट्ज़ेराल्ड की चौथी पंक्ति पर आते हैं :

'Before Life's Liquor in its Cup be dry'

बच्चन ने इसका अनुवाद किया है :

'नहीं तो तन-प्याली की शीघ्र
जाएगी जीवन-मदिरा सूख।'

लगभग ऐसा ही अनुवाद पाठक जी ने किया है :

'व्यर्थ सूखने के पहले ही जीवन प्याली में हाला'

गुप्त का अनुवाद बिलकुल सादा है और तुकबंदी साफ़ झलकती है :

'सूख न जावे जीवन-हाला,
रह जावे रीता प्याला।'

रघुवंश का अनुवाद भी विशेष अच्छा नहीं बन पड़ा है :

'जीवन ढल जाने के पहले ढालो मधु का प्याला एक'

फिर भी 'ढल' का दो अर्थों में प्रयोग कर अनुवादक ने अपनी सूझबूझ एवं कवि-हृदय का परिचय दिया है। फ़िट्ज़ेराल्ड ने जो रूपक बाँधा था उसका पालन इन्होंने नहीं किया। सौंदर्य-जीवी पंत ने यौवन की कल्पना कर मदिरा-पान के महत्व को जिस प्रकार शब्दों में बाँधा है, वह बेजोड़ है :

ढुलक कर यौवन मधु अनमोल
शेष रह जाए नहीं मृद मात्र;

'Life's Liquor' के लिए 'यौवन-मधु' सुंदर बन पड़ा है। अन्य अनुवादक जहाँ 'जीवन' कहकर चुप हो गए हैं, वहाँ छायावादी पंत जीवन की उस विशेष वय का स्मरण दिलाते हैं जिसमें पीने-पिलाने की उद्दाम लालसा है।

काव्य में अलंकारों का होना आवश्यक माना गया है। आचार्य दण्डी ने काव्य के शोभाकारक धर्मों को अलंकार माना है -- 'काव्यशोभाकरान्धर्मान् अलंकारान्प्रचक्षते।'[12] अग्निपुराणकार ने तो यहाँ तक कह दिया है -- 'अलंकाररहिता विधवेव सरस्वती' अर्थात् सरस्वती भी अलंकार-विहीना होने पर विधवा के समान होती हैं।

कवि को अलंकारों का प्रयोग सहज रूप से करना चाहिए ताकि काव्य बोझिल न हो जाए। अनुवादक के लिए तो अलंकारों का प्रयोग बहुत ही कठिन होता है। प्रस्तुत संदर्भ में अलंकारों का यथास्थान प्रयोग किया गया है। 'उषा ने ले अंगड़ाई', 'अंगड़ाता था अरुण खड़ा' में मानवीकरण अलंकार है। पं. केशवप्रसाद पाठक ने रुबाई की अंतिम पंक्ति में वीप्सा अलंकार का सुंदर प्रयोग किया है :

::जाग जाग, अय मेरे शिशु-दल, ढाल ढाल मधु पी प्याला''

यहाँ 'जाग-जाग' एवं 'ढाल-ढाल' में वीप्सा अलंकार है। रघुवंशलाल गुप्त ने भी इसी अलंकार का सुंदर प्रयोग किया है -- 'ढालो-ढालो शीघ्र।' 'जीवन-मदिरा', 'जीवन-प्याली', 'तन-प्याली' में रूपक अलंकार है। 'बुझा लो पी-पी मदिरा भूख' में 'पी-पी' में वीप्सा अलंकार है और साथ ही विरोधाभास भी है। 'मधुबाला से हँस-हँस कर यों कहता था मतवाला एक' में पुनरुक्ति प्रकाश अलंकार है।

प्रत्येक काव्यानुवादक सुविधा के अनुसार पंक्तियों को आगे-पीछे कर देता है। बच्चन ने अगर फ़िट्ज़ेराल्ड की तीसरी पंक्ति को उसी क्रम में अनूदित किया है तो पाठक ने वह क्रम बदल दिया है :

'Awake, my Little ones, and fill the Cup
Before Life's Liquor in its Cup be dry'

''उठो, मेरे शिशुओं नादान,
बुझा लो पी-पी मदिरा भूख,
नहीं तो तन-प्याली की शीघ्र
जाएगी जीवन मदिरा सूख।''

—बच्चन

व्यर्थ सूखने के पहले ही जीवन-प्याली में हाला,
जाग-जाग, अय मेरे शिशु-दल, ढाल-ढाल मधु पी प्याला।

—पाठक

इसी प्रकार फ़िट्ज़ेराल्ड की प्रथम पंक्ति का प्रथम छंद 'Dreaming' बच्चन की रुबाई की तीसरी पंक्ति का प्रथम शब्द बन गया है और पाठक की रुबाई में दूसरी पंक्ति का चौथा शब्द। शब्दों का यह समायोजन कविता में लयात्मकता, संगीतात्मकता आदि बनाए रखने के लिए किया जाता है। पंत ने रुबाई छंद अपनाया ही नहीं। उसके अनुवाद पर उनके कवित्व एवं व्यक्तित्व की झलक स्पष्ट दिखाई देती है।

उमर ख़य्याम के अनुवाद में प्रत्येक अनुवादक का अपना व्यक्तित्व निखर कर आया है। बच्चन के अनुवाद में मधु की महक मिलेगी तो पं. केशवप्रसाद पाठक के अनुवाद में लयात्मकता का पुट। गुप्तजी ने मूल के साथ अन्याय न कर सादगी से शब्दानुवाद कर दिया है तो रघुवंशलाल गुप्त ने कल्पना-पंख लगाकर उड़ान भरी है। सुमित्रानंदन पंत के अनुवाद पर इनके कवित्व-व्यक्तित्व की छाप स्पष्ट दिखाई देती है। जहाँ डॉ. बच्चन ने मधुशाला में बैठकर अंगूरी हाला पी है वहाँ पंत जी मधु-चषक लिए प्रकृति-प्रांगण में झूमते-फिरते नज़र आते हैं।

अंत में, कौन-सा अनुवाद अच्छा बन पड़ा है – यह निर्णय देना तो काव्यानुवाद करने से भी कठिन है। सत्य तो यह है कि जिसे मधु रास आ गई उसी की अभिव्यक्ति सुंदर है और ये सब अनुवादक तो 'मदिरा-छात्र' ही हैं। हाँ, वैष्णव कवि मैथिलीशरण गुप्त पर संदेह किया जा सकता था परंतु गुप्त ने उसका निवारण पुस्तक 'रुबाइयत उमर ख़य्याम' की भूमिका[13] में कर दिया है :

''मुझे मित्रों का वह निर्मम विनोद अब सदय आमोद-सा प्रतीत होता है, हठपूर्वक ही सही, उन्होंने मुझे पिला ही दी और उसके अंगूर मेरे लिए भी अब वैसे खट्टे नहीं रह गए।''

❑

संदर्भ

1. Quoted in 'On Translation' Page 277, Editor–Reuben A. Brower, Harvard

University Press, Cambridge, Massachusetts 1959

2. ख़य्याम की मधुशाला, प्रथम संस्करण, सुषमा निकुंज, प्रयाग, अप्रैल, 1935
3. 'रुबाइयात उमर ख़य्याम'—पं. केशवप्रसाद पाठक
4. 'उमर ख़य्याम की रुबाइयाँ', प्रकाशक किताबिस्तान, इलाहाबाद, 1947 ई.
5. 'मधुज्वाल', प्रकाशक भारती भंडार, लीडर प्रेस, प्रयाग, 1948
6. 'रुबाइयात उमर ख़य्याम', प्रकाशक साहित्य सदन, चिरगांव (झांसी) 1959
7. रुबाइयात उमर ख़य्याम, पृष्ठ 1
   रुबाई (संपा. मौलवी महेश प्रसाद, हिंदू विश्वविद्यालय, बनारस, सितंबर 1933)
8. अलीगढ़ में जन्म, म्योर सेंट्रल कॉलेज, इलाहाबाद में शिक्षा। आई.सी.एस. के लिए चुने गए। भारत सरकार के वाणिज्य सचिव रहे। साहित्य में प्रारंभ से ही रुचि रही। आपका 'उमर ख़य्याम' का अनुवाद अत्यंत श्रेष्ठ माना गया है।
9. 'ख़य्याम की मधुशाला' डॉ. बच्चन, पृ. 138
10. जन्म 1906 ई. में जबलपुर में हुआ। एम.ए. (हिंदी) तक शिक्षा प्राप्त की। इनके द्वारा प्रस्तुत उमर ख़य्याम की रूबाइयत का अनुवाद अत्यंत सफल माना जाता है।
11. 'ख़य्याम की मधुशाला': पृ. 133
12. काव्यदर्श, 2-1
13. रुबाइयत उमर ख़य्याम, 'भूमिका', पृ. 6

डॉ. श्रीनारायण समीर

कविता का अनुवाद : सवालों के घेरे में

अनुवाद के संबंध में विद्वानों के मत-मतांतर असल में अनुवाद की प्रक्रिया और प्रकृति में पाई जाने वाली विविधता तथा जटिलता के नतीजे हैं। इसका मतलब है कि अनुवाद हमेशा सहज और आसान नहीं होता, जैसा कि आम तौर पर प्रतीत होता है। अनुवाद कभी-कभी और भी जटिल होता है। कहना न होगा कि अनुवाद तब कठिन और जटिल होता है, जब खालिस साहित्य, उसमें भी कोई काव्य उसका (अनुवाद का) पाठ बनता है क्योंकि काव्य का अनुवाद करते समय अनुवादक पाठ से बँधा हुआ भाषांतरकार मात्र नहीं होता, न ही पाठ से जुड़े इतर प्रसंगों के प्रति तटस्थ और आग्रह मुक्त टीकाकार होता है। काव्य का अनुवाद करते समय अनुवादक को काव्य के शब्द, अर्थ, लय, भाव, प्रभाव आदि सभी तत्त्वों का ध्यान रखना होता है और अनुवाद में उन्हें पुनर्सृजित करना होता है। अतः काव्य का अनुवाद, जो आमतौर पर भाषा का भाषा में रूपांतरण होता है, काव्य के प्रसंग में सृजन का पुनर्सृजन होता है।

अनुवाद सामान्यतः जितना सरल होता है, काव्य के निकष पर उतना ही जटिल होता है क्योंकि काव्यानुवाद एकायामी नहीं, बहुआयामी होता है। काव्य का अनुवाद करते हुए अनुवादक को सर्जक की भूमिका में होना होता है, लेकिन काव्य के अनुवाद में सर्जक होना आसान नहीं होता। काव्य की विशिष्ट भावानुभूति की संश्लिष्ट अभिव्यक्ति होता है। काव्य कल्पना, सौंदर्य, भाव और लय का ऐसा भाषिक सृजन होता है जो ऊपर से जितना मुखर होता है, अंदर से उतना ही मौन, अव्यक्त और अव्यंजक। काव्य के मुखर पक्ष का दूसरी भाषा में उद्‌घाटन प्रायः मुश्किल होता है। उदाहरण के लिए, महाकवि कालिदास के महाकाव्य 'मेघूदतम्' का एक छंद और उसका आचार्य केशव प्रसाद मिश्र द्वारा किया गया हिंदी पद्यानुवाद नीचे देखा जा सकता है :

तां कास्यांचिद्भवनवलभै सुप्तपारावतायां
नीत्वा रात्रिं चिरविलसनात्खिन्नविद्युत्कलत्रः।

-- पूर्वमेघ 39

अनुवाद : ऐसी छत पर जहाँ कबूतर करते हों निधड़क आराम,
अतिविलास से थकी चंचला प्यारी को देना विश्राम।।[1]

उल्लेखनीय है कि ऊपर उद्धृत श्लोक का पद्यानुवाद स्वयं आचार्य केशव मिश्र जैसे उद्भट विद्वान ने किया है। अनुवाद शब्द, छंद, लय, कथ्य आदि सभी प्रकार से स्पष्ट और समतुल्य है। किंतु मूल की व्यंजना? कालिदास के उक्त श्लोक की व्यंजना क्या अनुवाद में अवतरित हो पाई है? प्रस्तुत अनुवाद को लेकर यह सवाल तो उठता ही है। जरा मूल व्यंजना देखें -- यक्ष कहता है -- भाई मेघ। देख, तू अपनी प्रिया सौदामनी का ख्याल रखना। वह बड़ी ही सुकुमार है। क्षण मात्र में उसकी प्रभा, उसकी चमक उतर जाती है। तू ठहरा अति विलासी। भर राह छेड़छाड़ से तू बाज नहीं आने वाला। यह सोच मुझे उस बेचारी पर तरस आता है। अतः सुन में कहता हूँ -- रात को किसी अटारी पर, जहाँ अति विलास से थके परेवे (कबूतर) भी निधड़क सो रहे हों, तू उसे विश्राम देना। छेड़ना मत। हाँ!

निश्चय ही मूल श्लोक में अंतर्निहित इतनी दिव्य व्यंजना का कमाल कालिदास का ही हो सकता है। महान कवि ऐसे ही महान नहीं होते। ऐसे ही, महान कविता व्यक्त तथा अव्यक्त न जाने कितने अर्थ एवं भाव अपने में समेटे रहती है, जिसका संधान एक व्यक्ति और एक समय के वश में नहीं होता। काल और प्रसंग के अनुसार उसकी अर्थवत्ता बदलती रहती है। अकारण नहीं महान कविता युग-युग तक प्रासंगिक रहती है।

कविता का अनुवाद इसलिए भी मुश्किल होता है कि अनुवाद में मूल के अर्थ एवं भावों के अनेक स्तरों को व्यक्त करना कठिन होता है। अनुवाद एक व्यक्ति द्वारा एक निश्चित समय में संपन्न होने वाला कार्य है। इसमें व्यक्ति, जो कि अनुवादक होता है, उसका ज्ञान और समझ अपने समय से बँधा होता है। वह यदि सहृदय और अतिशय कल्पनाशील न हुआ तो उसके लिए अंसभव होता है कि वह कविता के कवि की भावदशा का अनुमान लगाए। अनुवादक जब तक कवि की भावदशा की अंतर्यात्रा नहीं करता, कविता की व्यंजना नहीं समझ सकता तथा व्यंजना समझे बिना किसी कविता का अनुवाद कैसे हो सकता है? कविता की शायद इसी विशिष्टता और अनुवादक की सीमा को ध्यान में रखकर रॉबर्ट फ्रॉस्ट ने कहा है -- "Poetry is what is lost in a translation." अर्थात् ''अनुवाद की प्रक्रिया में जो 'तत्त्व' खो जाता है, वही कविता

है।''[2] किंतु अच्छा अनुवाद भी दोयम दर्जे का काम नहीं, बल्कि सृजन सरीखा ही श्रम-साध्य और रचनात्मक होता है। काव्यानुवाद के प्रसंग में तो अनुवादक के समक्ष असंभव को संभव बनाने की चुनौती होती है। अस्तु उसे अनुवाद के साथ-साथ कवि-कर्म के दायित्व का भी निर्वाह करना होता है। इसलिए काव्यानुवाद को कठिन और जटिल माना जाता है। कदाचित् इसीलिए प्रसिद्ध अंग्रेज कवि एजरा पाउंड ने ''अनुवाद को साहित्यिक पुनर्जीवन (Literary resurrection) कहा है।''[3]

परंतु दुनिया में ऐसे लोग भी हैं, जिनकी ज्ञान-पिपासा इतनी प्रबल और तीव्र होती है कि वे हर इच्छित विषय, बोध और सृजन को जान लेना चाहते हैं और इसके लिए कोई कसर बाकी नहीं रखते। अनुवाद ऐसे ही ज्ञान-पिपासाओं द्वारा भाषा के साथ भाषा में किया गया रचनात्मक संवाद है। यह दो भाषाओं में घटित होता है। इसलिए यह जितना 'स्वांतः सुखाय' होता है, उतना ही बल्कि उससे भी ज्यादा 'बहुजन हिताय' भी होता है। भूमंडलीकरण और सूचना क्रांति के वर्तमान युग में अनुवाद का 'बहुजन हिताय' पक्ष अपेक्षाकृत अधिक मुखर हुआ है।

वैसे काव्यानुवाद कठिन और जटिल होते हुए भी स्वांतः सुखाय होता है। यही कारण है कि हर भाषा और देश-काल में दूसरी भाषा और देश-काल के कालजयी काव्य का अनुवाद होता है और यह सिलसिला अबाध रूप से जारी रहता है। काव्य के प्रसंग में दुहराव का खतरा उठाकर भी। कविता की संरचना और अंतर्वस्तु की संवेदना इतनी सगुंफित, अनुभूति-प्रवण, व्यापक तथा बहुआयामी होती है कि प्रत्येक भाषा और देश-काल का कवि, रचनाकार उसे अपने-अपने भावबोध, विचार और स्वानुभूति के अनुसार ग्रहण करता है और अनूदित करने का प्रयास करता है। गीता, रामायण और महाभारत के एक ही भाषा में कई-कई भाष्य और टीका मिलने का यही कारण है। फ़ारसी कवि उमर खैयाम की रुबाइयों का एडवर्ड फिट्ज्जेराल्ड द्वारा किया गया अंग्रेजी अनुवाद और उस अंग्रेजी अनुवाद से हिंदी में मैथिलीशरण गुप्त, सुमित्रानंदन पंत, बच्चन, रघुवंशलाल गुप्त तथा केशव प्रसाद पाठक द्वारा अपने-अपने ढंग से पद्यानुवाद करने का कारण भी स्वानुभूति और स्वांतः सुखाय का भाव रहा है। इसी तरह संस्कृत के कवि, चिंतक, भर्तृहरि के श्लोकों का हिंदी में ओंकारनाथ श्रीवास्तव, राजेश जोशी, सुधीर रंजन सिंह और पंकज चतुर्वेदी जैसे कवि-रचनाकारों द्वारा किए गए अनुवादों का निहितार्थ स्वानुभूति और स्वांतः सुखाय से इतर आखिर क्या हो सकता है?

प्रसंगवश यह सदैव स्मरण रखना होगा कि काव्यानुवाद में कविता और कवि के साथ अनुवादक की रुचि और पसंद-नापसंद भी महत्त्वपूर्ण होता है। यह काव्यानुवाद का एक इतर किंतु प्रभावकारी पहलू है, जो इसमें साफ तौर पर गोचर होता है। इस

प्रसंग में 'कुछ न छोड़ने और कुछ न जोड़ने' की सैद्धांतिकी बहुत मायने नहीं रखती। इसमें अनुवादक किंचित स्वच्छंदता लेता ही है, क्योंकि अनुवादक भी पहले पाठक होता है और पाठक की हैसियत से ही वह पहले कविता का अर्थ ग्रहण करता है। फिर तद्नुरूप अपनी सर्जना-शक्ति के अनुसार अनुवाद करता है। शायद इसके बिना काव्यानुवाद संभव नहीं। शायद यही काव्यानुवाद की मूल समस्या है। कविता का अनुवाद करते समय प्रत्येक अनुवादक मूल का अतिक्रमण करता है। उमर खैयाम के अनुवाद में फिट्ज्जेराल्ड ने भी ऐसा ही किया है और डंके की चोट पर किया है। फिट्ज्जेराल्ड ने लिखा है --

''मैं यह मानता हूँ कि किसी कृति को जीवंत बनाने के लिए अनुवादक को (भले ही वह मूल लेखक से निम्न कोटि का हो) चाहिए कि वह मूल कृति को आत्मसात करके उसे यथासाध्य अपने ढंग से अनूदित करे। यूँ तो अनुवाद में मूल से अधिक स्वतंत्रता लेना अच्छा नहीं होता, फिर भी जीवित कुत्ता मरे शेर से कहीं अच्छा होता है।''

''मैं निश्चित रूप से शब्दानुवाद के पक्ष में नहीं हूँ। अनुवादक को कुछ भी करना पड़े, रचना जीवंत होनी चाहिए। यदि कोई मूल के सौंदर्य को यथावत् न उतार सके तो उसे अपने दुखद जीवन का ही संक्रमण कर देना चाहिए। भूसा भरे गीध की अपेक्षा मैं जीवित गौरैया चाहूँगा।''[4]

और मजे की बात यह है कि फिट्ज्जेराल्ड का अनुवाद करते हुए मैथिलीशरण गुप्त, बच्चन, पंत, रघुवंशलाल गुप्त और केशव प्रसाद पाठक ने भी ऐसा किया है। इस प्रसंग पर खूब लिखा गया है। काव्यानुवाद की समस्या पर विचार करते हुए प्रायः सभी लेखकों ने इस प्रसंग में चर्चा की है। डॉ. भोलानाथ तिवारी, राजेंद्र प्रसाद आदि लेखकों ने अपनी स्थापना के समर्थन में उदाहरणस्वरूप खैयाम की रुबाई तथा उसका फिट्ज्जेराल्ड द्वारा किया गया अंग्रेजी काव्यानुवाद एवं पुनः उनका मैथिलीशरण गुप्त, पंत, बच्चन, रघुवंश लाल गुप्त और केशवप्रसाद पाठक द्वारा किए गए हिंदी पद्यानुवाद की ही बानगी प्रस्तुत की है। अतः उन्हीं उदाहरणों को फिर से यहाँ प्रस्तुत करना आवृत्ति मात्र होगा। किंतु इससे यह तथ्य तो उद्घाटित होता ही है कि काव्यानुवाद में अनुवादक मूल का पाठ का यंत्रवत् अनुसरण नहीं करता, बल्कि उसका अतिक्रमण करते हुए अनुवाद में कविता संभव करता है। यही काव्यानुवाद की रीति है और यही इसकी शक्ति भी। मूल पाठ का कुछ छोड़े तथा अनूदित पाठ में कुछ जोड़े बिना काव्यानुवाद संभव नहीं होता। काव्यानुवाद की इस विशिष्ट स्थिति पर यहाँ आगे थोड़े विस्तार से चर्चा करने में इसका प्रयास किया जाएगा।

कविता कवि के विचार, कल्पना, सौंदर्य-बोध और उद्दाम भावानुभूति की संश्लिष्ट

अभिव्यक्ति होती है, जो भाषा के अप्रतिम विन्यास में साकार होती है। इस प्रकार कविता में भावानुभूति और भाषा विन्यास महत्त्वपूर्ण होता है। कविता के अनुवाद में इन्हीं महत्त्वपूर्ण तत्त्वों को अंतरित और उद्‌घाटित करना होता है, जो बेहद मुश्किल होता है। इसके लिए अनुवादक को अपनी कल्पना-शक्ति से कवि के साथ तादात्म्य स्थापित करना पड़ता है; कवि-कल्पना, सौंदर्य-बोध और भावानुभूति से साधारणीकरण करना पड़ता है। फिर भी समस्या पूरी तरह हल नहीं होती, क्योंकि तादात्म्य या साधारणीकरण के द्वारा कविता में व्यक्त कवि के भावानुभव को ही समझा जा सकता है। इससे कविता के अर्थ एवं भाव का ही अंतरण संभव होता है। कविता के भाषिक विन्यास, पदबंध, शब्द-संयोजन आदि के अंतरण के लिए अनुवादक को अपने भाषिक ज्ञान के बल पर ही पहल करनी पड़ती है। और यह पहल महत्त्वपूर्ण होती है; क्योंकि कविता का एक-एक शब्द अपने स्थान पर महत्त्वपूर्ण और अर्थ-गर्भित होता है। पर्यायवाची शब्दों से कविता नहीं बनती। स्थानापन्न शब्दों में काव्य-सौंदर्य उद्‌घाटित नहीं होता। अस्तु, काव्यानुवाद करते समय अनुवादक को एक-एक शब्द के अनुवाद के लिए गहन संधान, आत्म-मंथन एवं साधना करनी पड़ती है। फिर भी काव्य के सही, सटीक एवं समतुल्य अनुवाद होने की गारंटी नहीं होती। कविता में शब्द से भी महत्त्वपूर्ण उसकी संवेदना होती है, जो कविता को कविता बनाती है। अनुवाद में कविता के इसी तत्त्व के खो जाने का खतरा सर्वाधिक रहता है। कुशल अनुवादक इसके प्रति अतिरिक्त रूप से सावधान रहता है। फलस्वरूप वह अपने अनुवाद में कविता की संवेदना तथा संप्रेषणीयता का हर हाल में पुनर्सृजन करने का प्रयास करता है। निश्चय ही इस प्रयास में अनुवाद अनुवाद मात्र नहीं रहता, बल्कि समानांतर सृजन बन जाता है। इसीलिए कविता और साहित्य के अनुवाद को अनुवाद नहीं, बल्कि पुनर्सृजन कहा जाता है। काव्यानुवाद के इस विरल लक्षण को इंगित करते हुए अनुवाद समीक्षक सुरेंद्र कुमार दीक्षित ने ठीक ही लिखा है -- ''कविता का अनुवाद करना मात्र एक भाषा से दूसरी भाषा में कह देने जैसा सरल कार्य नहीं है; यह भी वास्तविक रचनात्मक कार्य है -- आदर और सावधानी से करने योग्य।''[5]

अगर यह सर्वमान्य है कि काव्यानुवाद महज अनुवाद नहीं होता, अपितु मूल काव्य का लक्ष्य भाषा में पुनर्सृजन होता है; तो सवाल उठता है कि ऐसा क्यों होता है? कविता की संरचना में आखिर क्या है कि उसका अनुवाद कठिन होता है? विज्ञान और प्रौद्योगिकी भी साधारण आदमी के लिए अबूझ होती है। इनके पारिभाषिक शब्द भी अनुवाद में परेशानी पैदा करते हैं। फिर इनका (विज्ञान और प्रौद्योगिकी का) अनुवाद हो जाता है। परंतु कविता में ऐसा क्या है कि इसका अनुवाद असंभव-सा होता है? और अनुवाद होता भी है तो यह अनुवाद न होकर समानांतर सृजन क्यों हो जाता है? निश्चय ही

ये कुछ सवाल हैं, जिन्हें नजरअंदाज नहीं किया जा सकता। इन सवालों से गुजरकर ही काव्यानुवाद की कठिनाई को समझा जा सकता है।

दरअसल काव्य-सृजन एक विशिष्ट रचना व्यवहार है। इसमें भाषा के कई स्तर होते हैं। कविता शब्द, पद और वाक्य के साथ-साथ छंद, लय, बिंब, अलंकार और मुहावरों में रची जाती है। इसमें संवेदना और भावानुभूति अंतःसलिला बनकर प्रवाहित रहती है। सभ्यता और संस्कृति का समग्र रिक्थ और चेतना की व्यापकता कविता में रची-बसी होती है। इनसे कविता में व्यंजकता आती है और इनके बल पर ही कोई कविता युगों-युगों तक प्रासंगिक रहती है और कालजयी कहलाने के योग्य बनती है।

कहना न होगा कि कवि की कल्पना, संवेदना, भावानुभूति तथा भाषा का सूक्ष्म एवं ललित संस्तर किसी रचना को कविता बनाती है। यह सब कवि का अपना तथा भाषा का निजी एवं गोपन होता है, जिसे दूसरे व्यक्ति द्वारा अथवा दूसरी भाषा में अंतरित करना कठिन होता है। फिर भी कविता का अनुवाद होता है और दुनिया-भर में तथा प्रायः सभी भाषाओं में होता है। कविता का अनुवादक यह काम कवि के साथ तादात्म्य बैठाकर और काव्य की संवेदना तथा अनुभूति के साथ अपनी संवेदना तथा अनुभूति को एकमेक करता है। पुनः कविता चूँकि शब्द, लय, छंद, बिंब, अलंकार आदि से निर्मित भाषा की विशिष्ट रचना होती है और प्रत्येक भाषा के शब्द, लय, छंद, बिंब और अलंकार-विधान अलग तथा विशिष्ट होते हैं। ऐसे में कविता का अनुवादक पहले कवि के भाव, संवेदना, अनुभूति आदि का साधारणीकरण करता है। फिर कविता की भाषा तथा लक्ष्य भाषा के बीच शब्द, लय, बिंब आदि की एकरूपता बैठाने का प्रयास करता है। इसके बाद जो भावांतरण तथा भाषांतरण होता है, वही कविता का अनुवाद होता है। अन्यथा कविता का अनुवाद संभव नहीं होता। इस प्रसंग में विचार करते हुए आचार्य देवेंद्रनाथ शर्मा ने भी कुछ ऐसा ही मंतव्य व्यक्त किया है। अनुवाद की समस्या पर विचार करते हुए आचार्य शर्मा कहते हैं -- ''सर्जनात्मक साहित्य के अनुवाद की कठिनाई का आधार है लेखक से भाव का तादात्म्य स्थापित न कर पाना और उपयोगी साहित्य के अनुवाद की कठिनाई का कारण है समुचित पारिभाषिक शब्दावली का अभाव। कालिदास इसलिए कालिदास हैं कि उनकी अनुभूति, प्रेरणा तथा अभिव्यंजना विरल हैं। 'मेघदूत' या 'अभिज्ञान शाकुंतलम्' का अनुवाद करने के लिए कालिदास की ही प्रतिभा अपेक्षित है। एक शब्द के बदले दूसरा शब्द बैठा देना अनुवाद नहीं है। और यदि कोई एक शब्द की जगह दूसरा शब्द बैठा भी दे तो कालिदास की गंभीर अनुभूति, दिव्य प्रेरणा, और असामान्य अभिव्यंजना कहाँ से पाएगा?''[6]

वैसे काव्यानुवाद में कविता हू-ब-हू मूल जैसी नहीं ढल पाती। मूल कविता और

उसके अनुवाद में कथ्य तथा अभिव्यक्ति के स्तर पर अंतर होता है। दरअसल काव्यानुवाद में अनुवाद का महत्त्वपूर्ण 'समतुल्यता सिद्धांत' (थ्योरी ऑफ इक्विवैलेंस) पूरी तरह लागू होता है। उसमें भी नाइडा की स्थापना। नाइडा की स्थापना है कि ''अनुवाद स्रोत भाषा के संदेश का अर्थ और फिर शैली के धरातल पर लक्ष्य भाषा में निकटतम, स्वाभाविक तथा तुल्यार्थक उपादान प्रस्तुत करता है।'' काव्यानुवाद में भी मूल कविता के कथ्य, भाव, संवेदना आदि की रक्षा करते हुए समानांतर कविता सृजित की जाती है। इस प्रयास में अनुवाद कभी मूल के काफी करीब पहुँच जाता है तो कभी दूर ही रह जाता है। कभी-कभी मूल से बिलकुल भिन्न भी हो जाता है। इस प्रकार काव्यानुवाद का मूल की हू-ब-हू अनुकृति होना दुर्लभ होता है। इसी अपूर्णता के कारण काव्यानुवाद कठिन माना जाता है। इसके कई कारण होते हैं। कविता की विशिष्ट भाषा, कविता की विशिष्ट संरचना, कविता में अंतर्भुक्त विशिष्ट जीवन-दृष्टि, कविता की विशिष्ट अभिव्यंजना, विशिष्ट शैली आदि कई कारण। इसका आशय है कि कविता मूलतः अपनी काव्य-भाषा में ही अभिव्यंजित होती है। कविता की भाषा क्या बदलती है, संवेद्यता धूमिल हो जाती है, कवित्व (Poetivity) छूमंतर हो जाता है। और अनुवाद अगर अच्छा नहीं हुआ तो पूरी कविता ही निष्प्राण हो जाती है। कविता के अनुवाद की यह बड़ी सीमा है। कदाचित् इसी वजह से इतालवी में यह कहावत मशहूर है कि ''अनुवाद वंचक होते हैं'' -- Traduttori traditoti, अर्थात् Translators are traitors। इस प्रसंग में प्रसिद्ध कवि केदारनाथ सिंह की चर्चित कविता 'बनारस' और उसके अंग्रेजी अनुवाद का उदाहरण विचारणीय है। 'बनारस' बेहद सुगठित और सरल कविता है। तथापि इसकी पूरी अभिव्यंजना उसके उत्तरार्द्ध में अंतर्निहित है। अस्तु 'बनारस' का उत्तरार्द्ध और उसका अंग्रेजी में अनुवाद यहाँ प्रस्तुत है :

कभी सई साँझ	Enter this city any evening.
बिना किसी सूचना के	unobtrusively
घुस जाओ इस शहर में	See it by the glow of votive lamps
कभी आरती के आलोक में	Then you will discover
इसे अचानक देखो अद्‌भुत है इसकी बनावट	The splendour of its form
यह आधा जल में है	Half in water
आध मंत्र में	Half in sacred chants
आधा फूल में है	Half in flowers
आधा शव में	Half in corpses
आधा नींद में है	Half at rest

आधा शंख में	Half in the sound of the conch
अगर ध्यान से देखो	Watch carefully
तो यह आधा है	Half is and
और आधा नहीं है	Half is not
जो है वह खड़ा है	All there is stands
बिना किसी स्तंभ के	Without support
जो नहीं है उसे थामे है	And all there is not
राख और रोशनी के	is supported by
ऊँचे-ऊँचे स्तंभ	tall pillars of ash and light
आग के स्तंभ	pillars of fire
और पानी के स्तंभ	and pillars of water
धुएँ के	of smoke
खुशबू के	of scent
आदमी के उठे हुए हाथों के स्तंभ	pillars of man's uplifted palms
किसी अलक्षित सूर्य को	Offering water in homage
देता हुआ अर्घ्य	to the sun unseen
शताब्दियों से इसी तरह	The town has stood for centuries
गंगा के जल में	This way on the leg
अपनी एक टाँग पर खड़ा है यह शहर	in the Ganga's water
अपनी दूसरी टाँग से बिलकुल बेखबर[7]	unaware of it's other leg.[8]

'बनारस' न केवल केदारनाथ सिंह की, वरन हिंदी की एक प्रसिद्ध कविता है और बनारास शहर को पूरी इयत्ता में जीवंत और साकार करने वाली कविता है। कविता की भाषा सहज है। बिंब विधान बिलकुल अछूता और अनूठा है। शैली की सादगी और वर्णन की ताजगी कविता में एक विचित्र किस्म का सम्मोहन सृजित करती है। पठनीयता ऐसी कि कोई भी इसे पढ़ना शुरू करे तो फिर पूरी कविता पढ़े बिना रह नहीं सकता। यह कविता बनारस शहर और उसकी जीवन-शैली और संस्कृति की ही पहचान नहीं कराती, बल्कि बनारस के ब्याज से समूचे भारत की ठेठ जीवन-शैली और संस्कृति को भी अभिव्यंजित तथा मूर्तिमान करती है। यह कविता समग्रता में जो सांस्कृतिक आख्यान प्रस्तुत करती है, उसका निचोड़ इसके प्रस्तुत उत्तरार्द्ध में ही व्यंजित हुआ है। और यह व्यंजना उस जीवन राग का स्मरण और सम्मान है, जो हमारी विशिष्ट जातीय

पहचान है। बेशक इस व्यंजना में काव्य-भाषा की निजता का महत्तम अवदान है। किंतु क्या यही व्यंजना इसके अनुवाद में भी मिलती है? फिर मूल कविता के अनुवाद और उसके प्रभाव को लेकर उठने वाले ये सवाल कविता के अनुवाद की सफलता, समतुल्यता और प्राणवत्ता को एक बार फिर से बहस का विषय तो बना ही देते हैं। तब जबकि इस कविता का अनुवाद मनोहर वंदोपाध्याय, क्रिष्टी मेरिल और डेनियल बेइसबोर्ट जैसे हिंदी और अंग्रेजी के धुरंधर विद्वानों ने किया है। साथ ही इस अनुवाद को अंग्रेजी भाषा की प्रकृति के अनुरूप सँवारने में अंग्रेजी के कवि, विद्वान डेनियन बेइसबोर्ट ने अतिरिक्त ध्यान दिया है। तथापि अनुवाद में कविता आहत हुई है। अनुवाद में कविता का कितना कुछ किस-किस स्तर पर क्षतिग्रस्त हुआ है, इस बारे में विस्तार से चर्चा का यहाँ अवकाश नहीं है। सुधीजन समझ सकते हैं। पर सवाल कविता के अनुवाद की सफलता को लेकर तो बनता ही है।

बहरहाल, कविता भावों की आवेगपूर्ण अभिव्यक्ति होती है। इसकी भाषिक संरचना संश्लिष्ट तथा लयात्मक होती है। इसमें अर्थ की अभिव्यंजना कई स्तरों पर होती है। इसमें रसोद्रेक की अद्‌भुत शक्ति होती है। इन सबके कारण कविता का आस्वादन आनंददायक होता है और कविता अगर पक्षधर है तो उसका आस्वादन प्रेरक भी होता है। किंतु जब कोई कविता रची जाती है, तो शुरू में कवि के जेहन में कथ्य की एक कौंध मात्र होती है, न कि संपूर्ण अभिव्यक्ति कैसी होगी -- इकहरी अथवा बहुस्तरीय, खुद कवि को भी मालूम नहीं होता। कविता कथ्य (content), अभिव्यक्ति (menifestation), और अभिव्यंजना (expression) की लयात्मक सृष्टि होती है। कविता का रूप (form) इन्हीं से अनुप्राणित और निर्धारित होता है। ये सब कविता में इतने सघन और सगुंफित होते हैं कि इन्हें अलगाना मुश्किल होता है -- कहियत भिन्न न भिन्न। कविता के प्रभाव और रसोद्रेक में इनकी सम्मिलित भूमिका होती है। परंतु कविता जब अनुवाद का आधार बनती है तो अनुवादक के सामने वह समग्रता में सुलभ होती है। अनुवादक के लिए कविता कथ्य, रूप, अभिव्यंजना आदि मामले में अभिन्न रचना नहीं होती। वह एक विषय (subject) मात्र होती है, जिसका दूसरी भाषा में रूपांतरण करना होता है और यह काम अनुवाद की प्रक्रिया -- पठन, विश्लेषण, अंतरण, पुनरीक्षण आदि के अंतर्गत चरणबद्ध तरीके से किया जाता है।

अनुवाद के क्रम में पहले कविता का विश्लेषण किया जाता है। यह विश्लेषण पहले भाषा, फिर कथ्य, फिर अभिव्यक्ति और अंत में अभिव्यंजना के धरातल पर किया जाता है। इसमें अनुवादक के ज्ञान और भावबोध की भूमिका महत्त्वपूर्ण होती है। 'जाकी रही भावना जैसी' आखिर चरितार्थ तो होती ही है। अनुवाद की यह पूरी की पूरी प्रक्रिया

ही कविता की अनुभूति तथा दूसरी भाषा में उसकी पुनर्सृष्टि के लिए अवरोधक बन जाती है। परिणाम होता है कि अनुवादक की अनुभूति कवि की अनुभूति जैसी नहीं हो पाती। फलतः अनुवाद कविता से दूर चला जाता है।

कविता से उसके अनुवाद के बेमेल होने का एक बड़ा कारण ही भाषा-संवेदना तथा अनुवाद की भाषा-संवेदना के बीच पाया जाने वाला बुनियादी अंतर भी होता है। प्रसंगवश उल्लेखनीय है कि कोई भी दो भाषाएँ एक समान नहीं होतीं। एक भाषा का पद विन्यास, वाक्य संरचना, मुहावरा, व्याकरण, अभिव्यक्ति का ढंग आदि दूसरी भाषा से भिन्न होता है। एक भाषा की प्रकृति और संस्कृति, लय, शैली आदि भी दूसरी से सर्वथा भिन्न होती है। भाषा अपने आप में कोई स्वतंत्र सत्ता (इंटिटी) नहीं होती। भाषा मनुष्य (वक्ता) समाज की होती है, अपने वक्ता समाज की अभिव्यक्ति का अप्रतिम माध्यम होती है। उसमें उसके बोलने वाले समाज का पूरा जीवनराग, अनुभव, अनुभूति, जय-पराजय, आशा-आकांक्षा और दर्शन संचित होते हैं। भाषा में वक्ता समाज की पूरी संस्कृति धड़कती है और पूरा परिवेश प्रतिबिंबित होता है। पुनः भिन्न परिवेश, आचार-विचार, जीवन-दर्शन, संस्कृति आदि के कारण दो भिन्न मानव समाज एक समान नहीं होते, अतः एक भाषा में व्यक्त भाव तथा विचार को हू-ब-हू दूसरी भाषा में व्यक्त करना मुश्किल होता है। कविता चूँकि विशिष्ट भाषिक सृजन होती है। अतः यह कठिनाई भाषा के कारक तत्त्वों की भिन्नता और भाषा में अंतर्ध्वनित समाज की जीवन-प्रणाली, सभ्यता तथा संस्कृति को लेकर होती है। उदाहरण के लिए हिंदी के मूर्धन्य, कवि आलोक धन्वा की प्रसिद्ध कविता 'ब्रूनो की बेटियाँ' का प्रारंभिक अंश तथा उसके अंग्रेजी अनुवाद पर गौर किया जा सकता है।

ब्रूनो की बेटियाँ
वे खुद टाट और काई से नहीं बनी थीं
उनकी माताएँ थीं
और वे खुद माताएँ थीं।

उनके नाम थे
जिन्हें बचपन से ही पुकारा गया
हत्या के दिन तक
उनकी आवाज में भी
जिन्होंने उनकी हत्या की!

उनके चेहरे थे
शरीर थे, केश थे
और उनकी परछाइयाँ थीं धूप में!

गंगा के मैदानों में उनके घंटे थे काम के
और हर बार उन्हें मजदूरी देनी पड़ी!
जैसे देखना पड़ा पूरी पृथ्वी को
गैलीलियों की दूरबीन से!

वे राख और झूठ नहीं थीं
माताएँ थीं
और कौन कहता है? कौन? कौन वहशी?
कि उन्होंने बगैर किसी इच्छा के जन्म दिया?

उदासीनता नहीं थी उनका गर्भ
गलती नहीं थी उनका गर्भ
आदत नहीं थी उनका गर्भ
कोई नशा --
कोई नशा कोई हमला नहीं था उनका गर्भ

कौन कहता है?
कौन अर्थशास्त्री?

उनके सनम थे
उनमें झंकार थी
वे माताएँ थी
उनके भी नौ महीने थे
किसी ह्वेल के भीतर नहीं -- पूरी दुनिया में
पूरी दुनिया के नौ महीने![9]

Bruno's Daughters

They had not willed themselves

To be made from scum and sack-cloth,
They had mothers, and
Were mothers themselves.

They had names,
And they rang from their childhood
To their last --
Even in the voice of those
That killed them!

They had faces.
Bodies.
Hair.
And in the sun they had their shadows.

In the plains of the Ganga they had
Their hours of work, each time
They'd had to be given their dues!
Like the world was forced
To look through Galileo's telescope!

They were not ashes and lies,
They were mothers
And who is that brute, who says
That they bore their children
Desiring none?

Their womb was not an indifference,
It was not a mistake
Nor habit,
It was not an intoxicant
Not an intoxicant,
Their womb was no transgression.
Who says it was?
Which economist?
They had their lovers.
They knew the thrill.

They were mothers.
They too had their nine months,

Not inside some whale
But in the whole world --
Nine months of this whole world ![10]

'ब्रूनो की बेटियाँ' आलोकधन्वा की एक बेहद संजीदा, विचार, दृश्य, नाटकीयता आदि से भरपूर कलात्मक कविता है। यह अस्सी के दशक में मध्य बिहार में बेहतर जीवन की आकांक्षा में संगठित हुए मेहनतकश मजदूरों पर नवसामंत भूस्वामियों द्वारा जुल्म ढाने और उनकी बस्तियाँ जलाने की पृष्ठभूमि पर लिखी गई कविता है। जिस देश में गणतंत्रात्मक समाजवादी संविधान का शासन हो और निर्वाचित जन-प्रतिनिधियों वाला सर्वोच्च संसदीय लोकतंत्र हो, उसी देश में अपने श्रम से समाज को खुशहाल और सुंदर बनाने में रत मजदूरनियों के साथ बलात्कार हो और फिर उनकी पूरी बस्ती को आग लगाकर उन्हे बाल-बच्चों समेत जलाकर मारने की लोमहर्षक घटना हो तो इस विसंगति और बर्बरता को देखकर आधुनिक कवि के जेहन में मध्ययुगीन ब्रूनो संहार का स्मरण हो आना आकस्मित नहीं है।

ब्रूनो इटली के अपांक्तेय वैज्ञानिक-दार्शनिक थे। उनका पूरा नाम ज्योर्दानो फिलिप्पो ब्रूनो था। उन्होंने चर्च द्वारा फैलाए गए अंधविश्वास तथा धार्मिक रूढ़ियों को चुनौती देते हुए कोपरनिक्स की इस स्थापना का समर्थन किया कि ब्रह्मांड के केंद्र में सूर्य है और हमारे सौरमंडल के अलावा और भी सौरमंडल हैं। सन् 1600 ई. में ईसाई धर्म संसद के आदेश पर उन्हें जिंदा जला दिया गया। बाद में महान वैज्ञानिक गलीलियो ने इसी वैज्ञानिक चेतना का विकास किया।

कहना न होगा कि अपने सद्प्रयासों से समाज की जिंदगी और संस्कृति को भ्रम-विहीन, सुंदर और रागात्मक बनाने में कार्यरत ज्योर्दानो फिलिप्पो ब्रूनो को जलाकर भी उनके सच और वैज्ञानिक विचारों को जलाया नहीं जा सका, उसी तरह श्रमिक स्त्रियों को जलाकर भी जनाकांक्षा और श्रम के सौंदर्य को मिटाया नहीं जा सकता। इसी विचार-भूमि से ऊर्जस्वित कविता है -- 'ब्रूनो की बेटियाँ'। यह एक बेहद सशक्त और पक्षधर कविता है और इसकी प्रतीति आक्रोशजनित आत्मश्विास से लबालब है। मार्मिक तथा मुखर दृश्यावलियों में रची गई यह कविता अपना पक्ष और प्रतिपक्ष आद्योपांत अपने साथ रखती है। इससे कविता में स्मृति, अभिनय और नाटकीयता का समावेश हुआ है। सार्थक और प्रखर वक्तव्यों, अनुभूति-प्रवण दृश्यों एवं कठिन कर्म की कोमल यादों से रची-बसी इस कविता का सरोकार जितना व्यापक है, उतना ही कलात्मक तथा महाकाव्यात्मक है इसका रचना विधान। इन्हीं असाधारण गुणों के कारण यह कविता आधुनिक हिंदी की एक विलक्षण तथा अविस्मरणीय कविता है। कहने की आवश्यकता नहीं कि 'ब्रूनो

की बेटियाँ' कविता की ये सारी खूबियाँ उसे मूल रूप में रचना की भाषा में पढ़कर ही अनुभूत की जा सकती हैं, अनूदित भाषा में नहीं। इतनी कलात्मक, अनुभूति-प्रवण, संवेद्य और सवाक् कविता को अनुवाद में ढालना कठिन ही नहीं असंभव है। भाषा की संस्कृति इसमें आड़े आती है।

'ब्रूनो की बेटियाँ' का प्रस्तुत अनुवाद 'सर्वाइवल' पुस्तक से उद्धृत है, जिसे साहित्य अकादमी ने छापा है। इसके संपादक अंग्रेजी के कवि, मर्मज्ञ डेनियल वेइसबोर्ट और हिंदी कवि गिरधर राठी हैं। 'सर्वाइवल' दस आधुनिक हिंदी कवियों की चुनी हुई कविताओं के अंग्रेजी अनुवाद का संकलन है। यह 3-16 जनवरी, 1990 में साहित्य अकादमी की ओर से दिल्ली में आयोजित अनुवाद कार्यशाला का परिणाम है। अकादमी ने काव्यानुवाद को मानक अंग्रेजी के अनुरूप ढालने के लिए कार्यशाला में विशेषज्ञ के रूप में ब्रिटेन में जन्मे और अमरीकी आयोवा विश्वविद्यालय में अंग्रेजी एवं तुलनात्मक साहित्य के प्रोफेसर डेनियर वेइसबोर्ट को आमंत्रित किया था। 'सर्वाइवल' को पढ़ने से पता चलता है कि उसमें संकलित ज्यादातर कविताओं के अनुवाद का पुनरीक्षण वेइसबोर्ट ने किया है (कुल 84 कविताओं में से 66 का)।

इस कार्य में बेइसबोर्ट ने चार साल लगाए। परंतु इतना लंबा समय लेने के बाद भी वेइसबोर्ट आलोक धन्वा की 'सर्वाइवल' में संकलित दो काव्युनवादों 'ब्रूनोज डॉटर्स' एवं 'द काइट' में से किसी एक का भी पुनरीक्षण (vetting) नहीं कर सके। निश्चय ही इसके पीछे कोई इतर कारण नहीं रहा होगा, सिवाय आलोक धन्वा की काव्य भाषा के, उसकी अभिव्यंजना के और मूल के समग्र प्रभाव के। जो कविता अंतर्वस्तु और रूप के मामले में अत्यंत संश्लिष्ट एवं कलात्मक हो तथा जिसके प्रत्येक बंद में आवेग, ऊर्जा और उद्वेलन हो, उसका अनुवाद और पुनरीक्षण निश्चय ही कठिन होगा। किसी परदेशी के लिए तो और भी कठिन। वैसे भी कविता के अनुवाद में मुश्किलें कई होती हैं। काव्यवस्तु, उसमें अंतर्भुक्त संवेदना, अनुभूति, आक्रोश, नाटकीयता आदि का भाषांतरण मुश्किल होता है। दो भाषाओं में सांस्कृतिक तथा अभिव्यक्ति-जनित अंतर होने की वजह से कविता की अभिव्यंजना को अनुवाद में सुरक्षित रखना तो असंभव होता है। तब जबकि 'ब्रूनो की बेटियाँ' कविता का अनुवाद बी.के. पॉल, रोमा पॉल, अनिल सारी, के. सच्चिदानंदन और गिरधर राठी का सामूहिक प्रयत्न हो, वेइसबोर्ट इसका पुनरीक्षण करते भी तो क्या करते?

अनुवाद स्रोत भाषा के पाठ और पाठ में अंतर्भुक्त कथ्य का होता है। इसी प्रकार पुनरीक्षण अनूदित पाठ का होता है, जिसमें मुख्य रूप से यह विचारणीय होता है कि मूल पाठ का कथ्य पूरी तरह से अंतरित हुआ है अथवा नहीं। किंतु जब कथ्य ही

बेहद गझिन, संवेद्य और समझ से परे हो तो पुनरीक्षण क्या होगा? वेइसबोर्ट ने 'सर्वाइवल' के आमुख में स्वीकार किया है -- ''I think that to translate or to be involved in translating out of one's own language, too, concentrates the attention wonderfully on sound, sense, on intent.''[11] (अर्थात् मैं समझता हूँ कि अनुवाद करना अथवा अपनी भाषा से परे के अनुवाद कार्य में संलग्न होना भी भाषा की ध्वनि, संवेदना, उद्देश्य पर गहरा ध्यान एकत्र करना है।)

प्रसिद्ध रूसी विद्वान लॉटमैन (Lotman) ने काव्यानुवाद के चार आधार बताए हैं -- विषय, संरचना, भाषा और अन्य। इसी प्रकार लेफवेरे (Lefevere) ने काव्यानुवाद के सात प्रकार बताए हैं -- स्वनिमिक (Phonemic), शाब्दिक (Literal), छांदिक (Metrical), गद्यात्मक (Proseic), तुकांत (Rhymed), अतुकांत (Blank verse), और व्याख्यात्मक (Interpretation)। जाहिर है कि कविता के अनुवाद में उक्त आधारों का चयन कविता की प्रकृति पर निर्भर करता है। तब जाकर जो अनुवाद संभव होता है, वह उक्त प्रकारों में से किसी एक प्रकार का होता है। परंतु ध्यातव्य है कि ये सभी आधार और प्रकार सामान्य कविता के प्रसंग में ही चरितार्थ होते हैं। जब 'ब्रूनो की बेटियाँ' जैसी कविता अनुवाद का विषय बनती है, तो कोई आधार अथवा प्रकार काम नहीं करता। सारे आधार और प्रकार धरे के धरे रह जाते हैं। लय और प्रवाह के मामले में निराला, दिनकर, शमशेर और आलोक धन्वा आधुनिक हिंदी के ऐसे कवि हैं, जिनकी रचनाओं के अनुवाद में काव्यानुवाद के आधार और प्रकार काम नहीं करते।

शाब्दिक रचना भाषा में होती है। कविता शाब्दिक रचना का श्रेष्ठतम रूप है। कविता में कवि का जो प्रतिपाद्य होता है, और उस प्रतिपाद्य का जो ढंग होता है (जिसके कारण कविता विशिष्ट कलारूप बनती है) उसे स्वाभाविक ढंग में केवल उसी भाषा में व्यंजित किया जा सकता है। यानी कविता की श्रेष्ठता मूल रचना में होती है और मूल को पढ़कर ही श्रेष्ठता, महानता के बोध प्राप्त किए जा सकते हैं। अनुवाद कविता की छाया होता है। स्वाभाविक है कि अनूदित कविता में मूल के प्रतिपाद्य का छायाभास होगा। छाया अथवा छायाभास से मूल का आधा-अधूरा बोध ही हो पाता है, क्योंकि उसमें मूल कविता जैसी न पठनीयता होती है, न मूल जैसी व्यंजना और न मूल जैसी संप्रेषणीयता। फिर बदले हुए माध्यम के कारण काव्याभिव्यक्ति का प्रभाव भी मूल के समान नहीं हो पाता। परिणाम होता है कि अच्छी से अच्छी कविता भी अनुवाद में औसत बनकर रह जाती है। निश्चय ही काव्यानुवाद की यह बड़ी सीमा है। कवि, अनुवादक गिरधर राठी ठीक ही कहते हैं -- "... all translation is by nature Janus-faced- none more so than poetic translation. What becomes available even as the best possible, eminently readable and appreciable piece of a poem in the

'target' language, invariable invites the reader to look over at the other side, where numerous subtleties and nuances in the original might still be lurking to be discovered for enchantments or shocks all of their own."[12] (अर्थात् सभी (काव्य) अनुवाद स्वभाव से दोमुँहा होते हैं -- सबसे उत्तम अनुवाद भी। जिस काव्यानुवाद को यथासंभव उत्तम, अत्यंत पठनीय तथा पसंदीदा माना जाता है, पाठक जब उसके दूसरे पहलू को देखता है तो वहाँ मूल की अनेक सम्मोहक या अभिव्यंजक बारीकियाँ और विशेषताएँ नहीं मिलतीं।)

किंतु याद रखना होगा कि यह सीमा कभी काव्यानुवाद की राह की बाधा नहीं बनी। कविताओं के अनुवाद का सिलसिला अनवरत जारी है और जारी रहेगा। इसलिए कि कविता अपने कुछ दुर्लभ गुणों के कारण सदियों से मनुष्य को सम्मोहित करती रही है; कविता संवेदना और अनुभूति की गहनता के बावजूद लोक का रंजन करने से कभी विरत नहीं होती। मानव-मन को जो सुख, आनंद और प्रशांति कविता से मिलती है, वह अन्यत्र नहीं मिलती और आनंद तथा प्रशांति का सम्मोहन सभी सम्मोहनों से बढ़कर होता है। फलतः मनुष्य कविता की अनुभूति में बार-बार लौटना चाहता है और जो लोग इससे परे होते हैं, उन्हें शामिल करना चाहता है। इसमें अनुवाद की बड़ी कारगर भूमिका होती है। पराई भाषा की कविता का रसास्वादन अनुवाद के जरिए ही संभव होता है। इसलिए तमाम समस्याओं और सीमाओं के बावजूद यह सिलसिला अबाध चलता है।

कविता अपने कुछ विशिष्ट गुणों के कारण साहित्य की श्रेष्ठतम विधा होती है। ये गुण संरचनात्मक और अभिव्यंजनात्मक होते हैं। इसमें छंद, लय, अलंकार, ध्वनि आदि का विशिष्ट संयोजन होता है। ये कविता के वे गुण होते हैं, जो आमतौर पर कथा, निबंध, नाटक आदि साहित्य की गद्य-विधाओं के लिए नहीं होते। इन्हीं गुणों की बदौलत कविता न केवल साहित्य में, वरन् समग्र कलाओं में अप्रितम मानी जाती है। किंतु विडंबना है कि कविता के ये विशिष्ट गुण ही उसके अनुवाद में राह के रोड़े बनते हैं।

आमतौर पर कविता का अनुवाद करते समय उसके शाब्दिक संयोजन तथा उसके अर्थ और भाव पर ध्यान दिया जाता है। अनुवादक का प्रयत्न होता है कि अनुवाद में कविता के शब्द, अर्थ और भाव आदि पहलुओं का अंतरण हो। वैसे अनुवाद शब्द, अर्थ और भाव का समवेत् अंतरण ही होता है। किंतु कविता में अलंकार का भी एक महत्त्वपूर्ण पहलू होता है जो शब्दों की बुनियाद पर आधारित होता है। इसमें शब्द और केवल शब्द का संयोजन होता है। परंतु वे शब्द इतने अर्थव्यंजक होते हैं कि कविता के अलंकार (आभूषण) बन जाते हैं और उसके अर्थगत तथा भावगत सौंदर्य में चार

चाँद लगा देते हैं। शब्दों में अभिव्यंजित अलंकार के दर्जनाधिक भेद-प्रभेद होते हैं, जो कविता में वर्ण, शब्द, अर्थ और भाव के धरातल पर उद्‌घाटित होते हैं। कविता के अनुवाद में शब्द, अर्थ और भाव का अंतरण बहुत हद तक हो जाता है। कभी-कभी कोई शब्द अपने ज्ञान और कौशल से उसका व्याख्यात्मक निदान कर लेता है। अनुवाद में अपवाद-रूप में ऐसा होना मान्य भी है। जैसे बोरिस पास्तरनाक की कविता 'द विंड' का अनुवाद करते हुए धर्मवीर भारती ने किया है। इस प्रसंग पर किंचित विस्तार से आगे विचार किया जाएगा। परंतु अलंकार में अभिव्यंजित कविता के शब्दगत तथा अर्थगत विशेषताओं का अंतरण अनुवाद में असंभव होता है, क्योंकि अलंकार, छंद और लय के समान ही भाषा का बिलकुल निजी एवं विशिष्ट गुण होता है, जिसका अंतरण नहीं होता।

अलंकार के नाना रूप होते हैं। शब्दालंकार और अर्थालंकार के भेद-प्रभेद में निहित अलंकार वर्ण के स्तर पर चरितार्थ होता है और अभियक्ति को अभिराम बनाता है। इसलिए अलंकार में रचित काव्य का अनुवाद असंभव होता है। भाषिक अलंकार शब्द और अर्थ में निहित होता है। किसी भाषा में एक शब्द के जितने अर्थ और भावार्थ होते हैं, जरूरी नहीं कि दूसरी भाषा में उसके पर्याय के वही अर्थ और भावार्थ हों। इससे दो भाषाओं के बीच उपमा और उपमान में भिन्न्ता आती है। कविता में उपमा और उपमान का विशेष योग और महत्त्व होता है, किंतु दो भाषाओं में ये एक समान नहीं होते। जैसे -- कमलानन, कमलनयन, कमलमुख, कमलगात, कमलासन, करकमल, चरणकमल आदि पदबंध। ये पदबंध न सिर्फ हिंदी भाषा के, बल्कि समस्त भारतीय भाषाओं के बहुप्रयुक्त और लोकप्रिय पदबंध हैं। किंतु विदेशी भाषाओं में इन पदबंधों के पर्याय भारतीय भाषाओं जैसे अर्थव्यंजक एवं प्रचलित नहीं हैं। इन पदबंधों से युक्त कविता का अनुवाद यदि किसी विदेशी भाषा में किया जाए तो निश्चय ही कठिनाई आएगी एवं कविता की व्यंजना बाधित होगी।

काव्यानुवाद इस वजह से भी मुश्किल होता है कि कविता अर्थ और भाव में ही नहीं, शब्द तथा पदबंध के धरातल पर भी बोलती है। जाहिर है कि उपमा और उपमान की भिन्नता के कारण अर्थालंकार कविता के अनुवाद में रोड़े बनते हैं। किंतु अनुप्रास, श्लेष, यमक आदि शब्दालंकारों वाली कविता का अनुवाद तो असंभव होता है। 'कनक-कनक ते सौगुनी, मादकता अधिकाय...' अथवा 'रहिमन पानी राखिए बिन पानी सब सून...'' जैसे दोहे का किसी विदेशी भाषा में तब तक अनुवाद नहीं हो सकता, जब तक उस भाषा में भी कनक और पानी के लिए ऐसे शब्द न हों, जिनके अर्थ क्रमशः सोना तथा धतूरा और चमक, प्रतिष्ठा तथा जल हों। अर्थात् वे शब्द भी हिंदी के कनक

तथा पानी सदृश ही बहुअर्थी हों। कबीर के निम्न दोहे के अनुवाद के साथ भी स्थिति ऐसी ही होगी --

लाली मेरे लाल की, जित देखौ तित लाल।
लाली देखन मैं गई, मैं भी हो गई लाल।।

इस दोहे में 'लाल' शब्द क्रमशः ईश्वर तथा रंग का अर्थबोध कराता है। ऐसे ही 'लाली' लाल संज्ञा का विशेषण मात्र नहीं है, बल्कि ईश्वर की आभा का द्योतक भी है। जब तक 'लाल' और 'लाली' के हिंदी जैसे अर्थ व्यंजक पर्याय दूसरी भाषा में नहीं मिलेंगे, अनुवाद असंभव होगा। यानी अनुप्रास, श्लेष आदि अलंकारों से युक्त कविता के अर्थ और भाव का ही अनुवाद हो सकता है, कविता का नहीं। प्रत्येक भाषा की कविता में ऐसे विशिष्ट उदाहरण मिलते हैं, जिनका सटीक और समतुल्य अनुवाद कठिन ही नहीं, असंभव होता है। इस प्रसंग में अनुवाद शास्त्री डॉ. भोलानाथ तिवारी का भी मानना है कि अलंकार युक्त कविता का अनुवाद असंभव होता है। उन्होंने साहित्य के अनुवाद की समस्याओं पर विचार करते हुए लिखा है -- ''काव्य की भाषा प्रायः अलंकार-प्रधान होती है, किंतु एक भाषा के अलंकारों को दूसरी भाषा में ठीक-ठाक उतार पाना कठिन और कभी-कभी तो असंभव-सा हो जाता है। यूँ तो अर्थालंकार भी उपमानों की असमानता के कारण कभी-कभी अनुवाद में कठिनाई उत्पन्न करते हैं (जैसे 'वह उल्लू जैसा है' में उल्लू मूर्खता का प्रतीक है, किंतु इसका अंग्रेजी अनुवाद करना हो और उल्लू के स्थान पर owl रख दें तो काम नहीं चलेगा, क्योंकि अंग्रेजी में उल्लू 'बुद्धिमान' माना जाता है), किंतु अनुप्रास आदि शब्दालंकारों में तो यह कठिनाई और भी बढ़ जाती है।''[13]

कविता में बिंब और प्रतीक भी बड़े मायने रखते हैं। बिंब और प्रतीक सौंदयशास्त्र के महत्त्वपूर्ण तत्त्व होते हैं। कविता की कलात्मकता में बिंब और प्रतीक का अवदान विशिष्ट होता है। यूँ तो कविता मात्र शब्दों का संयोजन होती है, किंतु इसके शब्दों में निहित वे बिंब और प्रतीक होते हैं, जिनके बल पर कविता अपने पाठक / श्रोता के मन-मस्तिष्क में दृश्यों तथा भावों की झड़ी लगाने में सक्षम बनती है। कवि अपनी कारयित्री प्रतिभा से कविता में शब्दों के द्वारा जो बिंब विधान करता है, उसी से कविता चाक्षुष बनती है और उसी से वह पाठक को काल की यात्रा पर ले जाने के योग्य बनाती है। इसी प्रकार, प्रतीक विधान से कविता अभिव्यक्ति के सूक्ष्म भावों की अनुभूति कराने में समर्थ बनती है। इससे कविता की अभिव्यंजना में अभिवृद्धि होती है और वह शुद्ध कला-रूप बनती है। कलाओं की कोटि में कविता जिन कारणों से सर्वोत्तम मानी जाती है, उसमें बिंब और प्रतीक के विधान अकारण नहीं महत्त्वपूर्ण होते हैं। कवि

कविता में मनोवांछित भावों के उद्दीपन के लिए बिंब और प्रतीक का ही सहारा लेता है। इस प्रकार से कविता में सौंदर्य-सृष्टि तथा भाव-सृष्टि के साथ-साथ रस-सृष्टि में भी बिंब और प्रतीक की भूमिका अहम होती है। उदाहरण के लिए निम्नलिखित पंक्तियाँ देखी जा सकती हैं :

नील परिधान बीच सुकुमार खुल रहा मृदुल अधखुला अंग।
खिला हो ज्यों बिजली का फूल मेघ वन बीच गुलाबी रंग।।

उपर्युक्त पंक्तियाँ 'कामायनी' महाकाव्य की अत्यंत प्रसिद्ध पंक्तियों में से हैं। इन पंक्तियों में प्रसाद जी ने श्रद्धा का सौंदर्य चित्रण किया है। इस क्रम में कवि प्रतिभा ने जो कमाल दिखाया है, जिस अपरूप रूप को साकार किया है, वह निश्चित रूप से बिंब और प्रतीक के कारण संभव हुआ है। किंतु बिंब और प्रतीक भी भाषा के अपने और अनन्य होते हैं। प्रत्येक भाषा के प्रत्येक शब्द का अपना अर्थ बिंब होता है। ये भाषा के साथ-साथ समाज के भौगोलिक, वैचारिक तथा सांस्कृतिक पृष्ठभूमि से जुड़े होते हैं। इसलिए एक भाषा के बिंब अथवा प्रतीक का दूसरी भाषा में अंतरण कठिन होता है। दूसरी भाषा के परिवेश और लोकाचार, संस्कृति और परंपरा इसमें अड़चन बनती हैं। इस कारण से भी कविता के अनुवाद में समस्या आती है।

जिन कविताओं में बिंब और प्रतीक की बहुलता होती है, उसका अनुवाद कठिन ही नहीं, बल्कि असंभव होता है। ऐसी कविताओं के अनुवाद में 'कुछ न जोड़ने तथा कुछ न छोड़ने' की सैद्धांतिकी बिलकुल काम नहीं आती। काव्यानुवाद में वे बड़े नाजुक मौके होते हैं, जब किसी कविता का अनुवाद करना जरूरी होता है; किंतु बिंबों और प्रतीकों में रची-बसी कविता का शब्दानुवाद मुमकिन नहीं होता। ऐसे में अनुवादक के सामने छूट लेने तथा कविता के शब्दार्थ के बजाय भावार्थ का अनुवाद करने के सिवाय कोई उपाय नहीं बचता। और कविता के भावार्थ का अनुवाद मूल से कितना दूर चला जाता है, इसका उदाहरण से ही अनुमान लगाया जा सकता है। उदाहरण के लिए दुष्यंत कुमार की एक प्रसिद्ध गजल का एक शेर और उसका अंग्रेजी अनुवाद नीचे प्रस्तुत है :

अब तो इस तालाब का पानी बदल दो,
ये कँवल के फूल कुम्हलाने लगे हैं।
The present social system has rotten,
This should immediately be changed.

कविता में अलंकार, बिंब और प्रतीक की ही भाँति छंद तथा लय का भी महत्त्व होता है। कविता में पद्यबंध को छंद कहा जाता है। यह मोटे तौर पर कविता का वाक्य होता है, जिसमें वर्ण या मात्रा की गणना के अनुसार विराम की व्यवस्था होती

है। अर्थात् छंद कविता लेखन की एक निश्चित व्यवस्था का नाम है। दूसरे शब्दों में कविता जिस निश्चित व्यवस्था के अनुसार वाक्यों या पदों में लिखी जाती है, उसे छंद कहते हैं। छंद भाषा से संबद्ध होता है और प्रत्येक भाषा के कई सारे अपने और विशिष्ट छंद होते हैं। जैसे भारतीय भाषाओं के संदर्भ में दोहा, चौपाई, कवित्त, छप्पय, रोला, मंदाक्रांता आदि छंद। छंद मुख्यतः मात्रा आधारित तथा शब्द आधारित होते हैं, जिन्हें मात्रिक एवं शाब्दिक कहा जाता है। प्रत्येक छंद की अपनी गति होती है और वह निश्चित वर्णों, मात्राओं तथा पंक्तियों के अनुशासन से बँधा होता है। यूँ आधुनिक कविता प्रायः मुक्त छंद में लिखी जाती है, किंतु छंद में कविता लिखने की परंपरा पूरी तरह खत्म नहीं हुई है, हो भी नहीं सकती। अमूमन मुक्त छंद में कविता लिखने वाले कवि भी छंद में कविता लिखते हैं, क्योंकि छंद ही कविता की वास्तविक कसौटी होता है। छंद से कविता में गेयता आती है और उसे याद करना आसान होता है।

कविता में लय का भी एक तत्त्व होता है, जो छंद के समान ही कविता की गेयता तथा स्मरणीयता में वृद्धि करने वाला और महत्त्वपूर्ण होता है। कविता में लय वर्णों, शब्दों और पंक्तियों का विशिष्ट संयोजन तथा आवृत्ति होती है। मोटे तौर पर यह ढंग या ढर्रा है, जिसे आमतौर पर तर्ज कहा जाता है। गीत में जिसे धुन कहा जाता है, वही कविता में लय कहलाती है। इससे कविता में प्रवाह आता है। कविता में लय वैसे तो वाक्य-व्यवस्था से संबद्ध होती है, किंतु सूक्ष्म स्तर पर यह वर्णों तथा शब्दों से ही अस्तित्व ग्रहण करती है। वर्ण और शब्द के स्तर पर कोमल और पुरुष के भेद लय के विचार से ही किया गया है। लय उच्चारण से संबद्ध होती है। वहीं, उच्चारण में भौगोलिक परिवेश, जलवायु आदि कारकों से प्रभावित मनुष्य के स्वर तंत्र की भूमिका अहम होती है। पुनः उच्चारण वर्णों और शब्दों और वाक्यों का होता है, जो भाषा के होते हैं। इसलिए लय का संबंध भी भाषा से अविच्छिन्न होता है। अतः छंद की तरह लय भी भाषा की अपनी होती है और खास होती है।

जाहिर है, कविता में छंद और लय दोनों अपनी-अपनी तरह से महत्त्वपूर्ण होते हैं। ये कविता की पहचान होते हैं और इनसे कविता खास बनती है। परंतु कविता को जब दूसरी भाषा में अनूदित किया जाता है तो सबसे अधिक चुनौती छंद और लय के स्तर से ही उत्पन्न होती है। कविता छंदबद्ध भी होती है और छंदमुक्त भी। किंतु किसी भी स्थिति में कविता लयमुक्त नहीं होती। कविता कविता होती है तो शब्द संयोजन और अभिव्यंजना की तरह लय की शर्त भी अहम होती है। पर जब कविता का अनुवाद करना पड़ता है, तो अड़चन बनने वाले कारकों में छंद के साथ लय भी शामिल होती है क्योंकि बिंब, प्रतीक, अलंकार आदि की तरह छंद और लय

भी भाषा के साथ अभिन्न तथा अविच्छिन्न होते हैं। जैसी भाषा वैसा छंद और वैसी ही लय। कविता के कथ्य या अंतर्वस्तु का अनुवाद तो हो जाता है, किंतु छंद और लय का नहीं। बिंब और प्रतीक की भाँति छंद और लय भी कविता के शिल्प पक्ष से आबद्ध होते हैं। शिल्प रचना का गोचर तथा भाषिक संरचना में घटित होने वाला गुण है। स्वभावतया जैसी भाषा होती है, जैसी भाषा की प्रकृति होती है, बिंब, प्रतीक, छंद, लय आदि में अंतर्भुक्त शिल्प भी वैसा ही होता है। इसलिए जब कोई कविता अनुवाद का विषय बनती है, तो उसके कथ्य का भाषांतरण तो आसान होता है, परंतु उसके छंद और विशेषकर लय का अंतरण एक तरह से नामुमकिन होता है। उदाहरण के लिए क्रांतिकारी रामप्रसाद बिस्मिल की मशहूर कविता का एक अंश और उसका अंग्रेजी अनुवाद नीचे देखा जा सकता है :

सरफरोशी की तमन्ना,	Our hearts are filled with desire
अब हमारे दिल में है।	to lay down our heads
देखना है जोर कितना,	we shall keenly watch the force of arm
बाजुए कातिल में है।	With which the murderer strikes.

उपर्युक्त उदाहरण में अनुाद मूल रचना से छंद, लय, प्रभावादि में कितना भिन्न और निष्प्रभ है, बताने की जरूरत नहीं। ऐसे में निराला की 'बादल राग' जैसी लयात्मक कविता का यदि अनुवाद हो तो उस अनुवाद का क्या हश्र होगा, अंदाजा लगाया जा सकता है। अनुमान के लिए 'बादल राग' शीर्षक कविता का प्रारंभिक अंश यहाँ प्रस्तुत है :

झूम-झूम मृदु गरज-गरज घन घोर।
राग अमर। अंबर में भर निज रोर!
झर झर झर निर्झर-गिरि-सर में,
घर, मरु, तरु-मर्मर, सागर में,
सरित-तड़ित-गति-चकित पवन में
मन में, विजन-गहन-कानन में,
आनन-आनन में, रव-घोर-कठोर --
राग-अमर! अंबर में भर निज रोर।[14]

अभिप्राय स्पष्ट है कि कविता का अनुवाद कठिन होता है और उसके अनुवाद में बहुत सारी समस्याएँ आती हैं। ये समस्याएँ कविता की अंतर्वस्तु और रूप (content and form) से संबंधित होती हैं। यही कारण है कि कविता के अनुवाद को 'अनुरचना' या 'अनुसृजन', अथवा 'पुनर्सृजन' कहा जाता है क्योंकि कोई भी कविता अनूदित होने पर वही नहीं रहती, जैसे कि वह मूल रूप में होती है। कविता अनुवाद में एक समानांतर

कविता या नई रचना, जिसे अनुरचना कहना ज्यादा उपयुक्त होगा, हो जाती है। मूल कविता और अनूदित कविता की संवेदना, अनुभूति, अर्थ-निष्पिति अथवा संप्रेषणीयता और प्रभावमयता एक जैसी नहीं होती। फर्क आ जाता है। यह फर्क दो भाषाओं का, दो भाषाओं के शब्दों और बिंबों का और सबसे बढ़कर दो भाषाओं के अंतर्ध्वनित संस्कृतियों का होता है। मूल और अनुवाद में फर्क होता है। इन्हीं कारणों से कविता का अनुवाद अनुरचना या अनुसृजन अथवा पुनर्सृजन कहलाता है।

अंततः काव्यानुवाद की समस्या हमारी धारणा की समस्या भी है। कविता को लेकर हम सब एक पवित्र धारणा के शिकार हैं। इस धारणा में कविता श्रेष्ठतम कलारूप है और उसका अनुवाद असंभव है। इसलिए जैसे ही कविता के अनुवाद की बात उठती है, हमारी बद्धमूल धारणा सामने आ जाती है। ऐसे में कविता के अनुवाद का असंभव, कठिन अथवा जटिल प्रतीत होना स्वाभाविक है। फिर भी कविता के अनुवाद के प्रसंग में किंचित व्यावहारिक दृष्टि से विचार करने की जरूरत है। सवाल है कि अनुवाद क्यों और किसलिए? जवाब बड़ा आसान है। अनुवाद इसलिए कि जो मूल रचना नहीं पढ़ सकते, मूल रचना की भाषा से अनजान हैं, उन्हें उनकी जुबान में वह उपलब्ध कराई जाए ताकि वे उसे पढ़ और जान सकें; उसका रस्वास्वादन कर सकें। और इस प्रकार से उससे लाभान्वित हो सकें। काव्यानुवाद का उद्देश्य भी यही है। इसके द्वारा वे लोग, जो मूल कविता की भाषा से अनभिज्ञ हैं, कविता तथा उसके कवि से परिचित हो जाते हैं। काव्यानुवाद का उद्देश्य यह कभी नहीं होता कि वह कविता को मूल की पूरी अर्थवत्ता के साथ लक्ष्य भाषा में पुनर्सृजित करे। अनुवाद से इतनी अपेक्षा करना ज्यादती है। अनुवाद आखिर पुनर्सृजन है, सृजन नहीं। पुनर्सृजन कभी सृजन नहीं बन सकता। कविता विशुद्ध सृजन है। उसका अनुवाद सृजन कैसे बन सकता है? और अंत में बकौल मिर्जा गालिब :

> ''या रब वो न समझे हैं न समझेंगे मेरी बात
> दे और दिल उनको जो न दे मुझको जुबाँ और।
> O Lord, they do not understand, nor will they understand my words,
> Give them another heart, or else give me another tongue."[15]

❑

संदर्भ

1. मेघदूत, अनुवादक : केशवप्रसाद मिश्र, राजकमल, पेपरबैक्स, नई दिल्ली, पहला संस्करण, 1984, पृष्ठ 36
2. अनुवाद : सिद्धांत और समस्याएँ, संपादक : डॉ. रवींद्रनाथ श्रीवास्तव, डॉ. कृष्ण कुमार

गोस्वामी, आलेख प्रकाशन, दिल्ली, 1985 में संकलित बीना श्रीवास्तव के 'काव्यानुवाद की समस्याएँ' शीर्षक लेख से उद्धृत, पृष्ठ 62

3. वही, पृष्ठ 54
4. काव्यानुवाद की समस्याएँ, संपादक : डॉ. भोलानाथ तिवारी, महेंद्र चतुर्वेदी, शब्दकार, दिल्ली, पहला संस्करण 1980, पृष्ठ 161
5. विदेशी भाषाओं से अनुवाद की समस्याएँ, संपादक : भोलानाथ तिवारी, नरेश कुमार, प्रभात प्रकाशन, दिल्ली, प्रथम संस्करण 1987 पुस्तक में संकलित 'कुछ विदेशी कविताओं के हिंदी अनुवाद : एक समीक्षात्मक, शीर्षक लेख, पृष्ठ 191-192
6. राष्ट्रभाषा हिंदी : समस्याएँ और समाधान, आचार्य देवेंद्रनाथ शर्मा, लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद, चतुर्थ संस्करण 1987, पृष्ठ 142
7. यहाँ से देखो, केदारनाथ सिंह, राधाकृष्ण प्रकाशन, नई दिल्ली, दूसरी आवृत्ति 1984, पृष्ठ 21-22
8. *Survival : An experience and an experiment in translating modern Hindi poetry,* Ed. Daniel weissbort, Girdhar Rathi, Sahitya Academy, New Delhi, First Edition 1994, pp. 24-25
9. दुनिया रोज बनती है, आलोक धन्वा, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, दूसरा संस्करण 2005, पृष्ठ 56-57
10. *Survival : An experience and an experiment in translating modern Hindi poetry,* Ed. Daniel weissbort, Girdhar Rathi, Sahitya Academy, New Delhi, First Edition 1994, pp. 66-67
11. ibid, Preface; p. ix
12. ibid, Introduction, p. xv
13. अनुवाद विज्ञान, डॉ. भोलानाथ तिवारी, शब्दकार, दिल्ली, चौथा संस्करण 1984, पृष्ठ 135
14. निराला रचनावली-1, संपादक : नंद किशोर नवल, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, प्रथम संस्करण 1983, पृष्ठ 116
15. अनुवाद का सामयिक परिप्रेक्ष्य, संपादक : प्रो. दिलीप सिंह, उच्च शिक्षा और शोध संस्थान, दक्षिण भारत हिंदी प्रसार सभा, हैदराबाद, प्रथम संस्करण दिसंबर 1999 से उद्धृत, पृष्ठ 78

डॉ. हरीश कुमार सेठी

सृजनात्मक काव्य शक्ति और अनुवाद चिंतन

देश-विदेश के विभिन्न अनुवादविदों द्वारा निजी अनुभवों के आधार पर अनुवाद-कर्म पर बड़े-बड़े लेखों के माध्यम से अनुवाद की कंटकाकीर्ण यात्रा के रंगीन-नमकीन एवं सुखद-दुःखद अनुभवों को अभिव्यक्त कर 'अनुवाद' विषयक दृष्टिकोण प्रस्तुत किए जाते रहे हैं। गहन-गंभीर विवेचन करने वाले इन्हीं दृष्टिकोणों से अनुवाद-सिद्धांत के विविध आयाम हमारे सामने प्रस्तुत होते हैं। अनुवाद के सिद्धांत पक्ष की जानकारी के आधार पर हमें अनुवाद मूल्यांकित करने वाली कसौटी प्राप्त हो जाती है, दृष्टिकोण प्राप्त हो जाता है। विषय, भाषा साहित्यांग तथा संस्कृति-परिवेश संबंधी प्रचलित इन अनुवाद विषयक दृष्टिकोणों-सिद्धांतों-मानदंडों-विचारधाराओं की कसौटी पर अनूदित रचना अथवा कृति के परिप्रेक्ष्य में एक सुनिश्चित एवं निष्कर्षात्मक धारणा बनने में सहायता मिलती है।

इधर, काव्य-प्रतिभा के माध्यम से भी अर्थात् अनुवाद-अनुभवों को कविता के साँचे में ढालकर अनुवाद सिद्धांत चिंतन के विविध पक्ष हमारे सामने आ रहे हैं। यहाँ प्रश्न यह उभरता है कि कविताओं के माध्यम से अनुवाद सिद्धांत चिंतन क्या है? वास्तव में अनुवाद की भूमिका-महत्व, अनुवाद करते समय उपस्थित होने वाली कठिनाइयों-समस्याओं, अनुवादकों का दर्शन आदि अनुवाद की दुनिया में कमोबेश प्रत्येक पक्ष को काव्य-भाषा, शब्द, स्वर, लय, गति, संवेदना, बिंबों-प्रतीकों आदि द्वारा किसी-न-किसी रूप में उद्घाटित करने का प्रयास भी अनेक अनुवादक विद्वानों द्वारा किया जाता रहा है। गद्य में अनुवाद-कर्म के विविध पक्षों का उद्घाटन सरल है, किंतु उन्हें कविता का विषय बनाकर काव्य-उपकरणों की सहायता से शब्दबद्ध करना असंभव नहीं तो कठिन एवं चुनौती-भरा कार्य तो अवश्य ही है।

कविता में अनुभूतियों एवं आवेग-भाव अथवा विचार एवं कल्पना का महत्वपूर्ण स्थान है क्योंकि इन्हें शब्दबद्ध करने की प्रक्रिया से गुजर कर काव्य-रचना होती है। 'वियोगी होगा पहला कवि, आह से निकला होगा गान' आदि काव्य-पंक्तियाँ यही दर्शाती

हैं कि कविता अनुभवों का शाब्दिक उद्‌घाटन है। यह शाब्दिक उद्‌घाटन, विचारों को शब्दों में प्रस्तुत करके हो पाता है। विचारों का उभरना एवं उनकी 'शाब्दिक प्रस्तुति' में शाब्दिक प्रस्तुति वस्तुतः भावों-विचारों को शब्दों के रूप में अनूदित करने की प्रक्रिया का ही द्योतक है। इस दृष्टि से देखा जाए तो 'कविता' के रूप में परिणत एवं शब्दबद्धता की प्रक्रिया से गुजरी अनुभूतियाँ एवं आवेग-भाव अथवा विचार एवं कल्पना एक प्रकार से अनुवाद ही है। यह सही है कि कविता, भाषा-इतर माध्यम से अनुवाद की बैसाखी से भाषा-विशेष में प्रवेश कर पाती है और कविता निजी मुहावरे में अनूदित हो कवि-विशेष की काव्य रचना बन जाती है। यही बात अनुवाद-विषयक कविताओं सहित सभी प्रकार की कविताओं पर लागू होती है। लेकिन इस दृष्टिकोण को अनुवाद-विषयक कविताओं पर लागू किया जाए तो यह उद्‌घाटित होता है कि अनुवाद एवं अनुवादक संबंधी प्रत्येक पक्ष को काव्य के माध्यम से उकेरना एवं सीमित शब्दों में संपूर्ण दृश्य-चित्र को शब्द-चित्र के माध्यम से उभार देना, कवि-अनुवादक के धधकते विचार एवं भाव प्रक्रिया की परिणति कहा जा सकता है।

वैसे तो भारतीय एवं पाश्चात्य साहित्य जगत में काव्य के माध्यम से सिद्धांतों का विवेचन करने की परंपरा रही है, काव्य के माध्यम से अनुवाद-चिंतन को भी उसी परंपरा की कड़ी के रूप में देखा जा सकता है। संस्कृत के 'शब्दकल्पद्रुम' में अनुवाद (भाष्य) को परिभाषित करते हुए कहा गया है कि ''सूत्र में स्थित पदों को लेकर सूत्रों के अनुसार ही पदों (शब्दों) में जब वर्णन किया जाता है तो उसे भाष्य (अनुवाद) कह सकते हैं'' :

सूत्रस्थं पदमादाय पदैः सूत्रानुसारिभिः।
स्वपदानि च वर्ण्यन्ते भाष्यं भाष्यविदो विदु।।[1]

स्पष्ट ही है कि उक्त उद्धरण में संस्कृत श्लोक-रचना के माध्यम से अनुवाद (भाष्य) को परिभाषित करने का प्रयत्न किया गया है। हिंदी साहित्य के इतिहास में 'भक्तिकाल' एवं 'रीतिकाल' नाम से विख्यात काल-खंडों के अनेक कवियों और कवि-आचार्यों ने संस्कृत ग्रंथों का अनुवाद करते समय अनुवाद को काव्य के माध्यम से 'भाषा' कहकर पुकारा। उदाहरण के तौर पर, रीतिकालीन कवि-आचार्य सोमनाथ ने अपनी रचना में एक स्थल पर लिखा है :

कही बहादुर सिंह ने एक दिना सुख पाई।
सोमनाथ या ग्रंथ की भाषा देहु बनाई।।[2]

इसी तरह 'अनुवाद' शब्द को 'भाषा करना' अथवा 'भाषा में करना' (अर्थात् किसी अन्य भाषा में कही गई बात को बोलचाल में प्रचलित भाषा में कहना) के अर्थ में प्रयुक्त करते हुए ब्रह्मचारी नंदलाल ने लिखा है :

बन्दो सिव अवगाहना अस बंदौ शिवपंथ।
जस प्रसाद भाषा करौं नाटक नाम गिरंथ।।[3]

मध्यकालीन कवि धौंकल मिश्र ने अपनी काव्य-दृष्टि से प्रेरित होकर 'प्रबोधचंद्रोदय' नाटक की अपने आश्रयदाता श्री तेजसिंह भूपाल की आज्ञा से 'भाषा' तैयार की थी अर्थात् अनुवाद किया था। काव्य-रसिकता की वजह से उन्होंने इस तथ्य का उल्लेख करते हुए लिखा :

इस दिन अनुज्ञा करी रचियें ग्रंथ यह सुछंद।
पदबोध चंद्रोदय सुनाटक वानि नर सानंद।
तब ही अनुज्ञा पाय धौंकल मिश्र मति अनुसार।
रचि वर्ण भाषा के धरे सज्जन पढ़ौ करि प्यार।।[4]

इसी प्रकार, काव्य के माध्यम से अनुवाद-चिंतन परंपरा आधुनिक काल में भी जारी रही। आधुनिक काल में भारतेंदु हरिश्चंद्र, आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी, राष्ट्रकवि मैथिलीशरण गुप्त, डॉ. हरिवंशराय बच्चन आदि अनेक कवि-अनुवादकों ने इस परंपरा को आगे बढ़ाया है। कविता के माध्यम से अनुवाद की महत्ता एवं उसकी उपयोगिता का सैद्धांतिक रूप से बखान करने की परंपरा आज तक जारी है। आधुनिककालीन साहित्य के भीष्म पितामह भारतेंदु हरिश्चंद्र ने अनुवाद के महत्व को रेखांकित करते समय काव्य को भावाभिव्यंजना का माध्यम बनाया और लिखा :

पै सब विद्या की कहूँ होय जु पै अनुवाद।
निज भाषा में सबै या कौ लैहें स्वाद।।
जानि सकैं सब कुछ सबहिं विविध कला के भेद।
बनै वस्तु कल की इतै मिटै दीनता खेद।।[5]
× × × ×
जहाँ जौ जो गुन लाख्यौ लियो तहाँ सों तौन।
ताही सौं अंग्रेज अब सब विद्या के भौन।
पढ़ि विदेशी भाषा लहत सकल बुद्धि कौ स्वाद।
पै कृत कृत्य न होत ये बिन कछु करि अनुवाद।।[6]

हिंदी साहित्य जगत की प्रतिष्ठित पत्रिका 'सरस्वती' में वर्ष 1905 में उसके तत्कालीन संपादक आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी ने 'ग्रंथाकारों से विनय' करते हुए काव्यात्मक शब्दों में अनुवाद के संबंध में यह अनुनय-आग्रह किया था :

इंग्लिश का ग्रंथ-समूह बहुत भारी है,
अति विस्मृत जलधि समान देहधारी है।
संस्कृत भी इसके लिए सौख्यकारी है,

उसका भी ज्ञानागार हृदयहारी है।
इन दोनों में से अर्थ-रत्न ले लीजै,
हिंदी अर्पण उन्हें प्रेमयुत कीजै।।[7]

राष्ट्रकवि मैथिलीशरण गुप्त की अनुवाद-विषयक निम्नलिखित पंक्तियाँ भी इसी तथ्य को पुष्ट करती हैं :

सज्जनो, भगीरथ प्रयत्न फलें आपके
ले आ सकते हैं यहाँ गंगा के प्रवाह जो।
आप अनुवाद की ही योजनाएँ कर दें
तो कह सकें हम सगर्व -- विश्व भर के
वाङ्मय से जो है वह चुन लिया हमने
और जो हमारा अपना है, अतिरिक्त है।[8]

इसी प्रकार, अनेक विदेशी विद्वानों-कवियों ने कविता के माध्यम से अनुवाद की आवश्यकता, महत्व, समस्याएँ-सीमाएँ, उसकी उपयोगिता आदि को भास्वर प्रदान किया है। अनुवाद को भाषांतर होने से बचाने के लिए अनुवादक, मूल लेखक से अधिक श्रम-साध्य यात्रा करता है। इस यात्रा में जब अनुवादक को निराशा घेर लेती है तो उस निराशा को विलियम फ्रेजर ने अपनी अनुवाद-विषयक काव्य-रचना में उद्घाटित करते हुए लिखा है :

In the Beginning was the Word.
Here I am balked: who, now, can help afford?
The Word? — impossible so high to rate it;
And otherwise must I translate it.[9]

अनुवाद के समक्ष यद्यपि निम्नलिखित प्रकार के, हतोत्साहित करने वाले विचार भी सामने आते हैं :

The servile path thou nobly dost decline,
Of tracing word by word, and line by line.
A new and nobler way thou dost persue,
To make translations and translators too.
They but preserve the ashes, thou the flame,
True to his sense, but truer to his fame.[10]

लेकिन अनुवादक का दृढ़ संकल्प एवं साहस-हिम्मत देश-काल की सीमाओं को तोड़ कर जन-जन को समय की आवाज एवं दृष्टि के बंधन में बाँधना चाहता है। चीन के कवि आई. छिङ् ने अपनी कविता 'वर्ड्स फ्रॉम द सन' (चीनी भाषा से अंग्रेजी भाषा में अनूदित) में अनुवाद के महत्व को रेखांकित करते हुए जो लिखा है उसका हिंदी अनुवाद इस प्रकार है :

छोटे-छोटे लकड़ी के खोखों जैसे अपने दिल और जिगर को खोला!
बहुत देर से बंद पड़ी हैं खिड़कियाँ, अब खोलो!

अपने दिल और जिगर के खानों में
फल, महक, रोशनी, गर्मी, ओस
और बर्फ की बूँदों से
खाली जगह मुझे भर लेने दो![11]

भारत में, विशेषकर हिंदी में अनुवाद के सैद्धांतिक विवेचन संबंधी कविताओं के अभी कुछ वर्ष पूर्व दो काव्य-संग्रह प्रकाश में आए। डॉ. ओम्प्रकाश सिंहल द्वारा संपादित कृति 'अनुवाद के रंग' और डॉ. सिंहल की ही मौलिक कृति 'अनुवाद से संवाद' वे दो पुस्तकें हैं, जिनमें अनुवाद से संबंधित मौलिक कविताएँ संकलित हैं। 'अनुवाद सिद्धांत' को काव्य-विषय बनाकर रचित इन कृतियों में व्यावहारिक अनुभवों से उपजे अनुवाद सिद्धांत चिंतन को शब्दबद्ध करके अनुवाद के विविध पक्षों को एक प्रकार से सजा-सँवार कर प्रस्तुत किया गया है। इनके अलावा, नई दिल्ली स्थित स्वैच्छिक संगठन भारतीय अनुवाद परिषद द्वारा प्रकाशित त्रैमासिक शोध-पत्रिका 'अनुवाद' और कोलकाता से प्रकाशित 'अनुवाद पत्रिका' सहित अन्य कई पत्र-पत्रिकाओं में अनुवाद विषयक मौलिक कविताएँ प्रकाशित होती रहती हैं। 'अनुवाद रूपी सेतु' दो भिन्न भाषाओं, संस्कृतियों, परिवेशों को जोड़ने एवं उनके बीच विद्यमान अजनबीपन की अजनबियत को तोड़ने का साधन है। महेंद्र निर्दोष ने अनुवाद 'सेतु' के महत्व का उल्लेख करते हुए लिखा है :

मैं तो / एक सेतु मात्र हूँ
जिसे पाकर तुमने / प्रोक्ता से लेकर
प्रमाता तक की
अपनी अधूरी यात्रा / पूरी की है;[12]

और इस सेतु के माध्यम से एक भाषा के शब्दों की संस्कृति, परिवेश, गंध को अन्य भाषा के लोगों तक पहुँचाना संभव हो पाता है और यह महान कार्य यही 'सेतु' ही करता है :

अब / वह शब्द
मेरा पर्याय बन गया है, / क्योंकि --
मैंने ही उसे रूपांतरित किया है, / और
उसमें छिपी माटी की गंध को
जन-जन तक पहुँचाया है।[13]

इस नाते, मूल रचना एक प्रकार से संपूर्ण सृष्टि बन जाती है। 'अनुवाद' सरल कार्य न होकर चुनौती-भरा कार्य है। संपूर्ण सृष्टि के समान आभासित होने वाली कृति का अनुवाद :

कौन कर सकता है
विशाल ब्रह्म सृष्टि का
हू-ब-हू अनुवाद?[14]

लेकिन अनुवाद की इस विडंबना से घबराने की आवश्यकता नहीं है -- आवश्यकता 'नैरंतर्य-साधना' की है। इस नैरंतर्य-साधना में अनुवाद-कर्म विश्व-बंधुत्व के दैदीप्यमान सूर्य की भूमिका निभाता है :

विश्वास है एक दिन
पृथ्वी से अंकुरित भाईचारे की
सह-अनुभूति का
शब्द-प्रताप
सूरज अनुवाद का
सवेरा लाएगा।[15]

विश्व के साहित्य, समाज, संस्कृति, आचार-विचार से परिचय पाने एवं विश्व-मैत्री का स्वप्न साकार करने की दिशा में प्रयत्नरत अनुवाद को 'संतति जनन-सा' मानते हुए श्रीमती संतोष खन्ना का कहना है :

अनुवाद एक दर्पण है
माननीय अंतर्मन का
एक पूर्ण बिंब
विश्वास मानस का
अनुवाद एक मंत्र है
'वसुधैव कुटुम्बकम्' का
अनुवाद एक सृजन है
संतति जनन-सा।[16]

लेकिन, मूल के प्रति निष्ठा-भाव का व्यामोह, वास्तव में अंधविश्वासी धारणा है। इस कारण यह माना जाता है कि अच्छा अनुवाद, मूलभूत नवीन सृष्टि है, जिसका कलाकृति के रूप में ही मौलिक महत्व है। इसके लिए अनुवादक कुछ मानकों को लेकर चलता है, उसका अपना विशिष्ट दर्शन होता है :

मूल के सार-तत्व को / लक्ष्य भाषा में
निरूपित करने का सामर्थ्य हो, और
अनुवाद सिद्धांत-कला में
उसे क्षमता-महारत हो।
'दर्शिता' से लेखक की, वह / समन्वय कर,

प्रेषणीयता के स्तर पर
भाव-अर्थ-विचार-अनुभव को प्रवण
बना सके, 'समरूप' में / द्विभाषा सामर्थ्य; व अधिकार हो
संश्लिष्ट-दीर्घ वाक्य संरचना को
अंशों में तोड़-विभाजित कर; स्पष्ट
संक्षिप्त, स्वच्छ वाक्य-रचना योजना / अपने विपुल शब्द-भंडार से
आसानी से वह कर सके। / लेकिन ऐसा करते समय,
समाज-संस्कृति सापेक्ष्य संदर्भों को / अक्षुण्ण रखने में वह सक्षम हो।
-- हों समाहित ये सभी तत्व जहाँ
क्या यही सब नहीं है
'दर्शन' -- सच्चे अनुवादक का?[17]

कृति का अनुवादक, भावों के संवाहक की सशक्त भूमिका निभाने वाला 'श्रमिक-वाहक' है। कृति को अनुवादक रूपी 'संपर्क-सूत्र' के माध्यम से विद्युत-धारा को एक छोर से दूसरे छोर तक पहुँचाने वाले -- अनुवाद -- के महत्व का उल्लेख करते हुए संजीव ठाकुर ने लिखा है कि :

बिजली का तार हूँ
कहीं की धारा
कहीं पहुँचा देता हूँ[18]

अनुवादक चुनौतियों का डटकर सामना करता है, समस्याओं से जूझता है। लेकिन, फिर भी, अनुवादक की विडंबना है कि उसके कृत्य को निकृष्ट समझा जाता है, अपूर्ण माना जाता है। अनुवाद-सेतु की इस अपूर्णता की ओर ध्यान दिलाते हुए डॉ. पूरनचंद टंडन ने 'सेतुबंध' कविता में लिखा है :

टेढ़ी खीर / पैर अंगद का
नहीं खरोंच भर हिलता
एक चुनौती हरदम रहती
नहीं सूझता रस्ता

नहीं सूझता रस्ता
बढ़ती है जिज्ञासा
रावण की नाभि बनकर वह
सदा त्रस्त रह जाता

रहे अपूर्ण सेतुबंध तो
कैसी पूरी हो अभिलाषा।[19]

इस अपूर्णता की वजह यह है कि शब्द, अर्थों के जंजाल में फँसे होते हैं। इसके लिए अनुवादक को शब्द की तलाश में 'शब्द-जंजाल' में जगह-जगह भटकना पड़ता है, शब्दकोश में समतुल्य अर्थ की खोज करनी पड़ती है और उपलब्ध अनेक शब्दों में से एक शब्द को छाँटना पड़ता है। लेकिन साथ ही :

पन्नों से कोश के, करके / दो-दो हाथ
खोजता हूँ मैं
-- समतुल्य
लेकिन तुला पर जिसे
'सम' न तोला जा सके,
गढ़नी पड़ती है -- उसके लिए
नव-शब्द की मूलानुकूल
सुमधुर-सुमधुर झंकार!![20]

स्पष्ट है कि अनुवादक को समतुल्य की अनथक तलाश करनी पड़ती है। लेकिन जब 'समतुल्यता' की कसौटी पर कोई शब्द पूरा नहीं उतरता तो अनुवादक मूलानुकूल सुमधुर झंकार गढ़ने का प्रयत्न करता है। अनुवादक द्वारा शब्दों का यह गढ़ाव मूलतः 'अनु'-संधान है। लेकिन इस अनुसंधान में अनुवादक को कभी-कभी असहाय होकर :

नहीं तो निस्सहाय हो
उखाड़नी पड़ती है
शब्दों की मनोभूमि
संपूर्ण 'अनु'-फसल लेने के लिए!![21]

लेकिन ऐसे में अनुवादक यहीं रुकता नहीं है। वह तड़पता है, फड़फड़ाता है और साधनारत रहने की प्रेरणा को बनाए रखते हुए कह उठता है :

लेकिन क्या यह
खोज मेरी पूर्ण है?
यही सोच, करता हूँ --
शुरू खोज 'अनु'- शब्द की...[22]

लेकिन अनुवाद-सेतु की इस अपूर्णता के बावजूद इसमें कोई संदेह नहीं है कि अनुवाद की आवश्यकता एवं महत्व स्वयंसिद्ध है। अनुवाद के माध्यम से कृति किसी भाषा-विशेष की बपौती न रहकर, पूरे विश्व की रचना बन जाती है और स्वाभाविक है

कि कृतिकार भाषा-विशेष तक सीमित न रहकर पूरे विश्व का हो जाता है। कृतिकार को विश्व का बनाने में अनुवादक का दायित्व ज्यादा महत्वपूर्ण है। अनुवादक विभिन्न देशों-भाषाओं के लोगों को आपस में जोड़ता है। इस आधार पर डॉ. ओम्प्रकाश सिंहल के शब्दों में इतना तो अवश्य ही कहा जा सकता है कि अनुवाद-सेतु से एक रिश्ता है :

भाषा नहीं नाम व्यवस्था / समरूपी नहीं दो भाषिक प्रतीक
अटकते कहाँ 'अंकल' में / समानधर्मी संकल्पनाओं के अर्थ।
बावजूद इसके / शब्द कहाँ रोकते किसी का रास्ता
सबको देते गति, खोलते नया द्वार
बसती रोम रोम में एक अजानी गंध
अनायास जुड़ता एक अनाम रिश्ता।[23]

डॉ. सुंदरलाल कथूरिया की 'पीड़ा अनुवादक की' शीर्षक कविता की निम्नलिखित पंक्तियाँ मैथ्यू आर्नाल्ड की इन पंक्तियों की याद दिलाती हैं जिसमें आर्नाल्ड ने कहा था -- 'अनुवाद पढ़कर वही प्रभाव पड़ना चाहिए जो मूल पढ़ने पर उसके सबसे पहले पाठकों पर पड़ा होगा।' :

मेरी एक ही आकांक्षा थी --
तुम्हारी रचना को / यथातथ्य-सरस रूप में
संप्रेषित कर दूँ / पाठकों तक
ताकि वे / पा सकें मूल का सा आनंद[24]

लेकिन, अनुवादक का ध्येय मात्र मूलनिष्ठता नहीं है -- बल्कि वह मूलाधृत नवीन सृष्टि करता है। मूलाधृत नवीन सृष्टि 'परकाय-प्रवेश प्रक्रिया' से ही हो पाती है। अनुवाद की 'स्रोत भाषा की संस्कृति की आत्मा एवं शरीर, अर्थ एवं शैली की अन्य भाषिक संस्कृति के अर्थ एवं शैली तत्वों में अंतरण एवं एकीकरण संबंधी परकाय-प्रवेश की प्रक्रिया[25] के संबंध में रवींद्र कुमार ने 'अंतर्यात्रा' कविता में अनुवादक की यंत्रणा का वर्णन करते हुए लिखा है :

किसी और के हादसे को
अपने स्तर पर जीना
और भोगना उस सत्य को
जो भोगा ही न गया हो -- बिना सत्यकाम बने।[26]

इस दृष्टि से अनुवाद चुनौती-भरा जटिल कार्य है। अनुवादक को रचना के मूल कथ्य एवं आत्मा को जिलाए रखने के लिए अत्यधिक श्रम करना पड़ता है। डॉ. पूरनचंद टंडन ने अपनी 'यात्रा' शीर्षक कविता में सही ही लिखा है कि :

सच है / अनुवाद अनुवाद है
अनुपम, अपरिभाषेय
पैठने, डूबने / भीतर दर भीतर
निरंतर उतरते रहने की अनंत यात्रा।[27]

और 'अनुवाद की प्रवंचना' रूपी अपनी तमाम सीमाओं तथा 'अनुवाद की विडंबना' रूपी लाचारी-बेबसी के बावजूद :

कुछ भी नामुमकिन नहीं
दीवानगी के आगे
कठिन नहीं, अनुवाद की डगर।[28]

काव्य के माध्यम से अनुवाद के सैद्धांतिक पक्ष पर विचार करते हुए 'अनुवाद क्या है?' विषय पर मैंने जो कविता लिखी है, जरा उसपर भी ध्यान दे दिया जाए तो कैसा रहेगा :

अनुवाद क्या है

अनुवाद में, / नाद है, मूल के स्वर का
और संवाद है, अन्य / लक्षित अक्षर से।
लेकिन क्या नाद में / भी आवाज़ है, गूँज है
'कही गई बात को दुबारा कहने की?'
या कि संभव है अनुवाद
केवल 'अनुकरण' मात्र से?
और यह अनुकरण भी है क्या केवल
विचार का, भाव का या शब्द-मात्र का?
अगर वह अनुकरण है; तब
भिन्न समाज-संस्कृति से
सार्थक साक्षात्कार, और
एकाधिक अंचल-समाज-राष्ट्र से
सटीक दिशा-दृष्टि मिलना संभव है?
× × ×
वस्तुतः अनुवाद, संबंध है --
मेहमान और मेजबान का,
जो निर्भर करता है.....
व्यक्ति-समाज सापेक्ष शिक्षा-दीक्षा पर।[29]

अनुवाद का अर्थ, गुण-दोष, महत्व, लाभ-हानि, समस्याएँ-सीमाएँ आदि दर्शाने वाली कविताओं के मार्ग में से गुजरते हुए यह प्रश्न बाधा खड़ी करता है कि क्या अनुवाद

विषयक ये कविताएँ 'काव्य' की कसौटी पर खरी उतरती हैं? क्या यह काव्य विधा का रूप ले पाएगी? इस प्रकार की कविताएँ क्या वास्तव में अनुवाद की सैद्धांतिक जानकारी दे पाती हैं या कि शब्द-जाल मात्र हैं? क्या ये अनुवाद के क्षेत्र में सैद्धांतिक एवं व्यावहारिक पक्ष में खाई का काम तो नहीं कर रही हैं? क्या अनुवाद-विषयक कविताएँ वास्तव में अनुवाद-कर्म के दौरान उभरे पक्षों-अनुभवों की अभिव्यक्ति हैं या कि सैद्धांतिक पक्ष को गहन रूप देकर 'सिद्धांतकार' के रूप में प्रतिष्ठित होने मात्र के लिए?

इन प्रश्नों के संबंध में यही कहा जा सकता है कि उद्धृत कवितांशों को पढ़ने से काव्य का रसास्वादन होता है और अनुवाद सिद्धांत विषयक कविताएँ भाव एवं भाषा की कसौटी पर खरी उतरने वाली कविताएँ ही हैं। कविता के माध्यम से, अनुवाद-यात्रा के दौर से अनुभूत व्यावहारिक अनुभवों को संजोना, संस्मरण प्रस्तुत करना, अनुभव कर्म के मध्य जिए एवं भोगे यथार्थ को कविताओं में अभिव्यक्त करना ही कवि-अनुवादकों का उद्देश्य-लक्ष्य कहा जा सकता है। सहज-संप्रेषणीय साँचे वाली अनुवाद विषयक एवं अनुवादक केंद्रित कविताओं से 'अनुवाद' संबंधी दोयम धारणा को खंडित करना संभव है, नीरसता में सरसता का तारल्य भर पाना संभव है। जहाँ तक इस प्रकार की कविताओं का काव्य-विधा के रूप में स्थान लेने का संबंध है, मुझे विश्वास है कि काव्य-विधा का स्वतंत्र रूप लेगी क्योंकि इससे नई दिशा-परंपरा का द्वार खुलता है, नई विधा का अन्वेषण होता है। काव्य की सृजनात्मक कल्पना-शक्ति के माध्यम से अनुवाद सिद्धांत चिंतन को भास्वर प्रदान करने वाली कविताएँ इस तथ्य की पुष्टि करती हैं कि अनुवाद-कर्म किसी भी स्थिति में दोयम दर्जे का कार्य नहीं है। यह वह श्रम-साध्य कार्य है जिसे यथोचित सम्मान दिया जाना अपेक्षित है। काव्य रूपी सृजनात्मक कल्पना शक्ति के माध्यम से दोहरे जोखिम वाली सैद्धांतिक यात्रा को सफलतापूर्वक तय करने का यह सराहनीय प्रयास है। मूलतः अनुवादक की श्रम-साधना, मूल को अनूदित करने के दौरान के यात्रा-अनुभवों, समतुल्य शब्द की खोज एवं लक्ष्य भाषा में यथावत न ढाल पाने की गहरे दर्द रूपी विचार-प्रक्रिया को अभिव्यक्ति प्रदान करने वाली इन कविताओं के आलोक में अनुवाद-प्रक्रिया की काव्यात्मक प्रस्तुति एवं कतिपय सीमाओं के बावजूद अनुवाद की सार्वभौमिक महत्व-प्रतिष्ठा की स्वीकारोक्ति है, अनुवाद की उपादेयता का उद्घाटन है, मानवीय संवेदनाओं की खोज का भगीरथ प्रयत्न है। अंत में डॉ. पूरनचंद टंडन के शब्दों में यही कहा जा सकता है कि 'अनुवाद के व्यावहारिक एवं सृजनात्मक दौर से गुजर कर उसकी दोहरी चुनौती-भरी यात्रा को, तकलीफ, यातना और हताशा के कगार से निकलकर विजयोन्माद में बदलने के ये काव्यात्मक प्रयास पाठक के भीतर सोए कवि को झकझोर कर जगा देते हैं।'[30]

❑

संदर्भ

1. शब्दकल्पद्रुम, तृतीय खंड, पृ. 509.
2. सोमनाथ ग्रंथावली, प्रथम खंड, पृ. 320.
3. समय सार नाटक, ब्रह्मचारी नंदलाल, पद्य 10, पृ. 15.
4. प्रबोधचंद्रोदय, धौंकल मिश्र, 1.10.

5-6. भारतेंदु-समग्र, संपादक -- हेमंत शर्मा, पृ. 229.

7. सरस्वती, फरवरी 1905 'ग्रंथकारों से विनय' शीर्षक कविता।
8. तत्कालीन राष्ट्रपति डॉ. राजेंद्र प्रसाद द्वारा किए गए अभिनंदन का आभार व्यक्त करते समय राष्ट्रकवि मैथिलीशरण गुप्त जी द्वारा पढ़ी गई कविता।
9. Dryden and the Art of Translation, 1916 by William Frazer.
10. Denhem to Sir Fanshow; अनुवाद की सूक्तियाँ (राष्ट्रीय एवं अंतर्राष्ट्रीय संदर्भ में), डॉ. गार्गी गुप्त एवं कुसुम अग्रवाल, भारतीय अनुवाद परिषद, नई दिल्ली।
11. 'अनुवाद' पत्रिका, बर्मी साहित्य विशेषांक, अंक 74-75, जनवरी-जून 1995, भारतीय अनुवाद परिषद, नई दिल्ली, पृ. 100.

12-15. अनुवाद के रंग, संपादक डॉ. ओम्प्रकाश सिंहल, पृ. 48, 51, 32 एवं 35.

16. 'अनुवाद' पत्रिका, कला तथा तकनीक विशेषांक, अंक 43, अप्रैल-जून 1985, भारतीय अनुवाद परिषद, नई दिल्ली, पृ. 140.
17. अनुवाद का दर्शन, हरीश कुमार सेठी, 'अनुवाद पत्रिका', कलकत्ता, वर्ष 21, संख्या 3 मार्च 1996, पृ. 46.

18-19. अनुवाद के रंग, संपादक डॉ. ओम्प्रकाश सिंहल, पृ. 61 एवं 39.

20-22. 'अनु'-संधान, हरीश कुमार सेठी 'अनुवाद पत्रिका' कलकत्ता, वर्ष 21 संख्या 5, मई 1995, पृ. 46.

23. अनुवाद के रंग, संपादक डॉ. ओम्प्रकाश सिंहल, पृ. 61 एवं 39.
24. वक्त की परछाइयाँ, डॉ. सुंदरलाल कथूरिया, पृ. 31.
25. अनुवाद : सिद्धांत एवं प्रयोग, डॉ. जी. गोपीनाथन, पृ. 20.

26-27. अनुवाद के रंग, संपादक डॉ. ओम्प्रकाश सिंहल, पृ. 53 एवं 40.

28. अनुवाद से संवाद, डॉ. ओम्प्रकाश सिंहल, पृ. 42.
29. 'अनुवाद क्या है?', हरीश कुमार सेठी, 'अनुवाद पत्रिका', कलकत्ता, वर्ष 21 संख्या 5, मई 1995, पृ. 46.
30. अनुवाद-साधना, डॉ. पूरनचंद टंडन, पृ. 33

डॉ. एल. सुनीताबाई

कोंकणी-हिंदी का काव्यानुवाद

काव्यानुवाद से तात्पर्य काव्य के अनुवाद से है। अनुवाद में किसी भाषा में कही गई बात को दूसरी भाषा में दुहराने का कार्य होता है। यह अपने में बहुत कठिन होता है और इस कार्य को बड़ी सजगता से करना होता है। जब अनुवाद काव्य का हो तो वह और भी कठिन होता है क्योंकि काव्य 'रसात्मक वाक्य' या 'रमणीयार्थ प्रतिपादक शब्द' है। रसात्मक वाक्य का अनुवाद तो बहुत कठिन होता है। एक भाषा में चित्रित रस का दूसरी भाषा में अवतरण उतनी आसानी से संभव नहीं है। वैसे ही रमणीय अर्थ भी भाषा के अनुसार बदलते रहते हैं। जब भाषाएँ एक परिवार की हों तो ये समस्याएँ कुछ हद तक कम कही जा सकती हैं। कोंकणी और हिंदी एक ही परिवार की भाषाएँ हैं और इन भाषाओं के बीच का अनुवाद कुछ हद तक आसान भी कहा जा सकता है। फिर भी दोनों भाषाओं की अलग-अलग प्रवृत्तियों और कुछ सांस्कृतिक भिन्नताओं को आधार बनाकर दोनों भाषाओं के बीच किए जाने वाले अनुवाद को थोड़ा-बहुत क्लिष्ट भी माना जा सकता है।

'अनुवाद' शब्द के लिए कोंकणी में 'अणकार' शब्द चलता है, जिसका अर्थ है -- अनुकरण। यह अनुकरण अपने में उतना आसान नहीं कहा जा सकता। लेकिन अनुवाद में यह होता ही रहता है। अनुवादक को बड़ी ही सजगता से से काम लेना होता है। उसे स्रोत एवं लक्ष्य भाषा का सम्यक् ज्ञान रखना आवश्यक होता है। जब अनुवाद काव्य का हो तो यह काम और भी कठिन होता है। अनुवादक इस कार्य में तभी सफल हो सकता है जब वह काव्य की विशेषताओं से भी परिचित हो। काव्य की भाषा तो हमेशा सौंदर्य से युक्त रहती है। लय, ताल, अलंकार आदि के कारण काव्यभाषा का अनुवाद अत्यंत कठिन होता है। जहाँ तक कोंकणी-हिंदी काव्यानुवाद की बात है, कोंकणी की कुछ अलग प्रवृत्तियाँ होती हैं जो हिंदी में नहीं मिलतीं। कोंकणी भाषा में विशेष माधुर्य रहता है। जो हिंदी में नहीं मिल सकता। शब्दों की पुनरुक्ति, ध्वनियों का विशेष प्रयोग, स्वरलय

एवं स्वराघात इस बात की विशेषताएँ हैं। अनुनासिकता की अधिकता इसके माधुर्य को और भी बढ़ाती है। यह काव्य रचना के अनुकूल रहता है। इसलिए कोंकणी का कोई कविता खंड हिंदी या किसी अन्य भारतीय भाषा में अनूदित किया जाए तो इसका माधुर्य नष्ट हो जाता है। एक उदाहरण से इसे स्पष्ट किया जा सकता है :

प्राणाकक्षय बुद्धीक भय	प्राणों को क्षय बुद्धि को भय
फल्यांक जंय कालचीच वंय	जहाँ कल की आदत कल की जय
अचलाथंय स्वातंत्र्य तें	वहाँ का यह स्वातंत्र्य
स्वातंत्र्य नृप स्वातंत्र्य न्हय	स्वातंत्र्य नहीं, स्वातंत्र्य नहीं

कोंकणी के इस कविताखंड का हिंदी अनुवाद कुछ हद तक सफल रहा है। एक ही परिवार की भाषाएँ होने के नाते शब्दावली और अर्थ में समानता रही। फिर भी स्रोत भाषा की प्रकृति एवं प्रयोग लक्ष्य भाषा में पूर्ण रूप से उतर न सके। कोंकणी कविता की सुंदर ताल एवं लय हिंदी में न आ सके। कोंकणी का 'क्षय', 'भय', 'जय', 'धयं' और 'न्हय' का पुनः प्रयोग मूल की पंक्तियों में विशेष सौंदर्य का कारण बनता है। हिंदी में यह संभव नहीं है। हिंदी अनुवाद में अर्थ को समझने में थोड़ा भ्रम भी पैदा हो सकता है। दूसरी पंक्ति में दो बार 'कल' शब्द का प्रयोग पढ़ने वाले के मन में भ्रम पैदा कर सकता है। एक शब्द गए हुए 'कल' का सूचक है तो दूसरा 'कल' आने वाले कल का सूचक है। मूल में इसके लिए दो भिन्न शब्द प्रयुक्त हुए हैं। अनुवाद में इस पर ध्यान नहीं दिया गया है। कोंकणी-हिंदी अनुवाद की समस्याएँ इस प्रकार हैं :

1. व्याकरण संबंधी समस्याएँ

स्रोत भाषा एवं लक्ष्य भाषा की प्रकृति कहीं-कहीं एक-दूसरे से भिन्न रहती है। ऐसी हालत में अनुवाद भ्रामक एवं कठिन भी हो सकता है। जहाँ तक कोंकणी का संबंध है, वह एक ऐसी भाषा है जो माधुर्य से युक्त है, गीतात्मक एवं लयात्मकता से पूर्ण है। इसमें स्वराघात की भी प्रमुखता है। इसी कारण, अर्थ परिवर्तन भी आसानी से हो जाता है। कोंकणी शब्द 'करतलो' का अर्थ है -- वह करेगा। यही शब्द स्वराघात की सहायता से प्रश्नवाचक भी बन सकता है। अनुवाद के समय भाषा की इस प्रवृत्ति पर विशेष ध्यान देना होता है।

इसी प्रकार ध्वनियों में आने वाले छोटे-छोटे परिवर्तन अर्थ परिवर्तन का कारण बन जाते हैं। जैसे कीटि (चिनगारी) -- कीडि (कीडा); पट्टळि (पोटली) -- पड्डळि (परवल का बेल); वोट (उँगली) -- बोड (मुंजाहुआसिर); मोट (गठरी) -- मोड (बादल); सारि (साठ) -- साडि (साडी); मेल्लो (मरा) -- मेळ्ळो (मिला); खेल्लि (खाया) -- खेळ्लि (खेला); मोवु (मुलायम) -- म्होवु (मधु); पोवलें (तैर गया) -- पोवळें (प्रवाल) आदि।

इसी प्रकार अनुनासिकता से भी इस भाषा में शब्दों में अर्थ-परिवर्तन हो जाता है। जैसे वट्टप (पीसना) -- बँटप (बाँधना); पाचवें (हरा) -- पाँचवें (पाँचवाँ); ती (वह) -- नीं (वे) आदि।

अनुवादक को भाषा की इस प्रकृति पर विशेष ध्यान देना पड़ता है। थोड़ी-सी असावधानी गलत अर्थ-कल्पना का कारण बन सकती है।

कोंकणी में तीन लिंग हैं और हिंदी में दो लिंग। संस्कृत के समान कोंकणी में भी नपुंसकलिंग का अस्तित्व है। नपुंसकलिंग के शब्दों का बहुवचन तैयार करने के लिए शब्द के साथ केवल अनुनासिक जोड़ा जाता है। जैसे गाँव > गाँवँ; अक्षर > अक्षराँ; अक्षत > अक्षताँ; पोरस > पोरसाँ आदि। दोनों रूपों में बड़ा अंतर न रहने के कारण अनुवादक को कभी भ्रम हो सकता है। जब तक वह इस तथ्य से सजग नहीं रहता अनुवाद में त्रुटियाँ आ ही जाती हैं। जैसे :

(1)	पोरसांतुले झाडावेलें	चुना है बागों से मैंने
	सगटापशी सोबीत फूल	खूबसूरत एक फूल
	काडून हावें दवरलें	
(2)	ह्या भिकार्याल्या अक्षरांचीं	मुइन भिक्षुक का
	उडयतां ही अक्षतां	लो यह समर्पण
		लो अक्षरों का अक्षत

पहले उदाहरण में यह तय करना कठिन है कि यहाँ 'पोरसांतुले' शब्द एकवचन है या बहुवचन क्योंकि यहाँ पर प्रत्यय जोड़ने के कारण एकवचन में बहुवचन का रूप समान रह जाता है। अनुवाद में इस शब्द का रूप 'बागों' (बहुवचन) में तय कर लिया गया है। यहाँ अर्थ प्रसंग के अनुसार ही समझा जाता है।

दूसरे उदाहरण में 'हीं अक्षतां' नपुंसकलिंग बहुवचन में आया है। एकवचन के लिए 'हें अक्षत' का प्रयोग किया जाता है। अनुवाद में बहुवचन का रूप एकवचन कर दिया गया है।

विशेषणों का विपर्यय व्याकरण संबंधी समस्याओं का एक प्रमुख पक्ष प्रस्तुत करता है। निम्नलिखित उदाहरण से यह प्रकट हो जाता है :

देवळांत अंगेले उत्सव आसा (कोंकणी)

मंदिर में हमारा उत्सव है। (हिंदी)

मूल में 'अंगेले देवळांत' (हमारे मंदिर में) अर्थ लगना है। यहाँ पर विशेषण मंदिर के साथ जुड़ना है। अनुवाद में विशेषण 'उत्सव' के साथ जुड़ा है। इससे अर्थ में परिवर्तन आ जाता है। कोंकणी की इन प्रवृत्तियों पर अनुवाद के समय विशेष ध्यान रखना होता है।

इसी प्रकार कोंकणी और हिंदी में कई ऐसे शब्द हैं जो अर्थ-कल्पना में भ्रम पैदा

कर जाते हैं। ध्वनि की दृष्टि से ये समानरूपी हैं, लेकिन अर्थ तो भिन्न रहता है। जैसे कोंकणी का 'गोब्बोर' और हिंदी का 'गोबर'। कोंकणी शब्द का अर्थ है -- 'राख', हिंदी शब्द के अर्थ से भिन्न है। 'पिल्ला' शब्द हिंदी में कुत्ते के बच्चे के लिए प्रयुक्त होता है। कोंकणी में इसका सामान्य अर्थ है -- 'बच्चा'। इसी प्रकार 'तोय' शब्द हिंदी में 'जल' के अर्थ में प्रयुक्त है तो कोंकणी में 'पकी हुई अरहर की दाल का पानी' -- के अर्थ में प्रयुक्त होता है। अनुवाद करते समय ऐसे शब्दों में बड़ी ही सजगता बरतनी होती है। कोंकणी का 'गोड' शब्द कहीं संज्ञा के रूप में तो कहीं विशेषण के रूप में प्रयुक्त होता है। संज्ञा के रूप में इसका अनुवाद होगा 'गुड' और विशेषण के रूप में 'मधुर'। कोंकणी और हिंदी में इस प्रकार के और भी कई शब्द देखने को मिलते हैं जिनके प्रति सजग रहना अनुवाद के लिए अत्यंत आवश्यक है।

काव्य में तो ध्वनि का विशेष महत्त्व रहता है। ध्वन्यात्मक अर्थ काव्य के सौंदर्य को बढ़ाता है। यह ध्वन्यार्थ काव्य का प्राण माना जाता है और काव्य को उदात्त बना देता है। ऐसे शब्दों (जिनमें ध्वन्यात्मक अर्थ रहता है) पूरी तरह से मूल के सौंदर्य के साथ लक्ष्य भाषा में नहीं आ पाता। उदाहरण के लिए,

वार्‌या भटान म्हणले मंत्र	वायु-पुरोहित ने किया मंत्रोच्चार
अंत्राळाचो अंतरपाट	रहा शैवाल का अंतर पाट
दक्षणेक माडमाम	दक्षिणा देता नारियल का पेड़
चुट्टांचे करून हात	पत्तों के हाथों को बढ़ाकर।
व्होक्कलेच्यो होंटी भरीत	नाचने वाली लाल लाल लहरें
मुर्गट्टां तांबडी ल्हारां	वधू की साड़ी के पल्लू में
फोफळांच्या अक्षतानी	भर रहीं धान
भल्लीं आज कुळागरां।	सुपारी के अक्षतों से आज भर गए
	सुपारी के बाग।

इन पंक्तियों में वर्षा ऋतु की प्रकृति का सुंदर चित्र मिलता है। ध्वन्यात्मक अर्थ के साथ प्रकृति सौंदर्य का बढ़ा-चढ़ाकर वर्णन किया गया है। हिंदी अनुवाद में जो चित्र प्रस्तुत है, वह मूल के करीब ही कहा जा सकता है। मूल का पूरा प्रभाव अनुवाद में नहीं आ सका है। 'अंत्राळाचो अंतरपाट' में जो अनुप्रास की छटा है वह अनुवाद में नहीं आ सकी है। मूल का ताल और लय अनुवाद में नष्टप्राय है। कोंकणी शब्दों का सौंदर्य अनुवाद में कहाँ? मूल कविता खंड में प्रकृति की आड़ लेकर कुल मिलाकर शादी का एक सुंदर चित्र खींचा गया है। लेकिन अनुवाद के जरिए इसके पूरे सौंदर्य का आस्वादन नहीं होता। वर्षा काल में प्रकृति अपने समस्त ऐश्वर्य के साथ, विवाह के लिए तैयार होकर आई हुई वधू की जैसी लग रही है। इसका आस्वादन मूल का पाठक

जिस प्रकार करता है वैसे अनुवाद का पाठक नहीं कर सकता। और एक उदाहरण देखिए :

सैमाचे दिवलेंतली	प्रकृति के दिए की जलती हुई
पर्जळटी सोंपली बात	बत्ती बुझ गई।
आयज सगल्या संवसारार	आज समस्त संसार पर
अकस्मात काळखी रात	अकस्मात् काली रात छा गई।
उजवाडाच्या सूर्य देवान	प्रकाश के देवता सूरज ने
आयज सोडलीं किरणां काळीं	आज अंधकार की काली किरणें छोड़ीं
मनशांतलें माणीक सोदूंक	चारों ओर दुःख ही दुःख
भोंवता दूख 'जळीमळीं'।	मानव हृदयों के माणिक्य की खोज में।

इन पंक्तियों में पंडित जवाहरलाल नेहरू के स्वर्गवास पर प्रकृति में दुःख की लहरों की जो प्रतिच्छाया दिखाई दी, उसका अलंकारों के माध्यम से सुंदर चित्र प्रस्तुत किया गया है। मूल का चित्र अनुवाद में भी सफलता के साथ खींचा गया है। फिर भी मूल में अप्रस्तुतों के सुंदर वर्णन से दुःखपूर्ण घड़ी का जो परिचय कराया गया है, उसका पूर्ण रूप अनुवाद में नहीं आ सका है। ध्वन्यार्थ तो थोड़ा-बहुत अनुवाद में भी मिलता है। लेकिन कोंकणी के शब्दों, 'सोडलीं', 'किखां कालीं', 'मनशांतले', 'जळीमळीं' में जो प्रभाव है, जो सौंदर्य है वह अनुवाद में नहीं आ सका है।

2. सांस्कृतिक समस्याएँ

सांस्कृतिक भिन्नता काव्यानुवाद की एक बड़ी समस्या है। सांस्कृतिक शब्दावली भिन्न-भिन्न प्रतीकों को प्रस्तुत करती है, जो विशेष भाषा की अपनी अलग अस्मिता को लिए हुए रहती है। उन्हें दूसरी भाषाओं में उतारना बहुत कठिन रहता है; कभी-कभी असंभव भी हो जाता है। स्रोत भाषा के पाठकों के मन में ये सांस्कृतिक बिंब एवं प्रतीक जो प्रभाव पैदा करते हैं वैसा लक्ष्य भाषा के पाठकों में नहीं होता क्योंकि वे इन बिंबों से अपरिचित रहते हैं। सांस्कृतिक शब्दावली की भी यही स्थिति है। उदाहरण के लिए देखिए :

पालखेंत झालर जायाय	पालकी का झालर बन जाएँ
पालखे मुखार	पालकी के आगे
दिवट्यो जायाय	दीव टवाले दिये बन जाएँ
केरींत फांती रावून	गली में पंक्तियों में रहकर
चकचकीत उजवाडघालाय	जगमग ज्योति फैलाएँ
भंगरापूडी हावडून	सुवर्ण धूलि बिखेरकर
रस्तयार सिंतोड कराय	रास्ते को पवित्र कर जाएँ

प्रस्तुत उदाहरण में एक सांस्कृतिक पर्व एवं उससे संबंधित जूलूस की ओर संकेत

है। पालकी में भगवान की मूर्ति को रखकर गलियों से होकर जब जुलूस निकलता है तो गलियों में दोनों ओर लोग पंक्तिबद्ध होकर जुलूस के स्वागतार्थ खड़े हो जाते हैं। पालकी जिस रास्ते से जाती है उस पर गोबर मिला हुआ पानी (सिंतोडो) छिड़का जाता है जिससे कि रास्ता पवित्र हो जाए। इस कविता खंड में सांस्कृतिक पर्व पर संकेत किया गया है। इसका अनुवाद वह चाहे किसी भी भाषा में हो, मूल का पूरा प्रभाव उत्पन्न करने में सफल नहीं हो सकता। और एक उदाहरण देखिए :

मावूळ भयणीळे	मामा की बेटी के
लग्ना दिसांक	शादी के दिन
अंगेर बारापळेची	आई हमारे घर
मावशी आचली	बारापले* की मौसी
ओवि म्हणून	गीत गाकर
व्होडो तेळूंक	मोदक तलने
सेजारण्यांक मेळोन	पड़ोसिनों के साथ
वासरेंत बेसंली	रसोई में बैठी

इस कविता खंड में शादी की रस्मों का विवरण मिलता है। शादी की कोई भी रस्म चार महिलाएँ मिलकर ही पूरी करती हैं। इन पंक्तियों में इस ओर भी संकेत मिलता है। स्रोत भाषा (कोंकणी) के पाठकों को छोड़कर दूसरी भाषा (लक्ष्य भाषा) के पाठक इस कविता खंड का पूरा आस्वादन करने में सफल नहीं बन सकते।

कोंकणी-हिंदी अनुवाद में सांस्कृतिक शब्दों में अनुवाद निस्संदेह समस्याएँ उत्पन्न करता है। 'दिवटी' शब्द का 'मशाल' के रूप में अनुवाद, 'कर्म्बल' का 'इमली' के रूप में अनुवाद निस्संदेह लक्ष्य भाषा के पाठकों में भ्रम पैदा कर सकता है। 'दिवटी' शब्द का अर्थ है -- दीवट वाला दिया जिसे लोग हाथ में लेकर चलते हैं। यह एक रिवाज है। मशाल से उसका कोई संबंध नहीं है। कोंकणी-हिंदी काव्यानुवाद में ऐसे कई शब्द (जो खान-पान, पहनावा, आभूषण, रीति-रिवाज आदि से संबंधित हैं) अनुवाद के वक्त कठिनाइयाँ उपस्थित करते हैं जिनसे बच पाने का एक ही उपाय है -- मूल के शब्द को ज्यों का त्यों रखते हुए उसके लिए टिप्पणियाँ प्रस्तुत करना।

3. शैलीगत समस्याएँ

जहाँ तक काव्यानुवाद का संबंध है शैलीगत समस्या अत्यंत जटिल होती है। शैली शब्द काव्य में दो अर्थों में प्रयुक्त होती है। एक लेखक की शैली, दूसरी भाषा की। अनुवाद में तो अनुवादक का व्यक्तित्व ही प्रमुख होता है। इसलिए निस्संदेह अनुवाद की शैली लेखक की न होकर अनुवादक की रहती है। भाषा शैली को ले लें तो अनुवाद

* केरल का एक स्थान

में मूल की शैली में परिवर्तन होता रहता है। स्रोत भाषा एवं लक्ष्य भाषा अलग-अलग होती है। हर एक भाषा की अपनी अलग शैली होती है। जहाँ तक कोंकणी और हिंदी का प्रश्न है, कोंकणी की अलग शैली एवं हिंदी की अलग शैली होती है। अनुवाद में शब्द के ध्वनिगत, रूपगत एवं वाक्यगत रूप पर बल दिया जाता है। ध्वनि परिवर्तन से कहीं-कहीं अर्थ परिवर्तन भी होता है। एक ही रूप वाले शब्दों में भिन्न भाषाओं मे अर्थगत भिन्नताएँ रहती हैं। वाक्य में शब्द का स्थान भी अर्थ निर्धारण में सहायक रहता है। भिन्न-भिन्न भाषाओं में ये प्रवृत्तियाँ भिन्न प्रकार की होती हैं। इसलिए अनुवाद क्लिष्ट बन जाता है। ऐसी हालत में स्रोत भाषा एवं लक्ष्य भाषा का तुलनात्मक एवं व्यतिरेकी अध्ययन आवश्यक बन जाता है। जहाँ तक कोंकणी और हिंदी का प्रश्न है, ध्वनिगत समस्याएँ अनुवाद को क्लिष्ट बनाती रहती हैं। कोंकणी में अनुकरणनात्मक शब्दों की भरमार रहती है, जिनके प्रयोग से काव्य में सौंदर्य आ जाता है। उदाहरण के लिए, 'झरझरीत', 'गडगडेय', 'थरथरना', 'सरसरता', 'शिरशिरेलो' आदि। हिंदी में इन शब्दों का अनुवाद जब प्रस्तुत किया जाता है तो मूल का सौंदर्य नष्ट हो जाता है। ऐसे शब्द अनुप्रास में भी सहायक रहते हैं। जैसे :

बैलान जूं शेडाचलें	बैल ने जूआ नष्ट किया
नांगर गुटें मोडयलें	हल की कोर डाली तोड़
बैलान किरयकिरयलें	और विजय की मारी चीख
घट थंय जिरयलें।।	जोश में शक्ति उड़ा दी सारी।।

कोंकणी का यह कविता खंड अनुवाद में मूल का पूरा सौंदर्य अपने में ला नहीं सका। मूल में मिलने वाली अनुप्रास की छटा, ताल एवं लय अनुवाद में नष्ट हो चुका। मूल के ये शब्द कोंकणी के अपने हैं और दूसरी भाषाओं में इन्हें प्रस्तुत नहीं किया जा सकता। इनके समानतावाची शब्द मूल का प्रभाव नहीं ला सकते।

4. शब्दावली की समस्या

कोंकणी और हिंदी एक ही परिवार की भाषाएँ हैं और दोनों भाषाओं में अनेक समानार्थक शब्द भी मिल जाते हैं। अनुवाद में ऐसे शब्दों को चुन-चुनकर प्रयोग अनुवाद को मूल के सर्वाधिक निकट रख सकता है। लेकिन मात्र शब्दानुवाद या समानार्थक शब्दों के प्रयोग से अनुवाद सफल नहीं बन सकता। शब्दों के अर्थ निर्धारण में कई बातों पर ध्यान देना होता है। शब्द की अर्थ द्योतन की शक्ति अपार है। यह सभी भाषाओं में समान नहीं होती। कोंकणी और हिंदी में 'उल्लू' का वाचक शब्द प्रतीकात्मक अर्थ प्रदान करता है। कोंकणी का 'घुग्घूम' (उल्लू) शब्द मूक व्यक्ति का वाचक है तो हिंदी में यह शब्द 'बुद्धिहीनता' का द्योतक है। अनुवाद में इस अंतर की ओर विशेष ध्यान रखना पड़ता है क्योंकि इन प्रतीकात्मक शब्दों का प्रयोग दोनों भाषाओं में भिन्न

अर्थों में होता है। यही नहीं, शब्दों के साथ अनेक भाव, इच्छाएँ और अनुभूतियाँ जुड़ी रहती हैं जो दोनों भाषाओं में समान नहीं होतीं। काव्य में इनकी प्रमुखता रहती है और शब्द के अर्थ द्योतन में इनका बड़ा महत्त्व रहता है। यहाँ पर अर्थगत अपूर्णता काव्य के प्रभाव को नष्ट कर सकती है। उदाहरण के लिए,

खावंक मेळ्ळे वोडे	खाने को मिला पकवान
पीवंक हाडले सोडे	पीने को सोडे की बोतल
पवन्नासांच्या नोटांसयत	रुपये पचास के नोट सहित
दिल्ले आम का वीडे	दे दिए हमको उसने वीडे

प्रस्तुत उदाहरण में जो संदर्भ विभिन्न सांस्कृतिक शब्दों के जरिए वर्णित है, वह अनुवाद में किसी भी हालत में पूरा उतारा नहीं जा सकता। 'वोडे', 'वीडे' आदि शब्द यहाँ पर कई ऐसे भावों को लेकर चलते हैं जिनका चित्रण अनुवाद में नहीं आ सकता।

शब्दों की पुनरुक्ति एवं अनुकरण अर्थ पर भी प्रभाव डालता रहता है और द्द्वारा प्रसंग को प्रभावपूर्ण बना देता है। कोंकणी में यह प्रवृत्ति अक्सर देखी जाती है। इस हालत में मूल का पूरा प्रभाव अनुवाद में नहीं आ सकता। जैसे :

1.	रड्त्या पोरा मुखामळार	रोते शिशु के मुखकमल पर
	दुकांतल्यान हळू हळूच	आँसुओं से धीरे-धीरे
2.	रक्ताचोव्हाळ झरझरीत व्हांवलो	खून की नदी ही बही
3.	हुनहुनीत रक्ताचे	गरम खून से

इन उदाहरणों में शब्दों की पुनरुक्ति एवं अनुकरणात्मक शब्द अर्थ द्योतन में प्रभावात्मकता लाने में समर्थ हुए हैं। अनुवाद में मूल का यह सौंदर्य एवं प्रभावात्मकता किसी भी हालत में लाई नहीं जा सकती। फलतः मूल का सौंदर्य अनुवाद में नष्ट हो चुका है।

वाक्य के अंतर्गत शब्दों के प्रयोग के संदर्भ में मुहावरे, कहावतें आदि का भी प्रयोग रहता है। इनका प्रयोग मूल भाषा में जहाँ अर्थ द्योतन में सौंदर्य उत्पन्न करता है और प्रसंग को सशक्त रूप में चित्रित करता है तो लक्ष्य भाषा में आकर सारा प्रभाव नष्ट हो जाता है। मुहावरा किसी भी भाषा के लिए अपने ढंग का अकेला होता है। वह उस भाषा के सामाजिक और सांस्कृतिक इतिहास से संबद्ध रहता है। इसलिए इन मुहावरों के समान मुहावरों को लक्ष्य भाषा में ढूँढ़ लेना उतना आसान नहीं रहता। एक ही परिवार की भाषाओं में कभी-कभी ऐसे मुहावरे बहुत कम पाए जाते हैं जो समानार्थक हों। जैसे :

फांफुड तुजीं उतरां खोंचीक	फटकार के शब्द तुम्हारे
घायार म्हज्या मीठ कइों	भेद रहे हैं हृदय हमारे
	जैसे -- जले पर नमक

कोंकणी का 'घायार मीठ' हिंदी में 'जले पर नमक' के रूप में इन पंक्तियों में मुहावरे के सफल अनुवाद के रूप में देखा जा सकता है। लेकिन निम्नलिखित पंक्तियों में मुहावरे का सफल अनुवाद शायद संभव नहीं है :

जीव असल्यार खावं भिकेंचे	जान मिले तो लाखों पाए
होय जंयचो दिग्विजय	यही था जय की दिग्विजय

जहाँ पर जीना इतना दूभर बन जाता है तो लोगों को ऐसा लगता है कि जान मिले तो भीख माँग कर भी खाया जा सकता है। कोंकणी के इस शब्द प्रयोग के उसी अर्थ में हिंदी में प्रयोग मिलना कठिन है। इसलिए इस मुहावरे का अर्थ सूचित करने वाला दूसरा मुहावरा यहाँ प्रयुक्त हुआ है। ऐसे अनुवाद प्रस्तुत करने के लिए अनुवादक को स्रोत भाषा एवं लक्ष्य भाषा का सम्यक् ज्ञान होना अत्यंत आवश्यक है। स्रोत भाषा के मुहावरे के अनुकूल लक्ष्य भाषा में उचित मुहावरे को चुनने की शक्ति उसमें होनी चाहिए। इसके अभाव में अनुवादक असफल रह जाता है।

5. अलंकारों का प्रयोग

अलंकार वाक्य की शोभा बढ़ाने वाले होते हैं। कई शब्दालंकारों एवं अर्थालंकारों का सहज प्रयोग काव्य में सौंदर्य का कारण बन जाता है। लेकिन जब अलंकारों वाले किसी काव्य खंड का अनुवाद किया जाता है तो अधिकांश उदाहरणों में यह मूल के सौंदर्य को नष्ट कर देता है। जहाँ तक कोंकणी-हिंदी अनुवाद का संबंध है, कोंकणी कविता में अनेक ऐसे सहज अलंकार मिलते हैं जो भाषा की विशेष प्रकृति के कारण आते हैं। अनुप्रास इनमें से एक है। उदाहरण के लिए,

आज्जो आज्जी वजीं म्हणचें	दादा दादी भार कहते
बापा मन नाका रे	पापा का मन ना रहे
श्राप मुरमुरून भोवंपी	शाप देती मुरमुराती
आवय काळीज नाका रे	माई का मन ना रहे

कोंकणी और हिंदी का एक ही परिवार की भाषाएँ होने के कारण इनके अनुवाद में कठिनाई तो नहीं, बल्कि मूल पंक्तियों में 'ज' को लेकर जो अनुप्रास मिलता है, वह अनुवाद में नहीं आ सका है। तीसरी पंक्ति में 'र' के पुनरावर्तन के कारण जो अलंकार कोंकणी में हैं वह हिंदी अनुवाद में उतने प्रभाव के साम्य प्रस्तुत नहीं कर सका। कुल मिलाकर, मूल का सौंदर्य अनुवाद में पूरा नहीं उतर आया है। और एक उदाहरण देखिए :

इतले किकिर?	ऐसा क्यों! इतना शोर!
फुडल्या दारा मुकार	जैसे आगे के द्वार पर
भीकमगरीण।	भिखारिन है खड़ी

इतने जीर्णवस्त्र	इतने जीर्ण-शीर्ण कपड़े
चिकलट बाण शीरें कशें!	धूलि धूसरित!

इसमें 'र' का बार-बार प्रयोग मूल कविता खंड में अनुप्रास का सौंदर्य ले आता है। अंतिम पंक्ति में 'चिकलट बाण शीरें कशें' के प्रयोग से भिखारिन के जीर्ण-शीर्ण, धूलि धूसरित कपड़ों का प्रभावपूर्ण वर्णन किया गया है जो उपमालंकार के अस्तित्व के प्रसंग को अधिक सजा देता है। अनुवाद के 'धूलि धूसरित' शब्द में यह पूरा प्रभाव नहीं देखा जाता। इसमें केवल भावार्थ मिलता है।

ऊपर कही हुई समस्याओं के बावजूद कहीं-कहीं कोंकणी-हिंदी का सफल काव्यानुवाद भी प्रस्तुत किया जा सकता है। दोनों भाषाएँ एक ही परिवार की हैं और समान स्रोत से दोनों भाषाओं का शब्द भंडार विकसित हुआ है। इसलिए ऐसे समानार्थक शब्दों को चुनकर मूल में वर्णित प्रसंग को पूरे प्रभाव के साथ अनुवाद में ले आना भी संभव हो सकता है। यह निम्नलिखित उदाहरण में भी देखा जा सकता है :

सावरे कापसा आंग तिजे	रेशम जैसी देह उसकी
रंगान काली सावली	रंग काला साँवला
रूप निवळ उदकावरी	रूप निश्चल पानी जैसा
नाजुक कंवळी कळी	नाजुक कमल कली-सी
कुरकुर कुरकन्न कानात तुज्या	कुरकुर कुरकन्न कान में तेरे
सांगतली नी काणी	कहती जाय कहानी

इन पंक्तियों में नींद का मानवीकरण मिलता है। नींद रूपी सुंदरी के रूप एवं चाल का सुंदर चित्र यहाँ खींचा गया है। मूल के शब्द एवं भाव जैसे के तैसे अनुवाद में भी मिलते हैं और सभी दृष्टियों से यह एक सफल अनुवाद माना जा सकता है। इसी प्रकार के अनेक उदाहरण कोंकणी-हिंदी अनुवाद के प्रस्तुत किए जा सकते हैं।

कुल मिलाकर कहा जा सकता है कि कोंकणी-हिंदी काव्यानुवाद में दोनों भाषाओं की भिन्न प्रवृत्तियों के कारण कई समस्याएँ उठ खड़ी होती हैं। कोंकणी ताल एवं लय-युक्त मधुर भाषा है, जो कविता के लिए उत्तम है। लेकिन हिंदी में उतना सौंदर्य नहीं है। सांस्कृतिक वातावरण में पले हुए कई ऐसे शब्द कोंकणी में मिलते हैं, जो उस भाषा के अपने ढंग के अलग ही हैं। हिंदी में इन शब्दों का सफल अनुाद संभव नहीं है। फिर भी, एक ही परिवार की भाषाएँ होने के कारण कहीं-कहीं ये समस्याएँ नगण्य रह जाती हैं और कोंकणी-हिंदी काव्यानुवाद अत्यंत सफल भी बन सकता है। कोंकणी में निरंतर काव्य प्रणयन होता रहा है और आज यह अत्यंत आवश्यक हो गया है कि हिंदी में इसका अनुवाद प्रस्तुत किया जाए।

❑

सुरेंद्र कुमार दीक्षित

विदेशी कविताओं के हिंदी अनुवाद

विदेशी कविताओं के अनेक हिंदी अनुवाद समय-समय पर प्रकाशित होते रहे हैं। इन अनुवादों के प्रस्तुतकर्ता अधिकांशतः कवि हैं। जैसे यहाँ के आलोचकों और विद्वानों को अनुवाद जैसे छोटे काम के लिए फुर्सत ही न हो। इसके विपरीत, विदेशों में विद्वानों ने अपना सारा जीवन दूसरी भाषाओं को सीखने और उनके साहित्य को अपनी भाषा में पूरी ईमानदारी से उपलब्ध कराने में बिताया। आर्थर वैली, सी.एम. वोवरा, गिलबर्ट मरे, जे.एम. कोहेन आदि के नाम इसी कारण उल्लेखनीय हैं। प्रसिद्ध कवि एज़रा पाउंड ने चीनी कविता के कितने ही प्रामाणिक अनुवाद प्रस्तुत किए और बोरिस पास्तरनाक (जिनकी रचनाओं का अनुवाद करने का अब हिंदी में फैशन चल पड़ा है) ने शेक्सपियर का रूसी अनुवाद कर ख्याति अर्जित की थी। किंतु हिंदी के विद्वान अनुवाद करना एक हीन साहित्यिक कर्म समझते हैं -- मेरे एक कवि मित्र ने मुझसे कहा था कि जब कवि के पास अपना कुछ कहने को नहीं होता तभी वह अनुवाद करता है। कुछ तो अनुवाद को रचनात्मक साहित्य ही नहीं मानते ओर कुछ उसे निम्न कोटि के साहित्य में परिगणित करते हैं (चाहे वह विदेशी भाषा के मूर्धन्य साहित्यकार की रचना ही क्यों न हो)। परिणामस्वरूप एक ओर तो अनुवादकों को उपेक्षा मिलती है और दूसरी ओर तरह-तरह के मनमाने और अप्रामाणिक अनुवाद बेरोक-टोक प्रकाशित होते रहते हैं। विद्वानों के तिरस्कार और साधारण पाठक को मूल-रचना उपलब्ध न होने की विवशता का लाभ उठाकर अंग्रेजी भाषा का अधकचरा ज्ञान रखने वाला कोई भी लेखक हिंदी में अनुवादक होने का दंभ कर सकता है और जब साहित्यकार को स्वतंत्रता है तब उसे अनुवादों में मूल रचना के साथ बलात्कार करने से कौन रोक सकता है। अनुवादकों को कैफियत देने की क्या आवश्यकता है कि उन्होंने जो भी परिवर्तन किए हैं वह कौन-सा विशिष्ट प्रभाव उत्पन्न करने के लिए या तुक, छंद अथवा लय को निभाने की कौन-सी विवशता

के कारण। हिंदी के पाठकों को अपने बहुभाषा ज्ञान से आतंकित कर सकने के प्रयास में वह अक्सर इसका भी उल्लेख नहीं करते कि उनके अनुवाद अंग्रेजी अनुवादों पर आधारित हैं। इस प्रकार मूल के अंग्रेजी अनुवादों के मनमाने अनुवाद, हिंदी में प्रामाणिक अनुवादक के नाम पर चलाए जा रहे हैं।

विदेशी कविताओं के कितने ही अनुवाद 'प्रतीक', 'कल्पना', 'युग-चेतना', 'कृति', 'धर्मयुग', 'ज्ञानोदय' आदि पत्रों में प्रकाशित हुए हैं, लेकिन जहाँ तक मुझे ज्ञात है इन्हें प्रकाशित करने से पहले अधिकांश संपादकों ने अनुवादकों से मूल रचना नहीं माँगी। इसके पीछे संपादकों का विदेशी साहित्य का अल्पज्ञान या अपने कर्त्तव्यों की उपेक्षा (हिंदी में तो सभी कुछ चल सकता है) या अनुवादकों पर अखंड विश्वास है, कहा नहीं जा सकता। जो भी हो, यदि अनुवादों के साथ-साथ मूल अंग्रेजी रचना भी प्रकाशित हो तो पाठक को भी अनुवाद की अच्छाइयाँ जाँचने-परखने का अवसर मिल सकेगा। केवल संपादक की रुचि या लेखकों के बड़े नाम ही नहीं, अनुवाद की प्रामाणिकता भी उनके प्रकाशन के समय अवश्य देखी जानी चाहिए।

अनुवाद की समस्याओं को समझने के लिए हम पत्रिकाओं में प्रकाशित कुछ अनुवादों पर विचार करेंगे। इन उदाहरणों को लेने का यह आशय कदापि नहीं कि यही उन अनुवादकों की प्रतिनिधि रचनाएँ हैं या इनसे अच्छे और अनुवाद उन्होंने किए ही नहीं। मैंने यहाँ केवल वही रचनाएँ ली हैं जिनका अंग्रेजी में प्रामाणिक अनुवाद मुझे मिल सका।

पहले हम 'प्रतीक' में प्रकाशित कुँवर नारायण द्वारा अनूदित मलार्मे की कविताएँ लें। मलार्मे जैसे अन-अनुवाद्य (Untranslatable) कवि को हिंदी पाठकों के सामने प्रस्तुत करने के लिए कुँवर नारायण बधाई के पात्र हैं किंतु उन्होंने भी अनुवादों में मनमानी की है। एक कविता है 'रूप-छल'। मूल कविता और कुँवर नारायण द्वारा किया गया अनुवाद इस प्रकार है :

Apparition

The moon was saddening, Seraphim in tears
Dreaming, bow in hand, in the calm of vaporous
Flowers, were drawing from dying violins
White sobs gliding down blue corollas
--It was the blessed day of your first kiss.
My dreaming loving to torment me
Was drinking deep of the perfume of sadness
That even without regret and deception is left
By the gathering of a Dream in the heart which has gathered it.

अनुवाद :

रूप-छल

तुम्हारे प्रथम चुंबन का वरद दिन था।
चाँद उदास हो रहा था
सुमनों की लहकती बास के बीच
सपनों में डूबी सजल परियाँ
जिनकी सिसकियाँ सितार की बंद मोड़-सी
फूलों के सम्पुट में बिछल पड़ती थी।
मेरे स्वप्न --
मेरी यातना के स्रोत
उस भीनी उदासी में विसुध वे
जिसे सपनों की छबीली भीड़
अकारण ही उजड़कर
हृदय में छोड़ जाती है।

मूल कविता में जो पाँचवीं पंक्ति है अनुवाद में वही पहली हो जाती है। पता नहीं अनुवादक ने यह परिवर्तन करना क्यों उचित समझा? मुझे तो लगता है कि ऐसा करने से प्रभाव (Ehmphasis) बिलकुल बदल गया है -- मूल में जहाँ पहले वातावरण का चित्र उपस्थित करके उनके कारण रूप में कवि अपने व्यक्तिगत अनुभव को प्रेषित करता है, वहाँ अनुवाद में वह कारण प्रथम पंक्ति में ही उद्‌घाटित हो जाता है। इस प्रकार चाहे कुँवर नारायण कविता में आशय को समझाने में सफल हुए हों, पर उन्होंने बात को उस ढंग से नहीं लिखा जैसे मलार्मे ने रखना चाहा था। फिर 'in the calm of vaporous flowers' को 'सुमनों की लहकती बास के बीच, 'My dreaming loving to torment me' को 'मेरे स्वप्न -- मेरी यातना के स्रोत, 'Even without regret and deception' को 'अकारण ही' करके और अंत में 'which has gathered it' को छोड़कर उन्होंने मूल के साथ काफी अन्याय किया है। मूल को सामने रखकर अनुवाद पढ़ने से स्पष्ट हो जाएगा कि 'dying violins' और 'सितार', 'White sobs' तथा 'सिसकियाँ' और 'Blue Corollas' एवं 'फूल' एक नहीं है।

एक दूसरी कविता 'आह' की कुछ पंक्तियाँ देखिए :

And the wandering heaven of your angelic eye.
Mounts up as in some melancholical gardens.
Faithful, a white jet sighs towards the Azure !

अनुवाद :

जहाँ तुम्हारे दिव्य नेत्रों का भटकता हुआ स्वर्ग
ऐसे ऊपर उठता है
जैसे किसी उदास उद्यान में
वेदना की एक गहरी श्वेत आह
सशरीर नीलाकाश की ओर बढ़ रही हो।

यहाँ 'jet' को छोड़कर अनुवादक ने आशय बिलकुल बदल दिया। मूल में जहाँ नेत्रों का स्वर्ग ऐसे ऊपर उठता है मानो एक श्वेत फौव्वारा (jet) नीलाकाश की ओर आह भर रहा हो। यहाँ अनुवाद में फौव्वारे का कोई जिक्र तक नहीं, सिर्फ एक (गहरी) श्वेत आह (सशरीर) नीलाकाश की ओर बढ़ रही है। अनुवाद में आह भरने को 'वेदना की एक गहरी श्वेत आह' के रूप में 'सशरीर' कर देने का क्या औचित्य है?

'शांति' कविता का प्रारंभिक अंश देखिए --

Just a solitude –
Without the swan and quay
Mirrors its loneliness
In the look ...

अनुवाद : केवल एक सूनापन--
जीवन-स्पर्श से जो हीन
जिसकी असह निर्जनता
झलकती दृष्टि में...

यहाँ भी जिस निर्जनता को कवि ने एक चित्र (Without swan or quay) द्वारा अंकित करना चाहा था उसे अनुवाद में वर्णन से पूरा किया गया है और इससे भी संतुष्ट न हो 'असह' विशेषण जोड़ना पड़ा है।

इन उदाहरणों से स्पष्ट है कि कुँवर नारायण ने शाब्दिक अनुवाद न करके कविताओं के मूल भाव को ही ग्रहण किया है (और उनके आशय को और स्पष्ट करने के लिए टिप्पणियाँ भी दी हैं)। रॉजर फ्रॉई (Roger Fry) जिनके अनुवादों पर कुँवर नारायण के अनुवाद आधारित हैं, ने लिखा है ''अपने अनुवादों में मैंने प्रयत्न किया है शब्दशः अनुवाद करने का, उतनी ही ध्वनि या लय की नियमितता रखते हुए जो उसमें बाधा न डाले। कही-कहीं एक लय में शुरू से बँधे होने के कारण शाब्दिक तथ्यता (Literal exactitude) नहीं रही है और ऐसे अवसरों पर दोनों तत्त्वों को समन्वित न कर पाने की असफलता का उल्लेख कर पाठक को सावधान कर दिया गया।'' लेकिन कुँवर नारायण ने ऐसा करना उचित नहीं समझा।

अब हम फ्रांसीसी कविता के दूसरे अनुवादक कैलाश वाजपेयी के अनुवादों को लेंगे। ये अनुवाद 'युग-चेतना' में प्रकाशित हुए थे। इसमें न केवल रिम्बो (Rimbaud) की कविता मुझे मूल रूप में प्राप्त हो सकी जो नीचे दी जा रही है --

I known skies burst in lightning, waterspouts
And surfs and currents; I the evening know,
And white dove populace exalted dawn;
Have sometimes seen what men believed they saw.

अनुवाद : मैं विद्युत-विदीर्ण आकाशों
भूशण-सूत्रों
जलप्रणाली से अवगत हूँ!
संध्याओं
पारावत कुल के समान
उर्ध्वमुख विहानों को
जानता हूँ।
मैंने देखा है मनुष्य के उन विश्वासों को,
जो यह सब देखकर करता है!
(विश्वास)

× × × ×

Seen the low sun with mystic horrors stained,
Illuminating the long violet clots;
Like actors of most ancient tragedies
The distant waves their flickering shutters roll.

मैंने रहस्यमय भय के धब्बों से युक्त
डूबते सूर्य को देखा है!
जो पुराने नाटकों के अभिनेता की तरह
रक्त-वर्ण शिराएँ प्रकाशित करता है।
दूर आलोड़ित, संकुचित
अंगकंप करती
लहरों से परिचित हूँ।

× × × ×

I, do you know, touched unthought Floridas,
Where flowers are mixed with panther's eyes, the skins
Of men with rainbows, bridlewise outstretched

Beneath sea horizons to glaucous herds.
मैं संक्षुब्ध हूँ जानते हो?
अविश्वसनीय फ्लोरिडा!
जहाँ मानवत्वचाधारी
व्याघ्र की आँखों में फूलों का आवास है!

× × × ×

Marshes I saw ferment, enoromous traps,
Where, whole, Leviathans rot in the reeds;
Down-crashing waters in the tepid air,
The distances in cataract to th'abyss.
(मुझ में विद्रोह है)
क्षितिज तले सागर में उछलती मछलियों के समान
इंद्रधनु के लिए!
मैंने कछारों का अंतस्ताप जाना है।
अपरिमित जाल!
जहाँ धावित ह्वेल का
विगलन है!
(अकस्मात)
सन्नाटे में जल का संपात
और दूरियाँ --
गहराई की ओर जाती
दूरियाँ --

स्थानाभाव से यहाँ केवल कविता का कुछ अंश ही दिया गया है। शुरू में ही 'waterspouts and surfs and currents' को 'भूषण-सूत्रों जल प्रणाली' किया गया है और चौथी पंक्ति का 'Have sometimes seen what men believed they saw.' का अनुवाद, 'मैंने देखा है मनुष्य के उन विश्वासों को, जो यह सब देखकर करता है (विश्वास)' कैसे हो गया? ऐसे ही दूसरे, तीसरे और चौथे पदों (stanzas) का अनुवाद मुझे तो अनुवादक की अपनी कल्पना मालूम पड़ती है -- मूल से उसका इतना ही संबंध है कि उसके शब्द जरूर तथाकथित अनुवाद में आ गए हैं। मूल और अनुवाद की तुलना करने से स्पष्ट हो जाता है कि अनुवादक ने मूल-रचना के बिंबों को न समझकर, एक-एक पद को खींचकर, शब्दों की ऊँची मीनारें खड़ी की हैं।

ऐसा ही अनुवाद एज़रा पाउंड (Ezra Pound) की एक कविता का जगदीश ने

भी किया है जो (उनकी पत्रिका) 'इकाई' में प्रकाशित हुआ था। पूरी कविता नीचे दी जा रही है --

O God, O Venus, O Mercury, patron of thieves

Give me in due time, I beseech you, a little tobbaco-shop,
With the little bright boxes
piled up neatly upon the shelves
And the loose fragrant cavendish
and the shag,
And the bright Virgenia
loose under the bright glass cases,
And a pair of scales not too greasy,
And the whores dropping in for a word or two in passing,
For a flip word, and to tidy their hair a bit.
O God, O Venus, O Mercury, patron of theives,
Lend me a little tobbaco-shop,
or install me in any profession
Save this damn'd profession of writing,
where one needs one's brains all the time.

अनुवाद :

ओ प्रभु, ओ शुक्र, बुध
तस्करों के आश्रय
अनुनय लो
मुझे समय से दे दो
तंबाकू की छोटी सी दुकान
जहाँ शेल्फों पर
छोटे-छोटे चमकीले डिब्बे
सजे हों पाँत की पाँत
और खुला
महक-महक करता
कैवेन्डिश
अलब-पलक-सा गंधीला शैग
और खुला हो
किंतु ग्लैस केसों में
झल-झल वर्जिनिया।
एक तराजू

सुथरी-सी
गंदी बहुत न हो
और जहाँ
कसबिन नगर भर की
आते-जाते
दो क्षण ठहरें
निक केश सँवारें
दो बोल कहें
उच्छृंखल
ओ प्रभु, ओ शुक्र, बुध
तस्करों के आश्रय
मुझे लगा दो
ऐसी छोटी-सी
तंबाकू की दुकान
या बैठा दो
और किसी धंधे में
हो इतना जरूर
धंधा लेखक का न हो
वहाँ हर बात
दिमाग की होती।

इन अनुवाद में मूल की एक-एक पंक्ति को कई पंक्तियों में तोड़कर और अनावश्यक विस्तार देकर पता नहीं जगदीश ने कौन-सा विशिष्ट प्रभाव उत्पन्न करना चाहा है। जहाँ अनुवाद में काली पंक्तियाँ अनुवादक ने अपनी तरफ से जोड़ दी हैं, वहाँ मूल रचना के अंत के 'Damned' जैसे शक्तिशाली शब्द को छोड़ दिया गया है और अंतिम पंक्ति 'Where one needs one's brains all the time' का 'वहाँ हर बात दिमाग की होती' कैसे हो गया, कम-से-कम मेरे दिमाग में नहीं आया।

पुर्तगाली कवि अलबर्टो की कविताओं का अनुवाद करने में परमानंद श्रीवास्तव ने भी कुछ ऐसी ही मनमानी की है -- कहीं कई महत्त्वपूर्ण शब्दों को छोड़कर और कहीं कविता की व्याख्या करते हुए उन्हें अनावश्यक विस्तार देकर! एक कविता है 'मैं तुम्हारा नाम लिखता हूँ' (यद्यपि अंग्रेजी में शीर्षक है 'Core') --

Core
I write my name on time
And on the world :

All belong to me as a flower
Belongs to its perfume asleep
That stays vibrating in the air
After the sombre shedding

अनुवाद : मैं अपना नाम लिखता हूँ

मैं अपना नाम लिखता हूँ
समय पर
और तमाम सारी दुनिया पर
और... और सब कुछ मुझसे
वैसे ही संबंधित है
जैसे फूल
अपनी सुवासित तंद्रा से
जो हवा में काँपती ठहरती है
यों ही झर जाने तक...।

परमानंद श्रीवास्तव ने अनुवाद की चौथी और अंतिम पंक्ति में... लगाकर मूल के पूरे पैटर्न को ही बदल दिया। पता नहीं अनुवादक को चौथी पंक्ति में 'और...' करने की क्या जरूरत पड़ गई और अंत में 'After the sombre shedding' क्या मात्र 'यों ही झर जाने तक...' है? मूल-रचना की चौथी पंक्ति की 'Perfume aspeep' 'सुवासित तंद्रा' होगी या 'तंद्रिल सुवास'। पाठक स्वयं निर्णय कर लें।

एक दूसरी कविता 'अनाश्रित' (The Orphan) का अंतिम अंश देखिए :

Pitiful women longing
So much to have a son
Unknown, I am your life itself.

अनुवाद : पुत्र की दुर्दम ईहा से प्रेरित
ओ कृपाशील औरतों
मैं खुद तुम्हारी जिंदगी ही हूँ।

यहाँ मैं 'प्रेरित' शब्द के प्रयोग के लिए कुछ न कहकर, मूल के Unknown जैसे महत्त्वपूर्ण शब्द को छोड़ देने का औचित्य जानना चाहूँगा।

धर्मवीर भारती ने विभिन्न देशों की कविताओं के अनुवाद प्रकाशित किए हैं। वे विश्व की नई कविता से हिंदी पाठकों को परिचित कराने के लिए बधाई के पात्र हैं पर उन जैसा सतर्क अनुवादक भी अनुवाद में मूल की व्याख्या करने की प्रवृत्ति का शिकार हो गया। बोरिस पास्तरनक की एक कविता है --

The Wind

This is the end of me, but you live on.
The wind, crying and complaining,
rocks the house and the forest,
not each pine tree seperately,
but all the trees together
with the whole boundless distance,
like the hulls of sailing-ships
ridding at anchor in a bay.
It shakes them not out of mischief,
and not in nameless fury,
but to find for you, out of its grief,
the words of a lullaby.

अनुवाद : मैं व्यतीत हुआ, पर तुम अभी हो, रहो।
हवा, चीखती चिल्लाती हुई हवा -- झकझोर रही है
मकानों को, जंगलों को
चीड़ के अलग-अलग पेड़ों को नहीं
वरन सबों को एक साथ -- तमाम सीमाहीन दूरियों को --
किसी खाड़ी में लंगर डाले हुए, लहरों पर उठते-गिरते हुए
तमाम जहाजों की तरह,
और हवा उन्हें झकझोर रही है
केवल चंचलतावश नहीं
न निष्प्रयोजन क्रोध से अंधी होकर
वरन् अपनी चरम पीड़ा में से
मंथन में से,
तुम्हारी लोरी के लिए उपयुक्त शब्द
खोजते हुए।

यद्यपि कविता के मूल भाव को पकड़ने में भारती से कोई भूल नहीं हुई, पर अनुवाद में काले अंश उन्होंने अपनी ओर से जोड़ दिए। चाहे इससे कविता के भाव अधिक स्पष्ट हो गए हों, पर मूल कविता में पास्तरनक ने उन्हें इतना स्पष्ट नहीं करना चाहा था।

ऐसे ही इलियट की 'मारिना' का प्रारंभिक अंश देखिए --

What seas what shores what grey rocks and what islands
What water lapping the bow
And scent of pine and the wood thrush singing through the fog
What images return

O my daughter.

अनुवाद :

कौन से समुद्र से तट कौन सी भूरी चट्टानों और कौन से द्वीप
कौन से ज्वार-जल ढलानों से टकराकर बिखरते हुए
और चीड़ की गंध और वन-पाखी का गीत कोहरे में से आता हुआ
आह! लौट आते हैं कौन से स्मृति चिह्न
ओ मेरी आत्मजा!

यहाँ भी भावार्थ समझाने के लिए 'water' को 'ज्वार जल' और 'lapping the bow" को 'ढलानों से टकराकर बिखरते हुए' किया गया है।

ऊपर दिए गए उदाहरणों से यह स्पष्ट है कि कविता का अनुवाद करना, मात्र एक भाषा से दूसरी भाषा में कह देने का सरल कार्य नहीं है; यह भी एक वास्तविक रचनात्मक कार्य है -- आदर और सावधानी से करने योग्य। और यह बात नई कविता के अनुवादों के लिए और भी लागू होती है जिसमें इस युग का जीवन अपनी संपूर्ण जटिलताओं के साथ प्रतिबिंबित है। कोई भी लेखक, जिसे दो भाषाओं का अच्छा ज्ञान है, विचारों के काव्य (Poetry of ideas) का अनुवाद कर सकता है -- लेकिन नई कविता है छायाओं, संकेतों और सूक्ष्म संगीतिक प्रभावों की कविता। किसी संकेत को पकड़ने, इस तरल धुएँ से पदार्थ को, जो विचारों के पीछे मँडराया करता है, बाँधने के लिए सूक्ष्मग्राही चेतना के भरपूर प्रयास की आवश्यकता है। फिर किसी अनुभूति से उत्पन्न यह संकेत, किसी वक्तव्य से उत्पन्न संकेत से कुछ भिन्न होता है। इसका अस्तित्व वहीं तक होता है जहाँ तक ग्राहक (या भोक्ता) इसे अपने मन में पुनर्रचित (Recreate) कर सके। इस तरह से नई कविता में लेखक और पाठक दोनों की ओर से रचनात्मक प्रयास की आवश्यकता होती है।

ये जटिलताएँ और भी बढ़ जाती हैं जब लेखक और पाठक के बीच में एक तीसरा व्यक्ति अनुवादक और आ जाता है। तब क्या अनुवादक, मूल को किसी भी प्रकार से बदल सकता है? शब्दशः अनुवाद करने का खतरा यह है कि अपने प्रभावों से विलग होकर शब्द अपूर्ण रह जाते हैं। तब क्या अनुवादक उस बिंब को उतारे जो वे शब्द उसमें उत्पन्न करते हों? पर यह भी हो सकता है कि उस बिंब का उनके मन में अस्तित्व ही न हो जिनकी सहायता अनुवादक करना चाहता है। इस समस्या का कोई सीधा हल नहीं है। सूक्ष्मग्राही चेतना और तीव्र प्रतिभा ही अक्सर ऐसे शब्द ढूँढ़ने में सफल हो सकती है जो मूल रचना की सी प्रतिक्रिया उत्पन्न करें।

इसके अतिरिक्त प्रत्येक भाषा की अपनी सीमाएँ हैं। अक्सर ही एक भाषा के मुहावरे

को दूसरी भाषा में उतारने में बड़ी कठिनाई पड़ती है। उदाहरण के लिए, पास्तरनक की कविता 'हवा' के अनुवाद में भारती की 'Hulls' शब्द के लिए एक पूरा वाक्यांश 'लहरों पर उठते-गिरते हुए' प्रयुक्त करना पड़ा। इस प्रकार अनुवादक के बिना चाहे ही, मूल रचना की संक्षिप्तता और पंक्तियों की सघनता से उत्पन्न सौंदर्य नष्ट हो जाता है।

अनुवाद में कविताओं का चुनाव भी बहुत महत्त्वपूर्ण है। यह बात निर्विवाद है कि अच्छे से अच्छा अनुवादक भी सभी कविताओं का अच्छा अनुवाद नहीं कर सकता। 'चीनी कविताएँ' (प्रकाशक जॉर्ज एलेन एंड अनविन लिमिटेड) की भूमिका में ऑर्थर वैली ने लिखा है : ''यदि मैंने अन्य किसी लेखक की अपेक्षा (कवि) पो चुई की दस गुनी अधिक कविताएँ अनूदित कीं तो इसका आशय यह नहीं कि वे अन्य लेखकों से दस गुने अच्छे कवि हैं। इसका आशय सिर्फ यही है कि वे मुझे प्रमुख चीनी कवियों में सबसे अधिक अनुवादनीय (Translatable) लगे। इसका तात्पर्य यह भी नहीं कि मैं अन्य कवियों से अपरिचित हूँ। वास्तव में मैंने ली पो, तू फू और मू शी को अनूदित करने के कई प्रयत्न किए, लेकिन परिणाम से मुझे संतोष नहीं हुआ।'' हिंदी में कितने अनुवादक हैं जो अपनी असफलताओं को स्वीकार करेंगे। अच्छी कविताओं को लेकर ही अनुवादक उस कवि के साथ न्याय कर सकता है। किसी ने सही ही कहा है कि अनुवाद अपने सर्वोत्तम रूप में मात्र एक प्रतिध्वनि है। लेकिन घन-गर्जन की प्रतिध्वनि भी काफी प्रभावशाली होती है। अंत में मैं जोर देकर कहना चाहूँगा कि अनुवादक का एकांत कर्त्तव्य है सर्वाधिक शाब्दिक अनुवाद (most literal translation) प्रस्तुत करना। संवाद बोलने वाला मूल लेखक होता है; अनुवादक मात्र सत्वरक (Prompter) बनकर केवल खोए हुए शब्दों की पूर्ति करता जाता है।

❑

डॉ. कुसुम अग्रवाल

काव्यानुवाद : प्रक्रिया और समस्याएँ

मौलिक चिंतन एवं विचारों की अभिव्यक्ति यदि सृजन है तो अनुवाद दूसरी भाषा में समानांतर सृजन या पुनर्सृजन अथवा अनुसृजन। अनुवाद में भी सृजन-सुख समाहित होता है। मूल लेखक की सृष्टि में जो सुख निहित है, अनुवादक को उससे कम सुख मिलता है -- ऐसी बात नहीं है। वस्तुतः अनुवाद पुनर्सृष्टि है। मूल कृति का फ्रेमवर्क मूल रचनाकार का होता है, किंतु उसे दूसरी भाषा में दूसरे ढंग से उसी पृष्ठभूमि में जब अनुवादक ढालता है तो वह उसकी अपनी सृष्टि होती है। रचनाकार किसी कवित्व भाव को ग्रहण कर भाषा के माध्यम से उसके भावात्मक संसार में विचरता है और उसे आकार देता चलता है। उसी भाँति अनुवादक स्रोत भाषा के स्तर पर कविता के भावात्मक संसार में तादात्म्य स्थापित कर लक्ष्य भाषा में एक ऐसी नई सृष्टि करता है जो पहले उस भाषा में नहीं होती। अनुवादक के लिए सृजनात्मक और संवेदनशील दोनों होना आवश्यक है।

मौलिक सृजन सामान्यतया स्वानुभूत, स्वाध्यायजन्य, स्वकल्पना-प्रेरित, स्वांतःसुखाय और स्व-संवेदनाओं का प्रतिफलन होता है। परंतु अनुवाद में सब कुछ पराया होता है। पराई अनुभूति, पराई कल्पना, पराई संवेदनाओं को अपनी बुद्धि तथा हृदय में रख-बसाकर निज भाषा का स्वाभाविक अंग बनाकर प्रस्तुत करना होता है अनुवादक को। क्रौंचवध को आदिकवि वाल्मीकि ने जिस संवेदना और जिस करुणा के साथ देखा वह उनकी अपनी थी। उनके अंतस् से उद्‌भूत उनका अपना अनुभव था। तुलसीदास ने जिस क्रौंचवध को देखा, वह उनका अपना नहीं वाल्मीकि का संवेदनाजन्य अनुभव था। शकुंतला के पतिगृह गमन पर कण्व ऋषि के जिस क्रंदन को कालिदास की अंतर्दृष्टि ने देखा था उसे गेटे ने अपनी नहीं बल्कि कालिदास के देश की परंपरा के रूप में देखा था जो उसकी अपनी नहीं पराई संस्कृति का भाग था। किसी अनुभव को स्वयं भोगने और

किसी घटना को स्वयं देखने का जो अहसास होता है वह मूल रचनाकार की लेखनी से जितना सशक्त होकर उभर सकता है, उतना दूर से, केवल अपनी कल्पना अथवा अध्ययन-जगत में देखने वाले अनुवादक की लेखनी से जीवंत नहीं हो सकता। मूल रचना को अनुवाद के माध्यम से अपनी भाषा में उतना ही उत्कृष्ट, सहज तथा प्रवाहपूर्ण बनाकर प्रस्तुत करने के लिए अपरिमित कौशल, अभ्यास, अध्ययन, सृजनात्मक प्रतिभा और लेखन-क्षमता की अपेक्षा होती है।

साहित्य के अनुवाद की चर्चा करते समय हम साहित्य शब्द का प्रयोग उसके व्यापक अर्थ में करते हैं। संपूर्ण साहित्य को स्थूल रूप से दो भागों में विभाजित किया जा सकता है -- (1) रसात्मक साहित्य (Literature of Power); और (2) ज्ञानात्मक साहित्य (Literature of Knowledge) । वस्तुतः रसात्मक / सृजनात्मक साहित्य भाव एवं कल्पना पर आधारित एक सृजनात्मक प्रक्रिया है। उसमें तथ्य और विचार मूर्त रूप में नहीं होते बल्कि भाव और कल्पना सूक्ष्म एवं तरल रूप में होते हैं। सृजनात्मक साहित्य का सृजन ज्ञानात्मक साहित्य की भाँति अभिधा प्रधान भाषा में नहीं किया जाता। लक्षणा एवं व्यंजना शब्द-शक्ति ही काव्य तथा नाटक की प्राण-शक्ति होती है। इसी के माध्यम से साहित्यकार की अनुभूतियाँ सहृदय के मस्तिष्क में भाव-चित्र जागृत करने में सफल होती हैं। साहित्य का पृथक्करण यदि संभव है तो इसे तीन आधारों पर पृथक कर सकते हैं-- (1) रचना प्रक्रिया (2) लक्ष्य या प्रयोजन; और (3) उपलब्धि या सिद्धि। यहाँ हमारा मंतव्य सृजनात्मक साहित्य विशेषकर काव्य-साहित्य पर चर्चा करना है। अतः इसी दृष्टि से हम इन आधारों का विवेचन करेंगे :

रचना प्रक्रिया : रचना प्रक्रिया के अंतर्गत रचना का अंतर्पक्ष और बाह्यपक्ष, कथ्य और शैली आते हैं। अतः सर्वप्रथम यह जानना अति आवश्यक होगा कि कविता क्या है। अंग्रेजी के सुप्रसिद्ध कवि 'वर्ड्सवर्थ' (Wordsworth) के अनुसार "Poetry is spontaneous overflow of powerful feelings, it takes its origin from emotions recollected in tranquility." अर्थात् कविता शांति के क्षणों में स्मरण की गई तीव्र अनुभूतियों का स्वतः स्फूर्त प्रवाह है जिनका मूल उत्स भाव-जगत है। 'हडसन' (Hudson) के अनुसार "Poetry is interpretation of life through imagination and emotion" अर्थात् कविता कल्पना एवं भाव के माध्यम से जीवन की व्याख्या है। 'जॉनसन' (Johnson) के अनुसार "Poetry is the art of uniting pleasure with truth by calling imagination to the help of reason" अर्थात् कविता सत्य और आनंद के सम्मिश्रण की कला है जिसमें बुद्धि की सहायता के लिए कल्पना का प्रयोग किया जाता है।

इस प्रकार कविता सृजनात्मक साहित्य का नवनीत है। उसकी संवेद्य अनुभूति 'सांद्र' और बिंब योजना अत्यंत संश्लिष्ट होती है। उसके विधायक तत्व-भाव और कल्पना

-- सर्वथा सूक्ष्म और तरल होते हैं। इन तत्वों का उद्‌बोध ही किया जा सकता है, संप्रेषण नहीं। वास्तव में उद्‌बोध ही उनका संप्रेषण है क्योंकि कवि सहृदय के चित्त में अपनी अनुभूति का स्थानांतरण नहीं वरन् उसकी समानांतर अनुभूति को ही उद्‌बुद्ध करता है। काव्य का माध्यम बिंबात्मक भाषा होती है जो अर्थबोध न कराके सहृदय की कल्पना में भाव-चित्र जगाकर ही कृतकार्य होती है। अतः सृजनात्मक साहित्य के अनुवाद की प्रक्रिया निश्चय ही जटिल होती है। साहित्य-कला के तत्त्वदर्शी मर्मज्ञों के अनुसार साहित्य का अनुवाद मिथ्या कल्पना है क्योंकि अनुवाद के रूप में सामान्यतः जिसे ग्रहण किया जाता है वह अनुवाद न होकर समानांतर रचना ही होती है। अतः कविता की रचना-प्रक्रिया की जटिलता को समझने वाला सहृदय ही उत्तम अनुवाद कर सकता है।

लक्ष्य : काव्य-रचना का सर्वोपरि प्रयोजन एक ही है और वह है ''घनीभूत अनुभूतियों को व्यक्त करने की अदम्य लालसा।'' ज्ञानात्मक साहित्य में जहाँ ज्ञान (अनुभवों) को शब्दबद्ध किया जाता है वहीं सृजनात्मक साहित्य में अनुभूतियाँ शब्दबद्ध होती हैं। ज्ञान और भाव -- ये मानव स्वभाव की दो महत्वपूर्ण वृत्तियाँ हैं। ज्ञान मानव जाति के बौद्धिक विकास का कारणभूत तत्व बनता है तो भाव से उसकी चेतना का परिष्कार होता है। अतः अनुवाद की दृष्टि से देखा जाए तो ज्ञान (अनुभव) के साहित्य का अनुवाद प्रबुद्ध मानव के बौद्धिक विकास के लिए जितना उपयोगी है, काव्य आदि रागात्मक साहित्य का अनुवाद भी उसकी अंतवृत्तियों की समृद्धि एवं परिष्कार के लिए उतना ही महत्वपूर्ण तथा उपयोगी है। यही कारण है कि प्रत्येक युग का साहित्यकार विविध बाधाओं-कठिनाइयों से जूझता हुआ भी विभिन्न भाषाओं की अमर रचनाओं का रूपांतर कर उन्हें अपनी भाषा के सहृदय समाज को सौंपने का महान कार्य करता है।

उपलब्धि : साहित्य-सृजन की प्रक्रिया में चार चरण होते हैं -- अवलोकन, अनुभव, चिंतन-मनन तथा सृजनात्मक अभिव्यक्ति। अनुवाद में इन चारों चरणों की दोहरी प्रक्रिया लागू होती है और पाँचवाँ चरण अनूदित स्वरूप का होता है। अनुवादक पहले सृजनात्मक अभिव्यक्ति से होकर भीतर की ओर बढ़ता है और अवलोकन स्थिति तक पहुँचता है फिर उसी राह से वापस लौटता है और तादृश्य नई अभिव्यक्ति देता है। इस यात्रा के दौरान कितना भी कुछ चाहने पर, कितना भी कुछ कर लेने पर मूल का कुछ न कुछ छूट जाता है और 'स्व' का कुछ न कुछ जुड़ ही जाता है। इत्र की बोतल बदलने पर कुछ न कुछ महक का उड़ जाना स्वाभाविक है। शब्द से अर्थ, अर्थ से अर्थवत्ता और अर्थवत्ता से स्थूल तक ही इस यात्रा का स्रोत भाषा के स्थूल शब्द से सूक्ष्म तक और सूक्ष्म से सूक्ष्मतर तक और अंत में सूक्ष्मतर से लक्ष्य भाषा के स्थूल शब्द तक

की यात्रा कहा जा सकता है। इस यात्रा में एक तथ्य अनुवाद की सर्वाधिक सहायता करता है, वह है -- मानव चेतना में व्याप्त सहज अंतःसूत्र, जिसके कारण एक ही परिस्थिति में मानव, मानव के चित्त में समान भाव उद्‌भूत हो जाते हैं। इसी मानव सुलभ समानुभूति के आधार पर सफल अनुवादक पाठक के चित्त में मूल रचना में अंतर्निहित भावना का उद्‌बोध कर सकता है। उदाहरण के लिए 'शैली' की निम्न पंक्तियाँ देखिए :

Our sweetest songs are those
that tell of saddest thought.

''वे ही हमारे गीत सबसे सुंदर हैं जिनमें अधिकतम करुणा का प्रसार है।''

इस अनुवाद में शैली की पंक्तियों में विद्यमान वर्ण मैत्री का सौंदर्य और उसकी शक्ति की बहुत क्षति हो गई है, पर मूल भावना का आस्वाद तो पाठक कर ही सकता है। परंतु इन भावों का संकेत ग्रहण कर निम्नलिखित पुनर्रचना का भाव और भाषा सौष्ठव मूल से बढ़कर है :

वियोगी होगा पहला कवि आह से उपजा होगा गान।
निकलकर आँखों से चुपचाप, बही होगी कविता अनजान।

वास्तव में मौलिक कविता और अनूदित कविता की रचना-प्रक्रिया में बुनियादी तौर पर कोई अंतर नहीं होता। इसीलिए मौलिक कृति यदि 'रचना' है तो अनूदित कृति 'पुनर्रचना' या 'पुनर्सृजन' है। मौलिक कविता भी कवि के अनुभव की, उसके अपने अनुभव की भाषा से कविता की भाषा में रूपांतरित ही होती है। इस प्रकार 'रचना' और 'पुनर्रचना' में अर्जित या निजी अनुभव का अंतर होता है परंतु मूल भाषा में लिपटी साहित्यिक संवेदना अपनी प्रकृति में इतनी विशिष्ट होती है कि उसका दूसरी भाषा में अंतरण प्रायः असंभव-सा होता है। इस असंभव कार्य को अधिक से अधिक संभव बनाने के लिए अनुवादक को कवि धर्म के कठिन दायित्व का निर्वाह करना पड़ता है। इसी तथ्य को ध्यान में रखकर प्रसिद्ध कवि एज़रा पाउंड ने अनुवाद को 'साहित्यिक पुनर्जीवन' (Literary resurrection) कहा है। यह मूल का रूपांतरण भी होता है और पुनर्नवीकरण भी। यह दो भिन्न भाषाओं की विकसनशीलता और परिपक्वता की प्रक्रिया का साक्षी भी होता है और साथ ही अपनी प्रसव पीड़ा का भी। यह एक प्रकार से एक भाषा से कविता की कलम उखाड़ कर दूसरी भाषा के पाले में प्रतिरोपित करने जैसा कार्य है। यह वास्तव में एक श्रमसाध्य एवं दुष्कर कार्य है परंतु उतना ही स्फूर्तिपद एवं रचनात्मक अनुभूति का कारण भी है। यही कारण है कि अनुवादक अनुवाद कर्म करने का भगीरथ प्रयास करके साहित्य एवं संस्कृति के ज्ञान-राशि रूपी फूलों की सुगंध को हवा में मिलाकर चारों दिशाओं में फैलाने की महत्वपूर्ण भूमिका शताब्दियों से निभाता आया है। वह मानता है कि :

तमाम शिकायतों के बावजूद
मैं आश्वस्त हूँ / मेरे भाषा-भाषी
तुम्हारी अंतर मूर्ति का
साक्षात्कार कर सकेंगे / और मैं
प्रसव पीड़ा के बाद
मुक्ति का आनंद पा सकूँगा।

यही कारण है कि पुराकाल से लेकर आज तक काव्य का अनुवाद निरंतर होता रहा है और आज भी यह प्रक्रिया निरंतर प्रवहमान है।

काव्यानुवाद की समस्याएँ

अनुवादों में मूल रचना अपना कायाकल्प करती रहती है। नवजीवन, नवपरिधान, नवरूप-रस-गंध से युक्त होती रहती है। परंतु ''काव्यानुवाद करना टेढ़ी खीर है'' क्योंकि ''जो चीज़ वाणी के सूत्र में बँध गई हो उसे एक भाषा से दूसरी भाषा में रूपांतरित करने पर उसकी सारी मधुरता नष्ट हो जाती है -- (दाँते)। ''कविता का अनुवाद करना ऐसा ही है जैसे रवि-रश्मियों को तृण-रज्जु में बाँधना''-- (हेने)। ''एक कवि की रचनाओं को दूसरी भाषा में ढालना ठीक वैसा ही है जैसा बनफशे के एक फूल को भट्टी में डालकर उसके रंग और सुवास के मूल तत्वों को जानने के लिए परीक्षण करना''-- (शैली)। परंतु वस्तुस्थिति तो यह है कि उपर्युक्त विचार कितने भी सार्थक क्यों न हों, व्यवहार दृष्टि से कभी भी मान्य नहीं हुए। यदि तत्त्वेत्ताओं का सिद्धांत मान लिया जाता तो सहृदय समाज विश्व-काव्य के रसास्वादन से वंचित रह जाता। सिद्धांत रूप में दुष्कर होने पर भी व्यवहार रूप में विश्व की उत्कृष्ट कृतियों का अनुवाद सम्मान्य भी है और सार्थक भी। परंतु काव्यानुवाद के संदर्भ में अनुवादक को बहुत-सी समस्याओं से जूझना पड़ता है जिन्हें दो वर्गों के अंतर्गत रखना समीचीन होगा -- (I) अनुवादक की आंतरिक समस्याएँ; और (II) अनुवादक की बाह्य समस्याएँ।

I. आंतरिक समस्याएँ

अनुवादक की पहली शर्त या अनिवार्यता है -- लक्ष्य और स्रोत भाषा पर अनुवादक का पूर्ण अधिकार। परंतु दोनों भाषाओं पर समान अधिकार होने के बावजूद अनुवादक की अपनी कई सीमाएँ हैं जो काव्यानुवाद में बाधक होती हैं :

1. अनुवादक की शक्ति/सीमाएँ : इसके अंतर्गत अनेक आवश्यकताएँ या सीमाएँ आती हैं :

(क) अर्थ ग्रहण शक्ति : जो अनुवादक मूल में निहित अर्थ को जिस रूप में ग्रहण करता है उतनी ही सफलता से उसे रूपांतरित करता है। वास्तव में पाठ एक ऐसी पूर्ण भाषिक इकाई है जिसके भीतर कथ्य और अभिव्यक्ति शिव और पार्वती की

भाँति एकात्म रूप से संश्लिष्ट रहते हैं। साहित्यिक कृति का अनुवादक अर्थ ग्रहण करते समय अपने व्यापार में निष्क्रिय नहीं रहता प्रत्युत उसमें अर्थ भरता चलता है। साहित्यिक कृति के रूप में पाठ की अपनी विशिष्ट एवं संश्लिष्ट प्रकृति होती है। उसमें भाषा के सभी आयाम -- नाद-योजना, शब्द-चयन, वाक्य-विन्यास, अलंकार-विधान आदि उस पाठ के मूल भाव के संवर्धन की दिशा में प्रवृत्त रहते हैं। अतः अनुवादक से अपेक्षा की जाती है कि वह संश्लिष्ट एवं अखंड रूप में पाठ के अर्थ को ग्रहण करे परंतु पाठक के रूप में अनुवादक किसी दृष्टि विशेष के आधार पर ही अर्थ ग्रहण करता है। प्रसिद्ध रूसी विद्वान लोटमैन के अनुसार पाठ का अर्थ ग्रहण करने की दृष्टि से चार वर्ग बनाए जा सकते हैं :

(i) **विषय प्रधान दृष्टि :** इसमें अनुवादक की दृष्टि कविता की विषय-वस्तु पर मुख्य रूप से केंद्रित रहती है। उसका मुख्य लक्ष्य होता है -- स्रोत भाषा की काव्य-कृति की विषय-वस्तु को लक्ष्य भाषा की कृति में संप्रेषित करना।

(ii) **संरचना प्रधान दृष्टि :** इसमें अनुवादक की दृष्टि काव्य की संरचना पर केंद्रित रहती है। इसमें उसका लक्ष्य होता है -- कविता की इकाइयों के परस्पर संबंधों पर बल देते हुए उनका विश्लेषण और संश्लेषण करना तथा संघटनात्मक बनावट के आधार पर काव्यानुवाद प्रस्तुत करना।

(iii) **भाषिक प्रधान दृष्टि :** इसमें अनुवादक की दृष्टि कविता की भाषिक विशेषताओं छंद-योजना, शब्द-चमत्कार, अलंकार-व्यवस्था आदि पर केंद्रित रहती है। अनुवाद करते समय उसकी दृष्टि भाषा-व्यवस्था के किसी एक स्तर पर सापेक्षतया अधिक केंद्रित रहती है। यथा -- ध्वनि स्तर, शब्द स्तर, वाक्य-विन्यास स्तर आदि।

(iv) **साहित्येतर प्रधान दृष्टि :** इसमें अनुवादक की दृष्टि कविता के भीतर के काव्य संदेश की अपेक्षा साहित्येतर संदेश पर केंद्रित रहती है। वह मूल कविता के भीतर के धार्मिक, मनोवैज्ञानिक, समाजवैज्ञानिक आदि तत्वों के अर्थ को ग्रहण करके उन्हें अनूदित कविता में संप्रेषित करने पर अधिक बल देता है।

सफल अनुवादक इन सभी सीमा रेखाओं को पार करके स्रोत भाषा में रचित सृजनात्मक पाठ को संश्लिष्ट रूप में ग्रहण करता है।

(ख) **अर्थ-संप्रेषण शक्ति :** जिस अनुवादक का लक्ष्य भाषा का ज्ञान जितना अधिक होगा उसका संप्रेषण भी उतना अच्छा होगा। अनुवादक के लिए कविता की मूल संवेदना की संप्रेषणीयता पर ध्यान देना अनिवार्य है। संप्रेषणीयता के आधार पर लेफेवेर (Lefevere) ने काव्यानुवाद के निम्नलिखित प्रकार बताए हैं :

(i) **स्वनिमिक अनुवाद (Phonemic Translation) :** इसमें अनुवादक स्रोत भाषा की कविता की ध्वनि को लक्ष्य भाषा की रचना में संप्रेषित करता है। ऐसा करते समय

वह मूल कविता में निहित काव्यार्थ का मात्र अन्वयांकर करता चलता है; पर अनुवाद में प्रधानता ध्वनि-व्यवस्था की रहती है।

(ii) **शाब्दिक अनुवाद (Literal Translation) :** इसमें अनुवादक स्रोत भाषा की कविता में प्रयुक्त शब्दों का शब्द-प्रति-शब्द अनुवाद प्रस्तुत करता है जिसके फलस्वरूप मूल कविता का भाव-सौंदर्य, अर्थ-व्यंजना एवं वाक्य-विन्यास अनूदित कविता में खंडित हो जाता है।

(iii) **छांदिक अनुवाद (Metrical Translation) :** इसमें अनुवादक स्रोत भाषा की कविता में प्रयुक्त छंद योजना को अनूदित रचना में रूपांतरित करने के लिए आवश्यकता से अधिक सजग रहता है। इससे कभी-कभी अनूदित रचना एक तमाशा-सा बनकर रह जाती है।

(iv) **कविता का गद्यानुवाद (Poetry into Prose) :** इसमें अनुवादक की दृष्टि मुख्य रूप से कविता के अर्थ पक्ष पर रहती है। दूसरे शब्दों में कहें तो इस विधि में स्रोत भाषा की कविता का रूपांतरण लक्ष्य भाषा के गद्य में किया जाता है। इसे भी संपूर्ण रूप से उचित अनुवाद नहीं कहा जा सकता लेकिन शाब्दिक और छांदिक अनुवाद में निश्चित रूप से इसका स्तर ऊँचा है।

(v) **तुकबंदीपरक अनुवाद (Rhymed Translation) :** इसमें अनुवादक स्रोत भाषा में प्रयुक्त छंद योजना के साथ-साथ तुकबंदी को भी अनूदित रचना में स्थान देता है।

(vi) **मुक्त छंदपरक अनुवाद (Blank verse Translation) :** इस प्रकार के अनुवाद में अनुवादक मूल कविता की संरचना तथा लय, यति आदि का बंधन स्वीकार करता है, लेकिन उसकी छंद-योजना का अविकल अनुकरण नहीं करता।

(vii) **पुनर्व्याख्यात्मक अनुवाद (Interpretetion) :** इसमें अनुवादक मूल कविता का कथ्य सुरक्षित रखते हुए, उसके रूप को परिवर्तित कर अनूदित कविता का अपने ढंग से सृजन करता है। कई विद्वान इसे अनुवाद की कोटि में इसलिए नहीं रखते, क्योंकि इसमें अनुवादक मूल कविता की रूप-रचना का कोई भी बंधन स्वीकार नहीं करता और उसे मात्र अपनी कविता के लिए हेतु बनाता है।

वस्तुतः काव्यानुवाद के अंतर्गत पुनःसृजन की प्रक्रिया महत्वपूर्ण होती है। जो अनुवादक जितनी भाव-प्रवणता के साथ और जितनी मूलनिष्ठता के साथ मूल के भावों को संप्रेषित करता है वह उतना ही अनुवाद को सजीव बना देता है। परंतु जब एक भाषा से दूसरी भाषा में अनुवाद किया जाता है तो मूल कृति की भाव-प्रवणता, संवेदना और अर्थ, भाव और संवेदना में भी सूक्ष्म अंतर अवश्य आ जाता है -- चाहे अनुवादक अपनी ही कविता का अनुवाद क्यों न करे। उदाहरण के लिए अज्ञेय की एक कविता 'मैंने देखा, एक बूँद' को देखा जा सकता है जिसका अनुवाद कवि ने स्वयं किया है :

मूल	अनुवाद
मैने देखा, एक बूँद	**I saw a drop**
मैंने देखा	I saw
एक बूँद सहसा	A drop suddenly
उछली सागर के झाग से	Fly from the scud of the sea
रँगी गई क्षण-भर	flare for a second
ढलते सूरज की आग से	fire from the mellowing Sun Align
मुझको दीख गया :	So there, I thought
सूने विराट के सम्मुख	Against the wall of emptiness
हर आलोक-छुआ अपनापन	this light - shot one
है उन्मोचन	Has found release
नश्वरता के दाग से!	From being blurred to nothing.

यहाँ अनूदित कविता का सर्जक अनुवादक भी वही है जो मूल कविता का सर्जक कवि है। अतः यदि दोनों कविताओं की काव्य वस्तु में कोई अंतर आया है तो उसका आधार या तो स्रोत और लक्ष्य भाषा का वैशिष्ट्य है या फिर अनुवादक की अनुवाद संबंधी अपनी सीमा।

(ग) भावन शक्ति : मनुष्य में दो प्रकार की प्रतिभा होती हैं -- कारयित्री और भावयित्री। जिस व्यक्ति में भावयित्री प्रतिभा जितनी उत्कृष्ट कोटि की होगी वह उतनी ही सफलता से काव्यानुवाद करने में सक्षम होगा। अतः मूल रचना में अभिव्यक्त भावों का रसास्वादन करने की शक्ति अनुवादक में होना अनिवार्य है। कविता केवल शब्दों का योग मात्र नहीं है। शब्दों का ऐसा संयोजन जो विशेष भाव-स्थिति में ले जाता है, काव्य है। कीट्स (Keats) के अनुसार-- "A thing of beauty is joy for ever." रसज्ञ व्यक्ति ही यह आनंद प्राप्त कर सकता है। इसके लिए विशेष प्रकार की निर्वैयक्तिकता की स्थिति की आवश्यकता होती है। यह साधना दो प्रकार से करनी पड़ती है-- (1) जो है उसका निषेध करना पड़ता है; और (2) नहीं को मानना पड़ता है। इसे तादात्म्य की स्थिति कहते हैं।

काव्य के अनुवादक को मूल भावों का रसास्वादन कर अनूदित रचना को भी आस्वाद्य बनाना होता है। इस संदर्भ में कालिदास का एक प्रसिद्ध श्लोक तथा उसका हिंदी अनुवाद द्रष्टव्य है :

मूलः सरसिजमनुविद्धं शैवलेनापि रम्यम्।
मलिनमपि हिमांशोर्लक्ष्म लक्ष्मीं तनोति।

इयमधिकमनोज्ञा वल्कलेनापि तन्वी
किमिह हि मधुराणां मण्डनं नाकृतीनाम्।।

(अभिज्ञानशाकुन्तलम 1.20)

अनुवाद : सरसिज लगत सुहावनो जदपि रह्यो ढकि-पंक।
करि रेख कलंक हू, लसति कलाधर अंक।
पहिरे वल्कल बसन यह लागति नीकी बाल।
कहा न विभूषण होई जो रूप लिख्यो विधि भाल।

हिंदी अनुवाद में कालिदास की भाषा-शैली का चमत्कार प्रायः लुप्त हो गया है, परंतु मूल भावना तो विद्यमान है ही जिसे पाठक सहज ही ग्रहण कर लेता है। भाषांतर के द्वारा कलात्मक अनुभूति का संप्रेषण तो दुस्साध्य अवश्य है, परंतु मूल अनुभूति का आस्वाद दुष्कर नहीं है।

(घ) कल्पना शक्ति : अनुवाद और मूल रचना में तीन प्रकार की दूरी होती है -- देश, काल और भाषा। आज उस परिवेश में जी सकें जिसमें मूल रचनाकार जीता था, इसे कल्पना शक्ति कहते हैं। कल्पना शक्ति के माध्यम से काव्यानुवादक देश, काल, भाषा विषयक बाधाएँ पार करके मूल कवि की दृष्टि से मूल कविता में प्रवेश पा लेता है। अपनी अनूदित रचना (शेक्सपियर कृत 'मेकबेथ' का हिंदी अनुवाद) को मंच पर प्रस्तुत करते समय डॉ. हरिवंशराय बच्चन ने इस तथ्य का उद्‌घाटन इन शब्दों में किया था-- ''तो मैं आपसे कह रहा हूँ आप इस समय यह भूल जाएँ कि आप नई दिल्ली में बैठे हैं। इस समय आप स्कॉटलैंड में हैं और आप भूल जाएँ कि आप सन् 1958 में हैं, आप स्पुतनिक और Explorer के युग में ही हैं। आप उस युग में हैं जिसमें डायनें जल, थल और नभमंडल में विचरण करती हैं। आप ग्यारहवीं सदी में हैं और हाँ उस समय स्काटलैंड की मातृभाषा, राष्ट्रभाषा और राजभाषा हिंदी थी। अगर आपको इन बातों पर विश्वास है तो कला के राज्य का द्वार आपके लिए खुलता है।''

निस्संदेह अनुवादक का आदर्श मूल लेखक होता है। ठीक वैसे ही जैसे सहृदय का साधारणीकरण सर्जक से होता है तभी वह कृति का रसास्वादन कर पाता है। Roscommon ने भी महसूस किया और कहा :

Your author always will the best advise,
Fall when he falls, and when he rises, rise.

2. अनूद्य सामग्री का चयन : काव्यानुवाद की एक समस्या है कि काव्यानुवाद करते समय अनूद्य सामग्री का चयन करना पड़ता है। अनुवादक यदि अच्छा अनुवाद मूल के साथ पूरा न्याय -- करना चाहता है -- तो वह कदाचित् नहीं कर सकता

किंतु कम-से-कम वह यदि चाहता है कि मूल के साथ अन्याय न हो तो उसे किसी कवि की कविताओं से अपनी रुचि और अनूभूति के अनुरूप केवल कुछ रचनाएँ चुन लेनी चाहिए और उन्हीं का अनुवाद करना चाहिए। चयन के दो आधार हैं -- (i) आत्म प्रेरणा; और (ii) बाह्य प्रलोभन या विवशता।

(i) आत्म प्रेरणा : जब अनुवादक आत्म प्रेरणा से सामग्री का चयन करता है अर्थात् स्वयं निर्णय करता है तो उसका अनुवाद मूल से भी उत्कृष्ट बन जाता है। ''रुबाइयत उमर खैयाम'' कृति का एडवर्ड फिट्ज़ेराल्ड ने अंग्रेजी में रूपांतरण किया और अपने उत्कृष्ट अनुवाद के कारण अमर हो गए। उमर खैयाम की रूबाइयों को फ़ारसी ज़मीन से उठाकर अंग्रेजी साहित्योद्यान में रोपित करके फिट्ज़ेराल्ड ने मूल की गंध को अनूदित बोतल में ढालने का प्रयास किया और मूल कृति को आद्योपांत जीवंत रखा। जहाँ वे मूल के प्राणों की प्रतिष्ठा नहीं कर सके वहाँ अपनी सांसों का संचार कर दिया। इसी प्रकार हरिवंशराय बच्चन ने जब उनका हिंदी में 'मधुशाला' नाम से काव्यानुवाद किया तो उनके अनुवाद की और अनुवाद कला की अद्‌भुत विशेषता साक्षी है कि उनके अनुवाद में अधिक नाटकीयता, अधिक बिंबात्मकता एवं सजीवता आ गई है। उसमें न केवल मूल के सौंदर्य की रक्षा की है बल्कि उसमें संवृद्धि भी की है। उदाहरण के लिए निम्नलिखित रूबाई दृष्टव्य है :

आमद सहरे निद्रा जे मयखान-ए-मा।
के रिन्द खराबाती व दीवान-ए-मा
बरखेज कि पुरकुनेम पैमाना जे मय,
ज़ाँ पेश कि पुरकुनंद पैमाना-ए-मा।

अंग्रेज़ी अनुवाद : Dreaminig when Dawn's Left Hand was in the Sky
I heard a Voice within the Tavern cry,
"Awake, my Little ones, and fill the Cup
"Before Life's Liquor in its Cup be dry" --एडवर्ड फिट्ज़ेराल्ड

हिंदी अनुवाद : उषा ने अंगडाई, हाथ
दिए जब नभ की ओर पसार,
स्वप्न में मदिरालय के बीच
सुनी तब मैंने एक पुकार --
''उठो, मेरे शिशुओ नादान,
बुझा लो पी-पी मदिरा भूख
नहीं तो तन-प्याली की शीघ्र
जाएगी जीवन-मदिरा सूख।'' --बच्चन (खैयाम की मधुशाला)

निश्चय ही उपर्युक्त अनुवाद अपने-अपने मूल से उत्कृष्ट बन पड़े हैं। उनका मानना था कि अनुवादक को आत्म प्रेरणा से अनुवाद करना चाहिए न कि किसी दबाव में आकर। मौलिक सृजन की तुलना में अनुवाद की स्थिति के विषय में उनका कहना है कि ''मैं, अनुवाद को यदि मौलिक प्रेरणाओं से एकात्मक होकर किया गया हो, मौलिक सृजन से कम महत्व नहीं देता। अनुभवी ही जान सकेंगे कि प्रायः यह मौलिक सृजन से अधिक कठिन होता है।'' जॉन मैसफील्ड का भी विचार था कि -- "The inspired thing is easy to translate. It has light in itself and leads into light, the translator may stumble, but the rendering will glimmer. To men in darkness a glimmer can be 'Hope' itself." अर्थात् ''प्रेरित होकर जो अनुवाद किए जाते हैं उनका करना सहज होता है। उसमें अपना प्रकाश तो होता ही है, उनकी प्रकाश रश्मियाँ दूसरों तक भी पहुँचती हैं। इस प्रक्रिया में अनुवादक चाहे स्खलित हो जाए परंतु उसकी रचना प्रदीप्त होती रहेगी। अंधकार में भटकते व्यक्तियों के लिए प्रकाश की एक छोटी-सी लौ आशा की एक किरण बन जाती है।''

(ii) बाह्य प्रलोभन या विवशता : आज संचार माध्यमों के युग में हिंदी अब बाज़ार-तंत्र की, व्यवसाय-व्यापार की, खरीद-फरोख़्त की, संचार-तंत्र की, विज्ञापन की भाषा बन गई है। हिंदी अब विभिन्न अनुशासनों, क्षेत्रों और विषयों को आत्मसात् करने की क्षमता का प्रदर्शन कर रही है। हिंदी भाषा में और हिंदी भाषा से अनुवाद की परंपरा अब सुदीर्घ होने के साथ-साथ पुख्ता और उल्लेखनीय भी होती जा रही है। अब एक बहुत बड़ा वर्ग अनुवाद को समर्पित हुआ है और अनुवाद अब सामाजिक एवं राष्ट्रीय दायित्व का गंभीर एवं प्रासंगिक कार्य बन गया है।

अनुवाद ज्ञान का ऐसा वातायन है जिससे हम विशाल विश्व की विशिष्टताओं से परिचित हो सकते हैं, हमारी ज्ञान परिधि का विस्तार होता है, हमारा परिचय क्षेत्र बढ़ता है और विश्व-बंधुत्व की दिशा में आगे बढ़ते हैं। यही कारण है कि आज समूचे विश्व के ज्ञान-विज्ञान को भारत में लाने के लिए विभिन्न सरकारी एवं स्वैच्छिक संस्थाएँ अनुवाद कार्य करा रही हैं और आज अनुवादकों का एक विशाल वर्ग बन गया है जिसने अनुवाद कर्म को आजीविका का साधन बना लिया है। विश्व की विभिन्न भाषाओं के रचित सृजनात्मक साहित्य का भी आज धन के प्रलोभन में बड़े पैमाने पर अनुवाद हो रहा है, परंतु इन अनुवादों में अनुवादक का मूल के साथ रागात्मक संबंध और तादात्म्य स्थापित न होने के कारण मूल की आत्मा और सौंदर्यानुभूति उतनी प्रखरता और आवेग के साथ जीवंत नहीं हो पाती है।

3. अनुवाद के लक्ष्य, दृष्टिकोण और प्रविधि का निर्धारण : अनुवाद करते समय अनुवादक के समक्ष यह प्रश्न होता है कि उसका लक्ष्य क्या है, प्रयोजन क्या है? पाठक

वर्ग कौन-सा है? कौन-सी प्रविधि उपयुक्त रहेगी? उसी के आधार पर वह निर्णय करता है कि कृति विशेष का शब्दानुवाद किया जाए या भावानुवाद।

(क) लक्ष्य निर्धारण : काव्यानुवाद करते समय अनुवादक के समक्ष तीन लक्ष्य होते हैं -- (i) आत्म-परितोष, (ii) स्वानुभूत आनंद से सहभागिता; और (iii) बाह्य प्रयोजन। इन लक्ष्यों के अनुरूप तीन दृष्टिकोण होते हैं -- (क) परिचय (टीकानुवाद); (ख) प्रतिफलन (यह आदर्श अनुवाद की स्थिति है जिसमें हम उसका प्रतिरूप बनने का प्रयास कराते हैं); और (ग) पुनर्सृजन (Recreation)।

(i) आत्म परितोष : आत्म-प्रेरणा से और आत्म-परितोष के लिए किए गए अनुवाद में भी मौलिक सृजन की भाँति ही सृजन-सुख समाहित रहता है। हरिवंश राय बच्चन के लिए अनुवाद कार्य सृजन-सुख का माध्यम रहा है। उनके शब्दों में -- ''अनुवाद मैंने प्रायः उन्हीं रचनाओं का किया है जो मुझे प्रिय हैं। शब्द-शब्द, पंक्ति-पंक्ति, विचार और भाव शृंखला को पकड़े हुए किसी महान लेखक की रचना-प्रक्रिया का अनुसरण करना इतना लोमहर्षक अनुभव है कि उसे तन्मय अनुवादक ही जान सकता है। प्रयत्न मेरा यही रहा है कि मूल लेखक की सृजन मनःस्थिति से तन्मय हो सकूँ। ऐसा होने पर ही अनुवाद सहज हो पाता है।''

तुलसीदास ने भी रामचरितमानस का सृजन स्वांतः सुखाय किया था और प्रत्यक्षतः या सायास किसी ग्रंथ या ग्रंथांश का अनुवाद करना उनका उद्देश्य नहीं था। परंतु मानस में उपलब्ध स्रोत सामग्री के अनूदित रूप से स्पष्ट होता है कि वे अनुवाद कला के अद्‌भुत ज्ञाता थे। उन्होंने मानस में कहीं शब्दानुवाद किया तो कहीं भावानुवाद और कहीं पूर्णतया रूपांतरण करके मूल विषय में परिवर्तन एवं परिवर्धन भी किया। यहीं महाकवि तुलसी की कवि प्रतिभा निखर पाती है। श्रीमद्‌भगवदगीता का निम्नलिखित श्लोक रामचरित मानस में तुलसी की लेखनी से कितने सुंदर ढंग से अनूदित हुआ है देखिए :

यदा यदा हि धर्मस्य ग्लानिर्भवति भारत।
अभ्युत्थानमधर्मस्य तदात्मानं सृजाम्यहम्।।
परित्राणाय साधूनां विनाशाय च दुष्कृतानाम्।
धर्मसंस्थापनार्थाय संभवामि युगे युगे।। --श्रीमद्‌भगवदगीता

जब-जब होई धर्म की हानि। बाढ़हि असुर अधम अभिमानी।
तब-तब हरि धरि विविध सरीरा। हरहिं कृपानिधि सज्जन पीरा।।

--रामचरितमानस 1 / 20 / 6-8

निस्संदेह तुलसीदास जी की सारग्रहिका शक्ति अत्यंत तीव्र थी। रामनरेश त्रिपाठी ने तुलसीदास के संस्कृत ग्रंथों के सूक्ष्म अध्ययन-विश्लेषण के संदर्भ में अत्यंत सटीक

एवं सारगर्भित उक्ति कही है -- ''संस्कृत नंदन-कानन में विचरण करके तुलसीदास रूपी मधुप ने समस्त फूलों का रस लेकर जो मधु तैयार करके हिंदू-जाति को दान किया है, उसकी तुलना संसार के किसी दान से नहीं की जा सकती।'' अनुवाद से मिलने वाले इसी सृजन सुख और आत्म परितोष की खातिर बच्चन जी काव्य-प्रक्रिया के समान ही अनुवाद प्रक्रिया में संलिप्त होते हैं और विलियम बटलर यीट्स के भाव-सरोवर में अवगाहन करते हुए तुल्य रस स्थिति का सृजन करते हैं :

काव्य सिंधु में उतर तुम्हारे मैंने तह को खूब थहाया,
मोती जो दो चार निकाले, यह माँझी का फ़र्ज़ बजाया,
इनको जग परखे, मेरा तो सुख सबसे बढ़कर था,
उसकी चिर-चंचल, वर्तुल लहरों से क्रीड़ा की, विलसा, मनमानी।
मैं नत शीश तुम्हारे आगे, आयर के शायर अभिमानी।

(ii) स्वानुभूत आनंद से सहभागिता : साहित्यिक रचना का अनुवाद करके सृजनशील प्रतिभा वाला अनुवादक न केवल स्वयं सृजन सुख एवं आत्म परितोष की अनुभूति करता है प्रत्युत स्वानुभूत आंनद में औरों को भी सहभागी बना लेता है। के. सच्चिदानंदन की 'कविता का अनुवाद' शीर्षक कविता अनुवाद की प्रकृति को और अनुवादक के गुरुतर दायित्वों को सांस्कृतिक एवं मिथकीय बिंबों और चरित्रों में समाहित चिर-ऐतिहासिक अनुभव अत्यंत अर्थपूर्ण तरीके से व्याख्यायित करती है :

कविता का अनुवाद है हड़बड़ी में
सिर बदलना, विक्रमादित्य की कथा की तरह
अनुवादक ढोता है, दूसरे कवि का सिर
अपने धड़ पर।

किसी दूसरे कवि का सिर ढोते रहने का काम कितना कष्ट देता है आनंद उससे कहीं अधिक देता है। इस प्रक्रिया में यदि सैकड़ों कविताओं में एक भी कविता ऐसी मिल जाए तो लगता है जैसे अनुवाद का यह काम हाथ में लिए जाने योग्य था, न लिया होता तो न जाने कितने बड़े वैभव से हम वंचित रहे होते। मूल रचना यों तो किसी कवि विशेष की ही होती है, पर उससे अधिक वह उस संस्कृति की देन होती है जिसमें यह कवि जी रहा होता है। अनुवाद के बाद यह कविता लक्ष्य भाषा के समुदाय की निधि बन जाती है।

कीट्स के काव्य लोक में विचरण करने वाले अनुवादक-कवि श्री यतेन्द्र कुमार प्रेम की कोमल भावनाओं की अनुभूति को सहृदय पाठकों के साथ किस प्रकार सहभाजित करते हैं, दृष्टव्य है :

मूल : With every morn their love grew tenderer,
With every eve deeper and tenderer still;
He might not in house, field, or garden stir,
But her full shape would all his seeing fill; — Keats

अनुवाद : हर प्रभात के साथ प्रेम उनका होता था कोमलतर,
हर संध्या के साथ, और गंभीर, और भी यह कोमल,
चाहे घर में, या कि खेत, उपवन में ही वह रहा विहर,
प्रिया-मूर्ति ही उसके नयनों के समक्ष रहती प्रतिपल।

सृजनात्मक अनुवाद का उत्कृष्ट दृष्टांत प्रस्तुत करने वाले महाकवि तुलसी ने श्री रामचरितमानस में एक तरफ मंगलकारी अनुभूतियों का समावेश किया तो दूसरी ओर विभिन्न स्रोत ग्रंथों की रत्नमणियों का संचयन कर अपनी अनुवादक प्रतिभा से जनमानस को एक पवित्र एवं दिव्य भावभूमि पर पहुँचा दिया।

(iii) बाह्य प्रयोजन : काव्यानुवाद का एक और लक्ष्य है स्व से पर की ओर प्रस्थान अर्थात आत्म-परितोष और सृजन-सुख से इतर लोक-मंगल, लोक-कल्याण, लोक-हित की भावना; स्व को पर में विलीन करने की महत्वाकांक्षा और अदम्य लालसा। लोकहित की इसी मंगलमयी प्रेरणा एवं इच्छा-शक्ति से प्रेरित होकर ही लोकरंजक महाकवि तुलसीदास ने रामचरितमानस जैसे ग्रंथ की रचना की। विश्व की विभिन्न भाषाओं में छुपे ज्ञान-भंडार को राष्ट्रहित और लोकहित में अपने पाठकों तक पहुँचाना भी अनुवादक का परम पुनीत कर्त्तव्य होता है क्योंकि ''महान कवि की कृतियों के अनुवादों में, भले ही हमें पूरी रोटी खाने की परितृप्ति प्राप्त न हो, आधी क्या, इसका एक गस्सा भी हमारी बौद्धिक क्षुधा को शांत करने में पूर्ण रूप से समर्थ है।''

विश्व-साहित्य से हमारा परिचय भी अपनी भाषा में किए गए अनुवादों से ही हो पाता है। मैक्सिम गोर्की हो अथवा चेखव, इब्सन हो अथवा मोलियर, हम तक वे अनुवादों के माध्यम से ही पहुँच पाते हैं। जब कोई अनुवाद मूल रचना-सा स्वाद देता है तो वह अच्छे अनुवादक का कमाल होता है और जब अनुवादक स्वयं भी स्थापित रचनाकार होता है तो वह मूल लेखक के मन को बेहतर समझता है और उसके बिंबों, संकेतों, और कृति की आत्मा को अपनी सशक्त भाषा में रूपांतरित कर पाता है। भारतेंदु हरिश्चंद्र अथवा राजा लक्ष्मण सिंह आदि ने संस्कृत नाटकों के हिंदी अनुवाद किए। उसी प्रकार मुंशी प्रेमचंद ने अनेक कथाकारों की रचनाओं को हिंदी पाठकों तक पहुँचाया। मोहन राकेश ने भी संस्कृत नाटकों के हिंदी अनुवाद किए। जब भी कोई समप्रतिभा का व्यक्ति अनुवाद करता है तो उसका उच्च स्तर तो स्वतः ही निर्धारित हो जाता है। नाटकों के अनुवादकों में रांगेय राघव का नाम सबसे ऊपर आता है। उन्होंने शेक्सपियर

के प्रायः सभी नाटकों का अनुवाद किया है।

भारतेंदु देश की उन्नति के लिए अन्य भाषाओं के ग्रंथों को हिंदी में अनूदित करना आवश्यक समझते थे। उनका मानना था कि ऐसा करने से हमें विदेशियों की राजनीति समझ में आ जाएगी, अपने धर्म की पहचान हो जाएगी और हम आत्मनिर्भर हो जाएँगे। वे अन्य भाषाओं के श्रेष्ठ ग्रंथों को हिंदी में अनूदित करने का आह्वान करते हुए कहते हैं :

अँगरेजी अरू फ़ारसी अरबी संस्कृत ढेर।
खुले खजाने तिनहिं क्यों लूटत लागहू देर।।
सबको सार निकाल के पुस्तक रचहु बनाई।
छोटी बड़ी अनेक विध विविध विषय की लाइ।।

इसी भावना से प्रेरित होकर भारतेंदु ने अँग्रेजी, संस्कृत, बांग्ला और प्राकृत भाषाओं से हिंदी में अनेक अनुवाद किए। उदाहरण के लिए, अँग्रेजी से शेक्सपियर के 'मर्चेन्ट ऑफ वेनिस' का हिंदी में 'दुर्लभबंधु', बांग्ला से यतीन्द्र मोहन ठाकुर के नाटक का हिंदी में 'विद्या सुंदर', प्राकृत से राजशेखर के नाटक का हिंदी में 'कर्पूर मंजरी', संस्कृत में विशाखदत्त, काँचन एवं हर्ष के नाटकों का हिंदी में 'मुद्राराक्षस', 'धनंजय विजय', 'रत्नावली' के रूप में अनुवाद किए। इन अनुवादों को अध्ययन करने से पता चलता है कि भारतेंदु का अनुवाद-संबंधी एक विशिष्ट दृष्टिकोण था। उनका कहना था कि मूल-कवि से हृदय मिलाए बिना अनुवाद करना शुद्ध झक मारना ही नहीं, कवि की लोकांतर स्थित आत्मा को नरक-कष्ट देना भी है। वे शब्दानुवाद के पक्ष में नहीं थे, क्योंकि वे समझते थे कि ऐसा करने पर अनुवाद में अर्थ का अनर्थ हो जाता है। वे मूल रचना के भाव को ज्यों-का-त्यों दूसरी भाषा में सुरक्षित रखने के पक्षधर थे। वे यह भी ठीक समझते थे कि मूल कृति का अनुवाद इस प्रकार किया जाए कि लक्ष्य भाषा का पाठक उसे पढ़कर मौलिक रचना जैसा आनंद प्राप्त कर सके। ऐसा तभी संभव था जब अनुवादक उस पर अपने देश, समाज और संस्कृति की छाप छोड़े। शायद इसी कारण उन्होंने शेक्सपियर के 'मर्चेन्ट ऑफ वेनिस' का हिंदी में अनुवाद करते हुए उसका भारतीयकरण कर दिया था। इससे स्पष्ट है कि वे अनूदित ग्रंथ को अपनी भाषा के पाठकों द्वारा सहजता से ग्रहण किया जाने के लिए मूल भाषा के मुहावरों का भी शाब्दिक अनुवाद करने की अपेक्षा उसके समतुल्य अपनी भाषा में प्रचलित मुहावरों का समावेश करने के पक्ष में थे। इस प्रकार हम देखते हैं कि अनुवाद के प्रति भारतेंदु का दृष्टिकोण अत्यन्त स्वस्थ एवं संतुलित था। जहाँ वे एक ओर अनुवाद-कार्य के पीछे लोकहित को विशेष उद्देश्य मानते थे, वहाँ वे अनूदित रचना के भाव-सौंदर्य एवं कला-सौष्ठव

को भी सुरक्षित रखना चाहते थे। भारतेंदु का यह दृष्टिकोण आज भी मान्य कहा जा सकता है।

(ख) प्रविधि निर्धारण : साहित्यिक रचना यदि छंदबद्ध, पद्यबद्ध हो तो अनुवादक के समक्ष यह प्रश्न उपस्थित होता है कि वह उसका अनुवाद गद्य में करे या पद्य में। एम. वी. राजाध्यक्ष के अनुसार -- ''कविता का अनुवाद निःसंदेह ज़्यादा कठिन है। कविता की भाषा का प्रयोग बिलकुल भिन्न रूप में होता है। शब्दों से जो संस्कारजन्य गूँज उठती है, वही कविता को जन्म देती है, स्वयं शब्द नहीं। वह भाषा की भी भाषा होती है। फिर लय और छंद के साँचे भी सूक्ष्म-सुकोमल प्रभावों की सृष्टि करते हैं। इनको एक भाषा से दूसरी भाषा में किस प्रकार रूपांतरित किया जा सकता है।''

काव्यमय अर्थात पद्यबद्ध अनुवाद करने में सबसे पहले छंद की समस्या आती है। आवश्यक नहीं कि लक्ष्य भाषा में उपयुक्त छंद हो। अतः अनुवादक निकटतम छंद की खोज करता है। संस्कृत तथा हिंदी में और आधुनिक भारतीय भाषाओं में छंद विधान के सांगीतिक आधार के साम्य के कारण अनुवाद अधिक कठिन नहीं होता। यथा :

मूल : धर्मक्षेत्रे कुरुक्षेत्रे समवेता युयुत्सवः।
मामकाः पाण्डवाश्चैव किमकुर्वत सञ्जय।।
-- श्रीमद्भगवदगीता (1/1)

हिंदी अनुवाद : धर्मक्षेत्र कुरुक्षेत्र वहाँ युद्धार्थ जो जुड़े
वहाँ पाँडव मुखी हे संजय क्या कहा।। -- सियारामशरण गुप्त

परंतु अंग्रेजी तथा अन्य यूरोपीय भाषाओं का सांगीतिक आधार भिन्न होने से पाश्चात्य छंदों का हिंदी अनुवाद प्रायः दुस्साध्स ही होता है। "Merchant of Venice" की प्रथम पंक्ति देखिए :

"In soothe, I know not why I am so sad"

अनुवाद : ''मैं जानता नहीं कि मैं इतना उदास क्यों हूँ।''

दोनों का लय प्रवाह भिन्न है। ऐसी स्थिति में अनुवादक के पास एक ही विकल्प होता है -- मूल लय की अनुसर्जना अर्थात सृजनात्मक अनुकरण।

यदि छंदोबद्ध रचना का गद्य में अनुवाद किया जाए तो 60% काव्यत्व समाप्त हो जाता है। कविता पूर्ण रूप से छंद के माध्यम से बनती है। परंतु संभव न होने पर बीच का मार्ग अपनाया जा सकता है। छंद विधान से मुक्त लय-प्रधान काव्य का लालित्य बोरिस पास्तरनक की कविता 'The wind' के धर्मवीर भारती द्वारा किए गए अनुवाद में द्रष्टव्य है :

मूल : This is the end of me, but you live on.
The wind, crying and complaining,

rocks the house and the forest,
not each pine tree seperately,
with the whole boundless distance,

अनुवाद : मैं व्यतीत हुआ पर तुम अभी हो, रहो
हवा चीखती, चिल्लाती हुई हवा-झकझोर रही है।
मकानों को, जंगलों को,
चीड़ के अलग-अलग पेड़ों को नहीं
वरन् सबों को एक साथ-तमाम सीमाहीन दूरियों को

(ग) पुरानी कृतियों के नए अनुवादों की समस्या : काव्यानुवाद करते समय इस समस्या से भी जूझना पड़ता है कि अनुवादक उस समय के परिवेश का आकलन कैसे करे? क्या मूल के परिवेश को, उसके संसार को अक्षुण्ण रखे या आधुनिक रूप में व्यक्त करे। भाषा एक विकासशील प्रवाह है। वस्तुतः अनुवादक देश-काल पार कर अनुवाद को प्रस्तुत करने का प्रयत्न करता है। यदि शेक्सपियर की किसी रचना का अनुवाद किया जाए तो उसकी अंग्रेजी आज की अंग्रेजी से बहुत भिन्न है। परिस्थितियाँ भी भिन्न हैं क्योंकि डायनें उसी युग में संभव थीं, आज नहीं। अब उनमें कोई भी विश्वास नहीं करता, दृष्टिकोण पूरी तरह बदल गया। विश्वासों को कैसे जीवित रखा जाए, उन संकल्पनाओं को, उन भावनाओं को कैसे जगाया जाए यह अनुवादक के सामने बहुत बड़ी चुनौती होती है। यहाँ अनुवादक का अपना ज्ञान, परंपराओं का ज्ञान महत्वपूर्ण भूमिका अदा करता है। इसीलिए बच्चन जी को विशेष सफलता मिली है। उन्होंने पाठकों में, दर्शकों में वैसी ही संवेदना एवं भावना जगाई है।

II. बाह्य समस्याएँ

(क) अनुवाद कार्य के प्रति सही परिप्रेक्ष्य का अभाव : सभी सिद्धांतवादियों ने अनुवाद को कला माना जिसमें सृजनात्मक प्रतिभा के साथ-साथ अभ्यास, प्रयत्न, कौशल और शिक्षण भी आवश्यक है। कवि में केवल कवित्व और नाटककार में केवल नाटकत्व होता है जबकि अनुवादक में दोनों प्रतिभाएँ होती हैं -- भावमयी भी और कलामयी भी। इनके बल पर वह मूल कृति तथा अनूदित कृति के बीच खड़ी ऊँची एवं दुरूह दीवार को लाँघने का प्रयास करता है। वह अनुवाद कर्म की लहरियों में पूरी तरह डूबने के लिए दूसरे की पीड़ा को स्वयं भोगता है :

किसी और के हादसे को
अपने स्तर पर जीना
और भोगना उस सत्य को
जो भोगा ही न गया हो -- बिना सत्यकाम बने।

इस प्रकार अनूदित कृति दो सर्जकों की संयुक्त कृति बन जाती है तथापि, अनुवाद एवं अनुवादक को सृजन तथा सर्जक के बराबर सम्मान न देकर हेय दृष्टि से देखा जाता है। सृजन के व्यावहारिक अनुभवों की प्रसव पीड़ा से गुजरते हुए अनुवादक की सृष्टि पर समाज का उपेक्षापूर्ण व्यवहार करना अनुवाद और अनुवादक के प्रति अन्याय नहीं तो और क्या है?

जिसे निज शब्दों में बाँध
और नजदीक ले आया मैं
वह अधूरी है तुम्हारे लिए
क्योंकि वह मेरी नहीं है,
...सच पूछो तो
यह अन्याय है मेरे प्रति।

(ख) पाठक वर्ग और उसकी भाषा : यदि यह देखने का प्रयास किया जाए कि उपन्यास के, हिंदी-कविता के पाठक कौन हैं तो एक विशेष वर्ग की ओर संकेत करते हैं। पर अनुवाद के पाठक वर्ग की ओर संकेत बहुत कम हैं। जो व्यक्ति भाषा जानता है वह शेक्सपियर पढ़ेगा, यदि नहीं (नई भाषा है) तो क्या यह आवश्यक है कि वह उसकी प्रतिभा से परिचित हो। यदि एक वर्ग हो तो भी प्रश्न उठता है कि भाषा क्या है उस वर्ग की?

मेकबेथ -- The queen, My lord is dead

अनुवाद -- 'नाथ महारानी का जीवन दीप बुझ गया'

महारानी की मृत्यु से घबराए हुए प्रहरी के पास बाधा नहीं है। उसने अलंकृत सरलतम भाषा में असीम संभव भाव को व्यक्त किया है।

सुनिश्चित बौद्धिक पाठक वर्ग अनुवादक को सुलभ नहीं होता। यदि भीड़ हो तो भी उसी वर्ग की भाषा को प्रामाणिक मानकर अनुवाद किया जाता है।

(ग) कथ्य तथा कथन अर्थात् भाषा-शैली विषयक समस्याएँ : साहित्य की परिभाषा करते हुए प्रायः यह कहा जाता है कि कथ्य और कथन ही के समवाय (संयोजन) का नाम साहित्य है। स्पष्ट होता है कि प्रतिपादित विषयवस्तु और प्रतिपादन शैली -- साहित्य के दो मूल आधार हैं। कथ्य अथवा प्रतिपाद्य के अंतर्गत प्रायः तीन तत्वों का समावेश किया जाता है -- (1) कथा तत्व (2) विचार तत्व; और (3) भाव तत्व। कथा तत्व प्रायः स्थूल होता है; उसमें घटना, वर्णन और चरित्रांकन की प्रधानता होती है। अपेक्षाकृत स्थूल होने के कारण इस प्रकार के निरूपण का भाषांतरण प्रायः कठिन नहीं होता है। जब लेखक की रचना में विचार तत्व का सम्मिश्रण होता है तब अनुवादक

के समक्ष कुछ कठिनाई आती है। इसी प्रकार भाव जितना सूक्ष्म होता है, भाषांतरण उतना ही कठिन हो जाता है। इस प्रकार काव्य-कृति के विचार-तत्व और भाव-तत्व की समतुल्य प्रस्तुति अनुवादक के लिए खास चुनौती बनकर उभरती है। परंतु वर्ड्सवर्थ की कविता के विचार-तत्व को अनुवादक श्री यतेन्द्र कुमार ने बहुत ही कुशलता के साथ रूपांतरित किया है। बालक का बड़े होते जाना तथा विषयता के तंतुजालों का उसके चारों ओर बढ़ते जाना कवि के वैचारिक धरातल से परिचय कराता है :

मूल : Heaven lies about us in our infancy!
Shades of the prison-house begin to close
Upon the growing Boy.

अनुवाद : बसता स्वर्ग हमारे चारों ओर, हमारी शैशव वय में
कारागृह गृह की छायाएँ लगती हैं घिरने,
ज्यों-ज्यों वह कैशोर्य रूप में लगता बढ़ने।

इसी प्रकार वह भावों और मनोवेगों को रसास्वादन करती मानवीय सहृदयता को तथा मार्मिक स्थलों की भावपूर्ण प्रस्तुति को रूपांतरित करने का भी दुस्साध्य कार्य करता है।

भाषा-शैली विषयक समस्याएँ

अनुवादक के प्रायः दो प्रकार की अपेक्षाएँ की जाती हैं -- (1) एक भाव अथवा कथ्य का सम्यक् संप्रेषण; और (2) कथन अर्थात् भाषा-शैली का यथातथ्य अनुभाव।

कभी-कभी भ्रमवश यह मान लिया जाता है कि उत्तम अनुवादक वही है जो कथ्य के सम्यक् अंतरण के साथ-साथ मूल लेखक की शैली को भी अनुवाद में सुरक्षित रख सके। यह भ्रांत धारणा है। स्वयं स्रोत भाषा में मूल लेखन की शैली का अनुकरण संभव नहीं होता फिर अनुवाद में तो यह कार्य और भी दुष्कर है। शैली के संदर्भ में अनुवादक अधिक से अधिक यही कर सकता है कि मूल की शैली के प्रमुख तत्वों को आत्मसात् करके अनुवाद में उसका अनुसरण कर ले।

भाषा-शैली के प्रश्न पर अनुवाद के संदर्भ में विचार करते हुए हमें पहले भाषा पर दृष्टि डालनी होती है। साहित्य में भाषा का प्रयोग असामान्य रीति से किया जाता है। इसीलिए काव्य भाषा सामान्य भाषा से भिन्न होती है। वहाँ शब्द और अर्थ एकाकार होते हैं। इतना ही नहीं। हर शब्द का अपना अर्थ भिन्न होता है जो सांस्कृतिक, भौगोलिक तथा सामाजिक पृष्ठभूमि से संबंधित होता है। अंग्रेजी कविता का Spring भारतीय 'वसंत' से भिन्न है। साहित्यिक प्रयोग में शब्द के रूप को उसके शब्दकोशीय अर्थ से अधिक व्यक्त करने के लिए किया जाता है। इस प्रकार व्यक्त अर्थ उसका वास्तविक अर्थ होता है। इसीलिए शब्द का प्रति-शब्द प्रायः असंभव होता है।

(i) अनुवाद की भाषिक समस्याएँ

(1) अनुवाद की भाषिक समस्याओं में सर्वप्रथम है -- **ध्वनियों का ध्वनिरूपों में अंतर्निहित तात्पर्य को अंतरित करने की समस्या।** ललित साहित्य रचयिता अपनी साहित्यिक कृति में जिन अर्थ-प्रतीकों अर्थात् शब्दों अथवा ध्वनिबंधों का प्रयोग करता है, उनका प्रतिपादित भाव के साथ घनिष्ठ संबंध होता है। काव्य में प्रयुक्त ध्वनियों तथा काव्य में निरूपित भावों में इस पारस्परिक अभ्यंतर संबंध का उल्लेख अंग्रेजी में प्रसिद्ध कवि Alexender Pope ने अपनी प्रसिद्ध कृति Essay on Crticism में इस प्रकार किया है :

'Tis not enough no harshness gives offence,
The sound must seem an echo to the sense.
Soft is the strain the Zephyr gently blows,
And the smooth stream in smoother numbers flows;

इस अवतरण में कवि ने समीर की मंदगति के शब्द बंधन के लिए सुकोमल ध्वनियों का प्रयोग किया है। नदी की सरल धारा का प्रवाह सहज-सरल ध्वनियों द्वारा वर्णित किया गया है और तूफान का भयानक वेग अंकित करते समय ध्वनियाँ भी उसी के अनुसार तीव्र और प्रखर हो गई हैं। इन पंक्तियों का जगन्नाथदास रत्नाकर द्वारा किया गया अनुवाद इस प्रकार है :

ऐ तो हो नहीं सकता सदा, कविता में भाई।
कै रूक्षता सहृदय को न होहि दुखदाई।
परमावश्यक धर्म वरन् यह सुमति प्रकासै।
कै रचना के शब्द अर्थ प्रति ध्वनियों में भासै।
चहियत कोमल वरन्-पवन जहँ बहत मन्दवर।
सरिता सरल चाल वरनन हित छंद सरलतर।
पै भैरव तरंग जहँ रोरित तट टकरावै।
उत्कट उद्यतवान प्रबल प्रवाह लौ आवै।

(2) दूसरी भाषिक समस्या यह सामने आती है कि **स्रोत तथा लक्ष्य भाषाओं के बीच प्रकृतिगत समस्या है** या नहीं। उसका आशय यह है कि स्रोत तथा लक्ष्य भाषा के बीच सांस्कृतिक, पारंपरिक अंतर है अथवा नहीं; यदि है तो वह कम है या अधिक। देश और काल के साथ भाषा का अनिवार्य संबंध होता है। अतः स्रोत एवं लक्ष्य भाषा में प्रकृतिगत समानता जितनी अधिक होती है अनुवाद उतना ही सुगम होता है। असमानता बढ़ने के साथ-साथ अनुवाद भी कठिन हो जाता है।

(3) **भाषाओं की विकास स्थिति :** लेखक की शैली उस भाषा-विशेष में विकास का एक सोपान होती है, उसमें परोक्ष रूप में उस भाषा विशेष का इतिहास समाया

होता है। अतः अनुवाद करते समय अनुवादक को यह देखना होता है कि मूल रचना की शैली उस भाषा के विकास के किस मोड़ की कड़ी है और फिर उसे अपनी भाषा में कुछ उसी प्रकार की भाषा-शैली की खोज करनी होती है।

(4) काव्यानुवादक के समक्ष एक भाषिक समस्या यह भी उपस्थित होती है कि अनुवाद **लेखक युगीन भाषा में किया जाए या अनुवाद युगीन भाषा में।** लेखक युगीन भाषा में किया गया अनुवाद पाठक को मूल भाषा की सांस्कृतिक, धार्मिक, राजनीतिक तथा भाषिक विशेषताओं से परिचित करा देता है। मूल रचनाकार का मुहावरा आरंभ में ही अटपटा लगता है किंतु बाद में वे नए प्रयोग लक्ष्य भाषा को अधिक संपन्न ही बनाते हैं। इस प्रकार के आदान-प्रदान से भाषा विकासोन्मुख और गतिशील हो जाती है।

लेखन युगीन भाषा में किया गया अनुवाद प्रायः अनुवाद मात्र बना रहता है। इसमें मूल का सा प्रवाह नहीं रहता अतः अनुवाद में पाठक की रुचि नहीं रहती। ऐसा अनुवाद केवल उन लोगों को आनंदित करता है जिन्हें स्रोत भाषा का पहले से ही अच्छा ज्ञान होता है। अनुवादक युगीन भाषा में किए गए अनुवाद में मूल रचना का सा प्रवाह लाया जा सकता है परंतु ऐसा अनुवाद जल्दी ही पुराना पड़ जाता है क्योंकि नए युग की अपनी-अपनी भाषिक मांग होती है। वास्तव में दोनों प्रकार के अनुवाद आवश्यक हैं। विश्व के गौरव ग्रंथों का इन दोनों भाषाओं में अनुवाद होना चाहिए। उसके साथ ही साथ एक मध्यम मार्ग भी अपनाया जा सकता है जिससे दोनों युगों की मुख्य विशेषताओं का समावेश हो जाएगा। इस प्रकार के अनुवाद संभवतः युगानुकूल भी होंगे और अनुवादक युगीन भाषा में किए गए अनुवादों से अधिक स्थाई रहेंगे।

(ii) अनुवाद की शैलीविषयक समस्याएँ

शैली की परिभाषा करते हुए पाश्चात्य एवं प्राच्य विचारकों ने अनेक महत्वपूर्ण वक्तव्य दिए हैं। उदाहरण के लिए कॉलरिज (Colridge) का कथन है कि 'शैली लेखक का परिधान मात्र न होकर इसकी त्वचा तुल्य है।' इस कथन का अभिप्राय यह है कि शैली को लेखक से भिन्न न मानकर उसी का एक अनिवार्य अंग माना जाना चाहिए। 'Style is the man' जैसे वक्तव्य इस तथ्य की ओर संकेत करते हैं। दूसरी ओर जॉर्ज बर्नाड शॉ (George Bernard Shaw) (जैसे चिंतकों का विचार है कि 'प्रभावपूर्ण अभिव्यक्ति ही शैली का अथ और इति है।' यह महानुभाव शैली में व्याप्त व्यक्ति तत्व को begining अंगीकार तो नहीं करते किंतु कुशल अभिव्यक्ति पर बल अवश्य देते हैं। पाश्चात्य विचारकों में एक वर्ग ऐसा भी है जो शैली का संबंध देश-काल के साथ जोड़ता है। उदाहरण के लिए, डॉ. जे. ब्राउन का कथन है कि 'विचार यदि मुद्रा तुल्य है तो शैली उस मुद्रांकन के समान है जिसमें पता चलता है कि वह सिक्का किस सम्राट के शासन-काल में बनाया और प्रचलित किया गया था।'

भारतीय काव्यशास्त्रियों ने शैली को प्रायः रीति का पर्याय माना है और रीति से उनका अभिप्राय है -- विशिष्ट पद रचना। यहाँ विशिष्ट का आशय है गुण युक्त। अर्थात् यथार्थ प्रसंग, प्रसाद, माधुर्य और ओजपूर्ण रचना। अनुवाद के संदर्भ में शैली पर विचार करते हुए डॉ. नगेंद्र ने कहा है -- ''शैली अपने आप में ही एक प्रकार का अनुवाद अर्थात् मूल अनुभूति का शब्दानुवाद है। मूल विचारों को शैलीबद्ध करना ही अपने आपमें अनुवाद है। शैली अपने आप में अपूर्व अभिव्यंजना है भाव या विचार को अभिव्यक्त करने के लिए। अतः अपूर्व को दूसरी भाषा में रूपांतरित करना तो और भी अपूर्व हुआ।''

दूसरी ओर प्रसिद्ध पाश्चात्य अनुवादशास्त्री टिटलर (Tytler) का कथन है कि अनुवाद में मूल लेखक की शैली तथा स्वरूप की रक्षा होनी चाहिए। उसके लिए यह आवश्यक है कि अनुवादक मूल लेखक के साथ तादात्म्य कर ले, उसकी शैली को आत्मसात् कर ले और समझ ले कि पाठक किस वर्ग का है। यदि वह ऐसा नहीं करता और लेखक के अर्थ-बोध पर निर्भर रहता है तो वह लेखक को विकृत रूप में ही उपस्थित करेगा और उसके साथ न्याय नहीं कर सकेगा।

शैली के तत्व : शैली के तत्वों को दो वर्गो में विभाजित किया जा सकता है -- (1) बाह्य पक्ष (2) भीतरी अथवा अंतः पक्ष। बाह्य तत्वों में है :

(i) विशिष्ट शब्द योजना : साहित्यकार विशेष प्रकार के शब्द संयोजन के द्वारा अपेक्षित प्रभाव उत्पन्न करता है। उदाहरण के लिए शेक्सपियर ने अपनी रचना (मैकबेथ) में मूल भंगनियों की भावनाओं को और उनकी प्रकृतिगत कुटिलता को व्यक्त करने के लिए इस शब्द संयोजन की शरण ली है :

When shall we three meet again,
In thunder-lightening,' or in rain ?
When the hurley-burley 's' done--
When the battle's lost and won.

डॉ. बच्चन ने इन अस्पष्ट वक्ताओं की प्रवृत्ति का निरूपण इस प्रकार किया है :

कब लुटति फिर तीनों हम
आँधी में या पानी में
या बिजली चमके जब चमचम
शोरशराबा हल्ला-गुल्ला जब हो बंद
हारे जीते रण का जब हो जाए मंद।

इस प्रकार स्पष्ट है कि शब्द संयोजन के कौशल निर्वाह के लिए अनुवादक में विशेष कौशल अपेक्षित है।

(ii) वाक्य विन्यास : शैली का दूसरा बाह्य तत्व है -- वाक्य-विन्यास। रचना के

प्रभाव पर इसका विशेष योगदान है। मिल्टन की प्रसिद्ध रचना 'सेम्सन ऐगो मिस्टिस' में कवि का यह कौशल इस प्रकार व्यक्त हुआ है :

A little onward lend thy guiding hand.
To these dark steps, a little further on.

यहाँ कवि ने a little से वाक्य आरंभ करके फिर उसे a little पर ही समाप्त करके एक विशेष प्रभाव उत्पन्न किया है। इस विशेषता की रक्षा बालकृष्ण राव ने अपने अनुवाद में इस प्रकार की है :

अभी और कुछ दूर राह अंधे से,
भले दिखाती बाँह तुम्हारी।

(iii) शैली के अन्य प्रधान अवयव हैं -- **अलंकरण।** इनके अंतर्गत शब्द-शक्तियाँ, गुण, अलंकार, प्रतीक, बिंब तथा छंद की गणना की जा सकती है।

शब्द शक्तियाँ तीन हैं -- अभिधा, लक्षणा, व्यंजना। **अभिधा** -- साक्षात् सांकेतिक गुण अथवा मुख्यार्थ का बोध कराती है। इसलिए ऐसे अवतरणों का अनुवाद प्रायः कठिन नहीं होता है। जब वाचक रूप शब्द अपने मुख्यार्थ से बाधित होने पर रूढ़ि अथवा प्रयोजन के कारण अपने मुख्यार्थ से संबद्ध किसी अन्य अर्थ का प्रतिपादन करने लगता है तब उसे **लक्षणा** शब्द-शक्ति या लाक्षणिक शब्द कहते हैं। उदाहरण के लिए,

है रिपोर्टों में कलेजा छप रहा--
देश के आला भवनों ने कहा

यहाँ कलेजा वस्तुतः देश की दुःखपूर्ण गाथा का सूचक है। ऐसे स्थलों पर अनुवाद कार्य अपेक्षाकृत कठिन होता है। मुहावरों तथा लोकोक्तियों का संबंध भी लक्षणा के साथ होता है। इसीलिए उनके अनुवाद में विशेष प्रयत्न अपेक्षित होता है। वस्तुतः लोकोक्तियों की जड़ें भाषा-विशेष के जीवन और संस्कृति में बहुत गहरी होती हैं। अतः जहाँ मुहावरों के अनुवाद के लिए समानार्थक उक्तियों का प्रयोग उचित होता है वहाँ काव्य के अनुवाद में भी समानार्थक उक्तियों का प्रयोग किया जाता है। उदाहरणार्थ : 'Killing two birds with one stone' – 'एक पंथ दो काज'

व्यंजना में व्यंग्य प्रधान होता है इसीलिए उसमें उपलब्ध अर्थ को व्यंग्यार्थ और उस शब्द को व्यंजक शब्द कहते हैं। यह व्यंग्यार्थ दो प्रकार का हो सकता है -- शब्दगत और अर्थगत। व्यंजक को हटाकर उसका पर्याय रख देने से व्यंजना का उद्देश्य ही विशृंखल हो जाता है। अतः व्यंजना का अनुवाद सबसे कठिन होता है।

अलंकार काव्य में शोभावर्धक धर्म है। सुमित्रानंदन पंत के शब्दों में -- ''अलंकार केवल वाणी की सजावट के लिए नहीं ये भाव की अभिव्यक्ति के विशेष द्वार हैं। भाषा की पुष्टि के लिए राग की परिपूर्णता के लिए आवश्यक उपादान हैं। वे वाणी के आचार, व्यवहार, रीति-नीति हैं, पृथक् स्थिति के, पृथक् स्वरूप और भिन्न-अवस्थाओं के भिन्न

चित्र हैं।'' इस उक्ति से काव्य में अलंकार की महत्ता सिद्ध हो जाती है। अलंकार तीन प्रकार के हैं -- शब्दालंकार, अर्थालंकार, उभयालंकार। शब्द को चमत्कृत करने वाले अलंकार **शब्दालंकार** कहलाते हैं। इनका (विशेषतया ध्वनि-सापेक्ष अलंकारों का) यथावत् अनुवाद कठिन होता है। **अर्थालंकार** अर्थ को चमत्कृत करने वाले होते हैं। वहाँ शब्द-चातुर्य शब्द अथवा ध्वनि-विशेष में निहित न होकर अर्थ-विशेष में निहित होता है। अर्थ का निर्वाह अनुवाद में सरल होता है।

प्रतीक और बिंब शैली के प्रसिद्ध आधार-तत्व हैं। वे जितने स्थूल होते हैं अनुवाद उतना ही सरल होता है। उनकी सूक्ष्मता बढ़ने के साथ-साथ अनुवाद की कठिनाइयाँ बढ़ती जाती हैं।

छंद कविता का अति महत्वपूर्ण अंग है। पंत के शब्दों में 'कविता का स्वभाव ही छंद में लयमान है।' डॉ. नगेन्द्र के शब्दों में 'छंद कविता का सहज वाहन है।' छंद का आशय ही अक्षर संरचना एवं क्रम, मात्रा, गति, यति आदि से नियोजित पद रचना है। छंद के आंतरिक तत्व हैं -- तुक और लय। छंद और तुक जहाँ भाषा के अलंकरण हैं, वहीं वे भाषा की स्वछंद गति में बाधक भी हैं। जहाँ भाषा और भाव एकाग्र होकर चलते हैं वहाँ शायद ये बातें कम अनुभव की जाती हैं। पर अनुवाद में छंद और तुक सबसे बड़ी बाधा उपस्थित करते हैं। इसीलिए काव्यानुवाद के रूप में एक प्रश्न यह भी उपस्थित होता है कि काव्यानुवाद छंदोबद्ध रचना में किया जाए, गद्य में किया जाए या इसके लिए किसी अन्य विकल्प की खोज की जाए? छंदोबद्ध रचना का अनुवाद यदि गद्य में किया जाता है तो इस प्रकार वह गद्यानुवाद काव्य के एक प्रधान अंग से ही वंचित हो जाता है और इसीलिए उसकी प्रभावशीलता पर बुरा प्रभाव पड़ता है। अनुवाद छंदोबद्ध रचना में करते समय अनेक प्रकार की स्थितियाँ सामने आती हैं। यदि लक्ष्य और स्रोत भाषाएँ सजातीय हैं तो यह संभव है कि लक्ष्य भाषा में मूल से मिलता-जुलता पर सहज पर्याय हो। उस अवस्था में छंदोबद्ध अनुवाद किया जा सकता है। इस प्रकार का छंद उपलब्ध न होने पर अनुवादक मूल से मिलते-जुलते छंद का प्रयोग कर सकता है और यह भी संभव न होने पर अपनी रुचि के अनुकूल उपयुक्त छंद का निर्धारण कर सकता है। इसीलिए निराला ने 'राम की शक्ति पूजा' आदि में मिल्टन की सघोष स्फीत लय योजना की और पंत ने अपनी कतिपय कविताओं में टेनिसन, स्विनबर्न जैसे कवियों की तरल-चपल लय योजना की ही अनुसर्जना की है। जैसा कि ऊपर कहा जा चुका है कि तुक और लय इस काव्य में पग-पग पर विघ्न उपस्थित करते हैं। प्रायः यह सुझाव भी दिया जाता है कि छंदोबद्ध रचना का अनुवाद ऐसे छंद में किया जाए जो छंद में संगीत आदि गुणों से समन्वित होकर यति, गति मात्राओं के बंधन से मुक्त हो। एक उदाहरण देखिए :

Dance there upon the shore;
What need have you to care
For wind or water's roar?

बच्चन ने अनुवाद इस प्रकार किया है :

नाचे जाओ सिंधु तीर पर
तुमको क्या परवाह
तरंगें और हवाएँ गरज रहीं।

शैली का **आंतरिक तत्व** है -- **साहित्यकार का व्यक्तित्व** और व्यक्तित्व का प्रतिरूप असंभव होता है। इसीलिए प्रायः यह कहा जाता है कि शैली अनुकरणातीत है। विश्व-साहित्य में एक भी अनुवाद ऐसा नहीं है जिसमें मूल की शैली का पूर्ण निरपेक्ष रूप में स्थानांतरण हो पाया हो। तथापि अनुवाद में **प्रतिभा** और **अध्यवसाय** के बल पर मूल शैली के निकट रहा जा सकता है।

निस्संदेह काव्यानुवाद बड़े जोखिम का काम है, इसके लिए कठोर मानसिक अनुशासन अपेक्षित होता है। अनुवादक को अपनी अनुभूतिगत एवं भाषागत सीमाओं के प्रति पूर्ण जागरूक रहकर उसमें प्रवृत्त होना चाहिए। जो भगीरथ (अनुवादक) सच्चे मन से (भाव) गंगा को एक (भाषा) लोक से दूसरे (भाषा) लोक में ले जाकर उसके (रसज्ञ) प्राणियों को अमृत-रस से परिप्लावित करने की साधना करता है, वह यदि आंशिक सफलता भी पा जाए अथवा सर्वथा असफल भी हो जाए तो भी उसकी साधना की गरिमा किसी तरह कम नहीं होती, उसे 'प्रवंचक' कहना सर्वथा अन्याय है। महान अनुष्ठान की असफलता भी अपनी गरिमा लिए रहती है। प्रेरणा शुभ हो तो साधना की महत्ता पर अविश्वास नहीं किया जा सकता। जो 'मरजीवा' (भाव) मणि के अन्वेषण के निमित्त सागर की अतल गहराइयों में पैठता है, उसका प्रयत्न भी हमारी प्रशंसा के योग्य होता है। 'काम नहीं परिणाम निरखने' की वृत्ति रस के साधक को, साहित्य-मर्मज्ञ को शोभा नहीं देती।

❑

रमेश चंद्र

काव्य का अनुवाद

''जहाँ न पहुँचे रवि, वहाँ पहुँचे कवि'' कहावत केवल कोरी कल्पना नहीं है, बल्कि यह कवि की कल्पना शक्ति एवं सृजनशीलता का निरूपण है। यह निरूपण कवि के कार्य के परिप्रेक्ष्य में जहाँ साक्षात् अनुभव है, वहाँ कवि के बौद्धिक ज्ञान एवं उसकी बिंबात्मक विधानपरकता को एक आयाम देता है। कवि का यह बिंब-विधान केवल कल्पना-आधारित न होकर उसके लोक अनुभव एवं बहुज्ञता पर टिका होता है। जब कवि के काव्यत्व की थाह पा लेना समान रूप से सृजनशील एवं बिंबशील व्यक्तित्व के वश की ही बात है, उसके कृत-कार्य का अनुवाद करना तथा उसमें वही भाव-प्रवाह एवं बिंबात्मकता लाना तो दूर की बात है। काव्य का अनुवाद गद्य का अनुवाद नहीं, जिसमें भाव-ग्रहण और भाव-संप्रेषण अपेक्षाकृत अधिक सुकर होता है। यूँ तो काव्यानुवाद गद्य में भी किया जा सकता है और गद्य को भी कवियों की कसौटी माना जाता है (गद्यं कविनाम् निकषम् वदंति), फिर भी एक भाषा के काव्य को दूसरी भाषा के काव्य में ढालना सृजनशील संसार में सर्वाधिक चुनौती भरा कार्य है। जो सृजक-श्रेष्ठ इस चुनौती को स्वीकार करने और उसे पूरा कर दिखाने में सक्षम होता है, वह निःसंदेह अकथ प्रतिभा एवं ज्ञान का धनी होता है। अनुवाद में सृजनात्मकता लाना एक तो वैसे ही दुष्कर है, दूसरे काव्यानुशीलन को अनुवाद-अनुशीलन (जो केवल अनुप्रेरणा की ही परिणति है) में परिणत करना किसी व्यक्ति की कल्पना को पहले अपनी कल्पना में प्रवेश कराना है और फिर उसे साधारणीकरण के माध्यम से पाठकों के दिलो-दिमाग में उतारना है। यह सारी प्रक्रिया सृजनात्मकता, कला, शिल्प एवं भाव-प्रवणता की माँग करती है और अच्छा अनुवाद वही है, जो स्वयं में भाव-प्रवण होकर पाठक को भी भाव-विभोर कर दे।

यहाँ काव्य के गद्य में अनुवाद की चर्चा करना हमारा उद्देश्य नहीं है, बल्कि पद्य को पद्य में बदलने पर चर्चा करना ही इस आलेख का प्रयोजन है। काव्य का काव्यात्मक

अनुवाद करते समय जहाँ भाव ग्रहण करने के लिए मूल भाषा की काव्यात्मक प्रवृत्तियों का सहज ज्ञान होना अनिवार्य है, वहाँ लक्ष्य भाषा में काव्य चेतना पर संपूर्ण अधिकार काव्यात्मक अनुवाद की पहली शर्त है। काव्यात्मक अनुवाद में यह देखना अनिवार्य होता है कि स्रोत भाषा के काव्य में किस छंद, शैली आदि का प्रयोग हुआ है, उसका देश-काल क्या है और लक्ष्य भाषा में उसके समकक्ष किस छंद, शैली का प्रयोग होना है और देश-काल का प्रयोग किस प्रकार होना है।

जैसे पानी में गिरी पानी की बूँद को पानी से अलग करना मुश्किल है, उसी प्रकार काव्य के शब्द से उसके अर्थ को वियोजित करना कठिन कार्य होता है।

सी. राजगोपालाचारी ने कहा है कि ''The rhythm and the other beauties of form when these are essential parts as in poetry can never be brought out in translation and consequently very beautiful things when translated become flat and stale. Rice is not the same as starch in powder form. Orange or mango juice or essence of roses or jasmine is not the same as an orange or a mango or a rose or a jasmine flower. The essence may be there but the beauty of the fruit and the flower is not reporoduced in the translated substance.'' पाश्चात्य विद्वानों ने तो काव्यानुवाद के बारे में इससे भी बढ़कर कहा है। विक्टर ह्यूगो ने कहा था कि ''काव्य के अनुवाद का विचार ही 'विवेक शून्य' और 'असाध्य' है।'' डॉ. जॉनसन का कहना था कि ''काव्य को अनूदित नहीं किया जा सकता। कविता का अनुवाद निःसंदेह ज्यादा कठिन है। कविता में भाषा का प्रयोग बिलकुल भिन्न रूप में होता है। शब्दों से जो संस्कारजन्य गूँज उठती है, वही कविता को जन्म देती है, शब्द नहीं। वह भाषा की भी भाषा होती है। फिर लय और छंद के साँचे भी सूक्ष्म, सुकोमल प्रभावों की सृष्टि करते हैं। इनको एक भाषा से दूसरी भाषा में किस प्रकार रूपांतरित किया जा सकता है?''

काव्यानुवाद के काव्य की भाषा के बारे में आचार्य दंडी ने कहा है कि ''काव्य में अत्यल्प दोष की भी उपेक्षा नही करनी चाहिए, क्योंकि यह काव्य को उसी प्रकार कुरूप बना देता है, जिस प्रकार सुंदर शरीर को कुष्ठ रोग का एक भी दाग कुरूप बना देता है।'' दाँते ने काव्य को दैवी प्रसाद एवं प्रेरणाजन्य कृति मानते हुए कहा है कि इसे अन्य भाषा में अनूदित नहीं किया जा सकता। यदि किया भी जाए, तो मूल अंश का माधुर्य एवं रचना-सौष्ठव समाप्त होता है। रोमान याकोबसन का कहना है कि अनूदित न होना ही कविता की परिभाषा में अनुस्यूत है। टिटलर का कथन है कि संवेदनशील कविता का गद्य में अनुवाद करने का प्रयास अत्यंत अर्थशून्य तथा भावशून्य ही कहा जाएगा। इस कठिनता को ध्यान में रखते हुए ही गिरा के अर्थ को जल बिचि सम कहा गया। ऐसे और भी अनेक कथन हैं जो काव्य का अनुवाद संभव

ही नहीं मानते और वॉल्टेयर ने तो यहाँ तक कहा है कि ''कविता का अनुवाद उसी प्रकार असंभव है जिस प्रकार संगीत का अनुवाद।'' परंतु अनेक विद्वान ऐसे भी हैं जो असंभव को संभव करने में ही अपने कर्म की इतिश्री मानते हैं। मिलन यामिनी में यही तो कहा गया है --

जो असंभव है उसी पर आँख मेरी।
चाहती होना अमर मृत राख मेरी।।

ह्यू केनर का भी विचार है कि अत्यधिक मूर्त कविता में कुछ ऐसा अंश होता है कि उसका अनुवाद किया जा सकता है। फिट्जेराल्ड ने उमर खैयाम की रूबाइयों का अनुवाद करके इसी बिंब विधान एवं सृजनशीलता की पुष्टि की। उन्होंने कहा कि ''एक मरे हुए गिद्ध की जगह जिंदा गोरैया रखना ज्यादा अच्छा है।'' इस जिंदा पक्षी रूपी काव्य में जीवन ही नहीं, जीवंतता भी अनिवार्य है।

काव्य किसी स्थान या जाति विशेष, उसके ह्रास-विकास एवं संघर्ष की जानकारी है। वह उसकी भौगोलिक स्थिति, चेतन तथा अवचेतन मन से परिचित कराती है। समाज विशेष की सामाजार्थिक, सांस्कृतिक, राजनैतिक गतिविधियाँ कवि के माध्यम से ही मुखरित होती हैं।

काव्य अनुवाद की प्रकृति जानने से पहले काव्य का प्रयोजन जान लिया जाए, तो कुछ बातें अपने आप स्पष्ट हो जाएँगी। मम्मट के अनुसार, काव्य का प्रयोजन परमानंद की सद्य अनुभूति है। कुछ अन्य प्रयोजनों में व्यवहार ज्ञान, अर्थ एवं यश की प्राप्ति, अमंगल का निवारण, भावनाओं का विरेचन, मनोरंजन, सदाचार की शिक्षा आदि शामिल हैं। इससे यह बात स्पष्ट होती है कि काव्य पढ़ने से काव्य के पाठक को आनंद की प्राप्ति होती है। काव्यानुवाद से भी यही आनंद की प्राप्ति होनी अनिवार्य है अन्यथा इसका कोई प्रयोजन नहीं रह जाता। काव्य का शब्द संवेदना को जगाता है और वह भाषा को नया रूप, नई छवि एवं नया आयाम देते हुए चलता है। काव्य में ऐसे भी अनेक अवसर आते हैं, जब अर्थ का शब्द से सीधा संबंध भी नहीं होता। इस प्रकार यह भाव-प्रधान होता है। अतः काव्यानुवाद में काव्य के भाव की रक्षा करना परम ध्येय होता है। व्यंग्य एवं हास्य काव्यों में तो अलग ही प्रकार की काव्यात्मकता होती है, हालाँकि इसे दूसरे दर्जे की काव्यात्मकता माना जाता है, फिर भी अनुवाद की दृष्टि से यह अत्यंत जटिल होता है। काव्य में शब्दों के कोशीय समतुल्य भले ही मिल जाएँ, ध्वनि के स्तर पर समतुल्यता मिलना आसान नहीं है। ऐसी स्थिति में ऐसे शब्दों का प्रयोग करना पड़ सकता है, जो काव्य के रूपक को ही खंडित कर दें और तब काव्य, काव्य ही नहीं रह जाएगा और न ही यह काव्यात्मकता को साकार कर सकेगा।

काव्य का शब्द केवल अर्थवाहक ही नहीं होता, बल्कि उसमें एक ध्वनि और एक लय होती है। साथ ही काव्य के सौंदर्य और उसके महत्त्व के मूल में शब्द नहीं, बल्कि शब्द में व्याप्त भाव, रस और संगीतात्मकता होते हैं। उदाहरणार्थ *''बीती विभावरी, जाग री। अंबर पनघट पर डूबा रही ताराघट उषा नागरी।''* के *''रजनी बीती, रश्मि पनघट पर भरती पानी।''* अनुवाद के समकक्ष रस निष्पत्ति नहीं होती। एक ही वृक्ष पर खिले हुए दो फूल भी समान रूप से मनमोहक नहीं होते, अलग-अलग हृदयों और कंठों से निकली वाणी तो निश्चय ही अलग होगी। इसलिए काव्यानुवाद में यह देखना होता है कि शब्दों के साथ ज्यादती हो तो हो, भावों के साथ न हो।

ये बातें थीं काव्यानुवाद में काव्य के विशिष्ट तत्त्वों की रक्षा करने के संबंध में। देश-काल का भी ध्यानपूर्वक प्रयोग करना और उसकी रक्षा करना उच्च-स्तरीय बुद्धिजीविता का प्रमाण होता है। उदाहरण के तौर पर भूमध्य रेखा पर गर्मी की भयावहता को तो किसी भी प्रकार रूपायित किया जा सकता है, परंतु यदि यूरोप की गर्मी के वर्णन में वहाँ भीषण लू का वर्णन कर दिया जाए, तो वह अनुवाद के कोरे किताबी ज्ञान से बढ़कर कुछ नहीं होगा, क्योंकि यूरोप की गर्मी भारत की सर्दी से भी अधिक ठंडी होती है।

कव्यानुवाद खतरों से भरा कार्य होता है, जिसमें सराहना की बजाय आलोचना ज्यादा संभावित होती है। कविता एक जीवंत इकाई होती है और उसके अनुवाद के लिए उसकी जीवंतता को पहचानना ज्यादा जरूरी होता है। कविता में कवि एक गहन दृष्टि लेकर चलता है। वह उसमें थोड़े से थोड़े शब्दों का प्रयोग करता है। अतः कविता का अनुवाद करने से पूर्व यह जरूरी होता है कि उसे बार-बार पढ़ कर, समझ कर उसकी गूँजों, उसके वातावरण, उसकी मनःस्थिति से एकाकार किया जाए और जब वह अपनी रचना जैसी लगने लगे, तो उसकी पुनर्रचना की जाए। काव्य में प्रस्तुत का अप्रस्तुत रूप में और विलोमतः संकेतन होता है। इसलिए इसमें प्रतीक सशक्त साधन के रूप में काम करते हैं। अतः प्रतीकों का अंतरण करते समय सूक्ष्म आंतरिक मनोभाव और अभिव्यंजना के प्रयोग को ध्यान में रखना चाहिए। रूपात्मक काव्य तो प्रायः पूर्ण रूप से प्रतीकात्मक होता है। अतः इसमें अनुवादक का दायित्व और भी बढ़ जाता है।

सही काव्यानुवाद वही होता है, जो पाठक के हृदय में स्वयंमेव उतर आए। सर विलियम जोंस ने कहा है कि एक भाषा के कवित्व को किसी तरह भी दूसरी भाषा में उतारना एक शीशी के इत्र को दूसरी शीशी में उँड़ेलने जैसा होगा। जिस तरह एक शीशी के इत्र को दूसरी शीशी में यूँ का यूँ उँड़ेलने पर भी पहली शीशी में कुछ न कुछ इत्र लगा ही रह जाता है, उसी प्रकार काव्य का काव्यात्मक अनुवाद करने पर

उसमें छंद, पद, शैली, रस-निष्पत्ति, साधारणीकरण, भाव प्रवाह, देश-काल आदि की दृष्टि से कुछ न कुछ छूट जाता है और पूर्ण अनुवाद की स्थिति प्राप्त करना उसी प्रकार कठिन कार्य होता है, जिस प्रकार तलवार की धार पर संतुलन बनाए रखना।

ऐसी स्थिति में अत्यधिक दक्ष अनुवादक द्वारा भी अपने अनुवाद में मूल का-सा, शिल्प एवं कलात्मक सौंदर्य लाना असंभव होता है। काव्य के अनुवादक में पर्याप्त सृजन-क्षमता होनी आवश्यक है। इसमें मूल के बिंब-विधान को रूपायित करने वाली उपयुक्त शब्दावली का चयन करना होता है तथा चाक्षुष, ध्वनिक एवं अन्य प्रभावों को लुप्त होने से बचाना होता है। स्रोत भाषा में चाहे जिस किसी बिंब से भी काम लिया गया हो, अनुवाद में मूल का सौंदर्य सदा अक्षुण्ण रखना होता है। इसमें पाठ सामग्री की पृष्ठीय दृश्यावली, कवि के मनोभावों, भौगोलिक पृष्ठभूमि तथा सांस्कृतिक छटाओं का मूल के अनुसार संपूर्णता से वर्णन करना होता है। काव्य जीवन के सत्य का रूपायन होता है, अतः अनुवादक को अपने अनुवाद में अधिकतम पूर्णता लानी आवश्यक है।

फिर भी यह मानकर चलना जरूरी है कि अनुवाद मूल नहीं, बल्कि मूल का अनुवाद है और कुछ अपवादों को छोड़कर वह मूल के निकटतम ही होता हे। वह कभी मूल हो भी नहीं सकता, क्योंकि वह मूल की अभिव्यक्ति मात्र होता है और दो भिन्न-भिन्न हृदयों की अनुभूति होता है। यूँ भी हर भाषा में संकेत, प्रतीक, बिंब आदि समान नहीं होते। मूल संदर्भ की कल्पना मूल भाषा के प्रतीकों, संकेतों और संदर्भों पर आधारित होती है। अनुवाद में प्रतीकों, संकेतों और बिंबों का अनुवाद की बजाय अंतरण होता है और यह अंतरण अनुवादक की जानकारी के भंडार एवं सृजनात्मकता पर निर्भर करता है।

यूँ अनुवाद में मूल पाठ के शब्दों के अर्थ के समतुल्य अर्थ वाले शब्द का प्रयोग किया जाता है और शब्द का अर्थ शब्दकोश में मिल जाने के कारण ऊपरी तौर पर यह एक आसान कार्य लग सकता है, परंतु अर्थ की भी सांस्कृतिक, भौगोलिक एवं ऐतिहासिक पृष्ठभूमियाँ होती हैं। ये पृष्ठभूमियाँ हर भाषा में अलग-अलग होती हैं। इस प्रकार अनुवाद में कोशीय अर्थों से प्रसंगानुसार अर्थ का चयन भी करना पड़ता है। दूसरे, काव्य में केवल अभिधार्थ से काम न चलने से लक्षणा एवं व्यंजना का भी प्रयोग किया जाता है। इन्हीं का विकास प्रतीकों एवं मिथकों के रूप में हो जाता है, जो हर देश के धर्म, इतिहास, संस्कृति से जुड़े रहते हैं। उदाहरणार्थ 'वीनस', 'एचीलस', 'जुडास', 'वाटरलू' क्रमशः 'सौंदर्य', 'शक्ति', 'धोखेबाज' और 'पराजय' के प्रतीक हैं। भारतीय परिप्रेक्ष्य में इन्हें इन्हीं अर्थों में ग्रहण नहीं किया जाता, बल्कि इनकी जगह क्रमशः 'मन्मय', 'भीम', 'शकुनि', 'कुरूक्षेत्र' प्रतीकों का प्रयोग किया जाता है। इसी प्रकार भारतीय परंपरा

के 'मंगल-सूत्र', 'हवन' आदि प्रतीक और 'क्रियमाण', 'मोक्ष' आदि संकल्पनाएँ विदेशों में भारतीय परिप्रेक्ष्य के अनुसार ग्रहण नहीं किए जाते। इनके अतिरिक्त, काव्यानुवाद में अलंकार और छंद आदि पर भी ध्यान देना अनिवार्य होता है। परंतु मूल और लक्ष्य दोनों भाषाओं में ये समतुल्यता की स्थिति में न पाए जाने के कारण इनके अंतरण में भी कठिनाई होती है।

काव्यात्मक अनुवाद की प्रभावशीलता को देखने के लिए अब कुछ उदाहरण दिए जा रहे हैं :

Tumultuous grandeur crowds the blazing square,
The rattling chariots clash, the torches glare.

—from "The Deserted Village" by Oliver Goldsmith.

काव्यानुवाद

चकाचौंध युक्त चौक बीच तहँ होत कुलाहल।
खड़खड़ गाड़ी लड़त जरत पँखा सा झलमल।।

--श्रीधर पाठक की 'ऊजड़ ग्राम' नामक पुस्तक से।

इस अनुवाद में मूल पाठ की ध्वन्यात्मकता बरकरार रखी गई है।

उमर खैयाम की रूबाइयों का फिट्जेराल्ड ने अच्छा अंग्रेजी अनुवाद किया है :

Awake ! for Morning in the Bowl of Night.
Has flung the Stone that puts the Stars to Flight:
And Lo ! the Hunter of the East has caught.
The Sultan's Turret in a Noose of Light.

हिंदी के विभिन्न लेखकों ने इस अंग्रेजी अनुवाद के कई अनुवाद किए, जिनमें से तीन निम्नानुसार हैं :

पहला अनुवाद (मैथिलीशरण गुप्त)

उठो, उषा ने रात्रि-पात्र में, अरुण उपल निक्षेप किया।
ऋक्ष-पक्षियों को जिसने है, नभः क्षेत्र से उड़ा दिया।।
और पूर्व के जालिक रवि ने वह ऊँचा शाही मीनार।
देखो कोटि-कोटि किरणों के फँदे में है फाँस लिया।।

दूसरा अनुवाद (डॉ. हरिवंशराय बच्चन)

उषा ने फेंका रवि-पाषाण, निषा-भाजन में, जल्दी जाग,
प्रिए! देखो पा यह संकेत, गए कैसे तारक दल भाग
और देखो तो उठकर, प्राण, अहेरी ने पूरब के लाल,
फँसा ली सुलतानी मीनार, बिछा कैसा किरणों का जाल।।

तीसरा अनुवाद (श्री सुमित्रानंदन पंत)

रे जागो, बीती स्वप्न रात
मदिरारूण लोचन तरूण प्रात
करती प्राची से पलक पात।
अंबर घट से साकी हँसकर
लो ढाल रहा, हाला भूपर,
चेतन हो उठा सुरा पीकर,
स्वर्णित शाही मीनार शिखर।

हालाँकि प्रत्येक अनुवादक ने मूल को बड़ी अच्छी तरह निरूपित किया है, फिर भी अंतिम अनुवाद मूल के ज्यादा निकट जान पड़ता है।

उपर्युक्त विश्लेषण से यह देखने में आता है कि काव्य का अनुवाद अपने आप में एक जटिल कार्य है और यह कार्य करते समय अनुवादक को बहुत सावधानी से काम लेना चाहिए। काव्य के अनुवादक को अनुवाद में निम्नलिखित बातों पर ध्यान देने से यह कार्य सुकर हो सकता है :

1. अनुवाद का प्रकार : अनुवादक अनूद्य काव्य की शैली, छंद, विषय आदि का ध्यान रखे और उसी के अनुसार अनुवाद के उपर्युक्त प्रकार, शैली आदि का चयन करे।

2. बोलियाँ : अनुवादक मूल भाषा से तो आमतौर पर परिचित होता ही है, तभी तो वह अनुवाद-कार्य हाथ में लेता है, परंतु कई बार वह उसकी बोलियों से पूरी तरह परिचित नहीं होता। किसी बोली में लिखी सामग्री की तो अलग बात है, मूल सामग्री का लेखक अनेक बार मानक भाषा में अपनी बोलियों के शब्दों और अभिव्यक्तियों को भी शामिल कर लेता है। अतः अनुवादक इस बात का ध्यान रखे कि वह इनका अनुवाद करने से पहले इनके बारे में पूरी जानकारी हासिल करे।

3. विशेष शब्दों का प्रयोग : बहुत से लेखक अपनी रचनाओं में विशेष प्रकार की शब्दावली का प्रयोग करते हैं। उदाहरणार्थ प्रेमचंद के साहित्य में ग्रामीण शब्दावली एवं लोकोक्तियों की भरमार है, जयशंकर प्रसाद की शैली संस्कृतनिष्ठ है। इसी प्रकार किसी मुस्लिम हिंदी साहित्यकार की रचना में उर्दू शब्दों का और मराठी साहित्यकार की रचना में मराठी शब्दों का समावेश हो सकता है। अतः अनुवादक अनुवाद करने से पूर्व इस विशिष्ट शब्दावली का सही अर्थ जानने का भी प्रयास करे।

4. शैली : प्रत्येक कृतिकार की अपनी एक शैली होती है। कई सृजनधर्मियों की पहचान तो उनकी शैली से ही हो जाती है। वैज्ञानिक साहित्य में न तो शैली होती है, न ही इसका कोई महत्त्व होता है, परंतु साहित्यिक अनुवाद में लेखकीय शैली का

ध्यान रखना और उसमें उसी शैली अथवा उससे मिलती-जुलती शैली का अंतरण बहुत आवश्यक होता है। अतः अनुवादक अनुवाद के समय शैली पर भी समुचित ध्यान दे।

5. संस्कृति : प्रत्येक समाज की अपनी संस्कृति होती है और वह उसकी भाषा में पूरी तरह झलकती है, परंतु यह आवश्यक नहीं होता कि हर समाज की संस्कृति अलग हो। जब स्रोत भाषा में सांस्कृतिक तत्त्व समाहित हों, तब अनुवाद में एक तरह से एक संस्कृति का दूसरी संस्कृति में अंतरण ही करना होता है। अनुवाद करते समय अनुवादक को इन सांस्कृतिक तत्त्वों के अंतरण की तरफ पर्याप्त ध्यान देना चाहिए।

6. समतुल्यता : कई बार लेखक अपने सांस्कृतिक एवं सामाजिक क्रियाकलापों को विशेष शब्दों (यथा यज्ञोपवीत, कुआँ पूजन आदि) के माध्यम से ही प्रकट करता है। अनुवादक इस बात के लिए सतर्क रहे कि ऐसे शब्दों के पर्याय वह तभी लिखे, जब वे समतुल्यता की दृष्टि से पूर्णतया सटीक हों, अथवा अनुवाद में उनका लिप्यंतरण ही कर दे।

7. साहित्यिक विधान : हर भाषा में काव्य, कहानी, नाटक आदि कई विधाएँ होती हैं और हर विधा में कई-कई उपविधाएँ हो सकती हैं। उदाहरण के तौर पर काव्य छंद, गीत, दोहा, चौपाई, मुक्तक, साखी, कवित्व, सवैया आदि में से किसी में भी लिखा जा सकता है। कहानी, नाटक, उपन्यास आदि की कोई भी शैली हो सकती है। स्रोत भाषा के ये विधान लक्ष्य भाषा के विधानों से मेल ही खाएँ, ऐसा जरूरी नहीं। अतः अनुवादक को अनुवाद से पहले निकटतम विकल्प ढूँढ़ लेना चाहिए।

8. साहित्यिक युक्तियाँ : साहित्य में मुहावरों, लोकोक्तियों, उपमाओं, रूपकों, प्रतीकों आदि का प्रयोग होता है। कई बार स्रोत भाषा में ऐसी समतुल्य युक्तियाँ नहीं मिलतीं। अनुवादक को चाहिए कि वह अनुवाद में इनका विधान करने का भी प्रयास करे। यदि ऐसा संभव न हो सके तो निकटतम अर्थ वाली युक्तियों का प्रयोग करना चाहिए।

❑

डॉ. सरोजनी प्रीतम

हसिकाओं के अनुवाद : स्वानुभूतियाँ

कविताओं के अनुवाद की यात्रा-कथा वस्तुतः अत्यंत रोचक है, विशेष रूप से हास्य की ये छोटी कविताएँ तो स्वयं ही दो-चार पंक्तियों में सिमटी-सिमटी सी रहती हैं। इनका अनुवाद करने के दौरान हर कदम पर अर्थ गायब हो जाता है, व्यंग्य सिर छुपाता है और हास्य की मुद्रा विद्रूप होने लगती है। सच कहें तो अनुवाद करते-करते कविता ही लुप्त होने लगती है। अन्य भाषाओं में जब हसिकाओं के अनुवाद हुए (यथा नेपाली, सिंधी, गुजराती तथा पंजाबी में) तो मैंने देखा कि हसिकाओं के साथ पूरा न्याय हुआ है। परंतु जब अंग्रेजी के एक-दो व्यक्तियों ने अनुवाद किए तो जाने क्या खटकता रहा। इसी से सोचा अंग्रेजी में स्वयं ही अनुवाद कर डालूँ और इसी अनुवाद के क्रम में मैंने अंग्रेजी में अनेक नई मिनी कविताएँ भी लिख डाली हैं, जिनका हिंदी रूपांतरण करना स्वयं मेरे लिए भी कठिन हो गया, यथा :

(1)
Knowledge is power
And due to load shedding
In the town
Power is on the
Verge of breakdown

(2)
I used to have
many fans
Oh now I am
lonely,
All those fans
turned to be
Exhaust fans only

लेकिन अनुवाद करने का प्रयास मेरे लिए एक तरह से वरदान सिद्ध हुआ और मुझे अंग्रेजी में लिखने की अपनी क्षमता का भी कुछ आभास हुआ।

फिर मैंने हिंदी के अनेकानेक शब्दों के मुकाबले में अंग्रेजी के शब्दों को तौलना शुरू किया ताकि कविता की लय ताल न बिगड़े, उसमें तुक और लय वैसा ही रहे।

इसके लिए शब्दों की कोई तालिका नहीं बनानी पड़ती। अनेक शब्द अनायास ही ध्यान में आ जाते हैं। लेकिन कई बार कितना ही सिर धुनो अनुकूल शब्द नहीं मिलते, शब्दों में भी यदि पचास ग्राम, सौ ग्राम के बाट से तौलकर रखे जाने वाला सिलसिला होता तो शायद कविता में दुविधा न रहती। हिंदी में जो अक्षर हैं वही अंग्रेजी में लैटर हैं और यदि मैं यह कहूँ कि Love में four letters हैं तो उसका शाब्दिक अनुवाद होगा -- 'प्यार' में 'चार चिट्ठियाँ हैं।'

हास्य तो वैसे भी कहीं स्थितियों के वैषम्य से उपजता है तो कहीं चमत्कारपूर्ण उक्तियों और कहीं श्लेष तथा अन्योक्ति का लेखा-जोखा होता है। ऐसे में हास्य के हास्यास्पद अनुवाद तो अनेक हो सकते हैं किंतु उसके साथ न्याय तो कोई न्यायमूर्ति ही कर सकता है। मैं अपनी कई अत्यंत लोकप्रिय हसिकाओं के अंग्रेजी में अनुवाद स्वयं नहीं कर सकी। यदि निम्न कविताओं का कोई कर सके तो मुझे हार्दिक प्रसन्नता होगी, यथा :

(1)
उन्हें खेद था
जिनके तलवे चाटे
उनके तलवों में भी छेद था।

(2)
त्रिशंकु व प्रेमी की
गति समान
दोनों को अधर में
रहने का उन्मान

(3)
वेणीसंहार पढ़कर
उन्होंने इतने से शब्द कहे
'न चोटी रही
न चोटी के वर्णन रहे'

शब्दों को चुनकर, उन्हें परिष्कृत-परिमार्जित करके, उनकी क्षमताएँ और सामर्थ्य देखकर, किसमें कितना पानी है यह जानकर ही उन्हें प्रयोग किया जाए तो कहीं कुछ नियम है नहीं। कवि अपनी अभिव्यक्ति के लिए कुछ नया भी गढ़ सकता है। लेकिन अनुवाद के समय उनकी यही मौलिकता आड़े आती है। 'दिल' शब्द के साथ 'हृदय', 'मन', जोड़ देने पर भी 'दिल' जैसी खूबसूरती इन शब्दों में नहीं। इधर अंग्रेजी के 'Heart', 'Mind' आदि में 'Heart' का प्रयोग ज्यादा खूबसूरत है (अपना-अपना दृष्टिकोण है) लेकिन उनके 'हार्ट' में प्रत्यारोपण आदि की प्रक्रिया आज इतनी प्रमुख है कि कई बार जब हार्ट लब से लबालब भर जाता है तो मुझे लगता है कि कहीं किसी अस्पताल से अब यह खाली करवाकर पुनः भरा जाएगा। इसी तरह से हमारा 'पत्थर' शब्द अंग्रेजी

के 'stone' से कहीं ज्यादा कठोर लगता है क्योंकि stone में एक टोन दृष्टिगत होती है जबकि हमारा पत्थर तो बस पत्थर ही है -- इसका 'शिलान्यास' कर दीजिए, तो शिला बनकर ऐसा लगता है जैसे उसके तले कहीं अहिल्या की कोमल भावना जुड़ी हो। अतः 'शिला' में मुझे जड़ता तो अनुभव होती है किंतु 'पत्थर' की कठोरता नहीं। सच कहूँ तो मेरे पूर्वाग्रह ही मेरे अनुवाद की कठिनाइयाँ और रोड़े बनते रहे हैं।

यहाँ मैं नमूने के तौर पर कुछ अपने किए अनुवाद प्रस्तुत कर रही हूँ :

मार्ग दर्शन
प्यार अंधा होता है इसीलिए
नेत्रदान कीजिए।

Donate
Love is blind
Donate eyes
For the benefit of mankind

वोल्टेज
उसके थाऊजेंड वॉट्स के बल्ब-सी
जगमगाती आँखें
बुझी-बुझी पाकर
उन्होंने पूछा, कहो क्या गम है?
दबे स्वर में बोली वह --
लोड अधिक है, वोल्टेज कम है

Voltage
Her eyes used to glitter
Like thousand watts bulb
But in the night –
He found her uneasy
She confessed
Load is more
Voltage is less.

प्रजातंत्र
विदेश से लौटे प्रेमी से बोली वो
तुम पाँच साल में
जरा भी नहीं बदले हो
तो हँसकर उन्होंने इतनी सी बात कही

प्रेमी हूँ तुम्हारा -- सरकार तो नहीं

Democracy
He came back after five years
And proposed to marry
Her eyes lit,
She told him. You have not
Changed a bit."
He laughed and said
'I am your fiance
And not Democracy.'

याद
तुम्हारी याद तड़पाने लगी
तुम्हारी हँसी

Smile
Whenever I am lonely
Your Smiles

किसी टूथपेस्ट कंपनी के
विज्ञापनों की याद दिलाने लगी

Remind me of toothpaste
ad's only.

चंदा

भवन निर्माण के लिए
चंदा देते समय छात्रों से बोले वो
चरित्र निर्माण के लिए भी चंदा माँग लो
उद्धत युवकों ने हँसकर कहा
'ऐसी चीजें आपके पास कहाँ?'

Lacking

They asked for donations
For school building
A wealthy man said
"I may tell you
Take donation for
Character Building too."

Student started laughing
Then (and said)
"How can we ask for that
Which is lacking in you."

❑

डॉ. नीलिमा सिंह

'Translation' कविता के तीन अनुवादों पर एक दृष्टि

मूल कविता की संप्रेषणीयता में यदि अनुवादक की उपस्थिति बाधा न बने तो उसे कविता का सफल अनुवाद कहना चाहिए। कविता के भाव-सौंदर्य और शिल्प को इस प्रकार सुरक्षित रखना पड़ता है कि वह अनूदित होकर भी मौलिक कविता ही दिखे। यह काम बहुत आसान नहीं है।

'अनुवाद' पत्रिका के अप्रैल-जून 1984 के अंक संख्या 39 में मॉरिन सोरेनसेन की एक रूमानियाई कविता का अंग्रेजी अनुवाद छपा है जिसका तीन व्यक्तियों ने तीन तरह से भाषांतर किया है। इन अनुवादों को देखकर यह स्पष्ट हो जाता है कि अनुवादक कहाँ और क्यों अटक जाता है?

यदि मुझे इसी कविता का चौथा अनुवाद करना होगा तो मेरे अनुवाद की प्रक्रिया संभवतः कुछ भिन्न होगी।

मेरा पहला काम होगा इस कविता के मूल कथ्य को हृदयंगम करना। इसके बाद मैं प्रयत्न करूँगी कि इसकी व्यंजनाओं तथा इसके भाषा-प्रवाह को अपने शब्दों में उतारकर ऐसी कविता लिखूँ जिसमें मूल कविता के बिंब अधिकतम स्पष्ट होकर उभरें।

इस कविता के वस्तुतः तीन चरण हैं। पहले चरण में कवि कहता है कि उसे स्वयं अपना अनुवाद मनुष्य से वनमानुष के रूप में करना है, वह भी ऐसी भाषा में जो मृत हो चुकी है। मनुष्य का चूँकि अपने आदिम रूप से संपर्क टूट चुका है अतः उस रूप में स्वयं को देखना एक कठिन परीक्षा देने जैसा है।

दूसरे चरण में कवि कहता है कि जब तक वह वन की व्याख्या करता रहा तब तक यह काम आसान नजर आया, किंतु जैसे-जैसे वह जड़ से चेतन की ओर बढ़ा, उसे कठिनाई होने लगी। जड़-प्रकृति और चेतन मनुष्य में सामंजस्य हो सकता है किंतु

चेतन पाश्विकता और चेतन मानवीयता के बीच गहरी विषमता है।

तीसरे चरण में वह कहता है कि मनुष्य और वनमानुष के बाह्य लक्षणों में तो साम्य मिल गया, किंतु हृदय की व्याख्या करते समय उसकी लेखनी हिल गई और कागज पर रोशनी का चकत्ता छलक आया जिसने उसके लेखक को ढक दिया। यह रोशनी मानवीय चेतना की प्रतीक है। इसके छलक जाने की बात साभिप्राय कही गई है।

कवि कहता है कि मनुष्य और वनमानुष के हृदय में कहीं कोई साम्य न देख पाने पर भी उसने दोनों के वक्ष पर उगे बालों में एक-दूसरे का पर्याय खोज निकाला, किंतु हृदय से भी बड़ी चीज है आत्मा। वहाँ पहुँचकर वह सर्वथा निरुपाय हो गया और उसने पराजय स्वीकार कर ली।

इस मूल संवेद्य को दृष्टि में रखकर मैंने तीनों अनुवादों को पुनः देखा। मुझे लगा कि तीनों में कुछ-न-कुछ कमी रह गई है। कविता का पहला चरण इस प्रकार है :

I was sitting in an exam / In a dead language / And I had to translate myself / Form man into ape.

पहले अनुवाद में, ''मुझे अनुवाद करना था एक मृत भाषा'' तथा तीसरे में, ''मुझे परिवर्तित होकर मानव से वानर बनना पड़ा'', ये दोनों अंश कवि के मंतव्य को प्रकट नहीं करते। पहली बात, कवि को मृत भाषा का अनुवाद नहीं करना था। उसका कहना है कि, ''And I had to translate myself''। दूसरी बात, उसके सामने मानव से वानर बनने की विवशता नहीं है। विवशता है मृत भाषा में अनुवाद करने की, जिस बात की वह परीक्षा देने बैठा है। तीसरी बात, मनुष्य का आदिम पूर्वज वनमानुष है, वानर नहीं। ''मनुष्य के वनमानुष'' कहने में जो उक्ति-चमत्कार उत्पन्न होता है वह ''Man into ape'' की अपेक्षा अधिक प्रभावशाली है।

यदि मैं अनुवाद करूँ तो उसका रूप होगा -- मैं / परीक्षा देने बैठा था / एक मृत भाषा में अनुवाद करना था -- अपना मनुष्य से वनमानुष के रूप में।

कवि का दूसरा चरण इस प्रकार है :

I played it cool , First translating a text. From a forest. But the translation got harder. As I drew nearer to myself.

इसके पहले अनुवाद में लिखा है -- (मैंने) अनुवाद करना शुरू किया / मूल पाठ को उसके जंगल से। दूसरे अनुवादक ने लिखा -- ''सहजता से कर गया अनुवाद / पहले, जंगलों के पाठ का।'' और तीसरे अनुवादक ने लिखा है -- मूल पाठ का / जो एक जंगल था / अनुवाद किया।

मुझे लगता है कि पूरे पाठ को ही जंगल मान लेना ठीक नहीं। जंगल उसका एक अंग मात्र है।

मैंने इस प्रकार अनुवाद किया :

मैं / संयत रहा / पहले-पहल / जंगल का भाषांतर करना सुगम भी था / किंतु / ज्यों-ज्यों मैं अपने निकट लाने लगा / अनुवाद / कठिनतर होता गया।

कविता का तीसरा चरण कुछ लंबा है :

With some effort / I found, however, satisfactory equivalents / For nails and the hair on the feet / Around the kness / I started to stammer / Towards the heart my hand began to shake / And blotted the paper with light / Still, I tried to patch it up / With the hair of the chest, But utterly failed / At the soul.

पहले अनुवाद में ''With Some effort, I found however'' यह अंश छोड़ दिया गया है जबकि यह कवि की निरंतर तीव्र होती हुई हताशा को प्रकट करता है।

दूसरा अनुवादक कहता है -- ''पग, बाल, नख / सम्यक समानक हो सके उपलंभ / कुछ आयास कर।''

यहाँ वनमानुष के पंजे पर उगे नाखूनों और बालों का बिंब ''पग, बाल, नख'' लिख देने से स्पष्ट नहीं होता। अनुवादक की भाषा भी यहाँ कुछ क्लिष्ट हो गई है। 'सम्यक समानक' के स्थान पर पहले और दूसरे अनुवाद का 'संतोषजनक पर्याय' ठीक लगता है।

''Still, I tried to patch it up.'' का पहला अनुवाद है -- ''फिर भी कोशिश नहीं छोड़ी मैंने / छाती पर उगे बालों तक।'' यह अनुवाद कविता के मूल अर्थ को बाधित करता है। कवि की कोशिश क्या थी? यह बात इन पंक्तियों में खो गई है।

दूसरा अनुवाद है -- ''फिर भी, किया / प्रयास पूरा हो सके रूपांतर / वक्ष के रोएँ बनाकर।'' यह अनुवाद मूल अर्थ के निकट है किंतु वक्ष के रोएँ बनाने की बात वहाँ नहीं कही गई है। अंग्रेजी का मुहावरा ''To patch up'' कवि की असमर्थता को ज्यादा गहराई से संप्रेषित कर रहा है।

मेरा अनुवाद इससे भिन्न है --

थोड़ा-सा प्रयास किया / और जैसे-तैसे / मुझे वनमानुष के पंजे पर स्थित / नाखूनों और बालों के / संतोषजनक पर्याय / मिल गए, / किंतु घुटनों तक आया / कि मेरे शब्द अटकने लगे / हृदय की हद पर / हथेली काँप गई / और कागज पर / रोशनी का चकत्ता छलक आया --

फिर भी / कोशिश करता रहा / कि वक्ष पर उगे बालों के / उल्लेख से काम चला लूँ / अंत में / आत्मा पर पहुँचा / और बुरी तरह / परास्त हो गया मैं।

❑

डॉ. अजित कुमार

काव्यानुवाद और युग की चेतना

अनुवाद की दृष्टि से हिंदी को निस्संदेह भारत की सबसे विकसित भाषा माना जा सकता है। ऐसा नहीं कि हिंदी में यह कोई ठेठ आधुनिक प्रवृत्ति हो। आरंभ से ही इस भाषा में अनुवाद होते रहे। अंतर केवल यह आया कि पहले जहाँ अनुवाद अधिकतर संस्कृत और अंग्रेजी से हुए थे, वहाँ समयानुक्रम में भाषाओं का दायरा बढ़ता गया, बांग्ला आदि उत्तर भारतीय भाषाओं की ओर बढ़ने के बाद, आज स्थिति यह है कि देश-विदेश की अगणित भाषाओं की ओर हिंदी अनुवाद के लिए हाथ पसारने लगी है। स्वाभाविक है कि साहित्यिक उद्देश्यों के साथ-साथ, राष्ट्रीय एकता-अखंडता की उपलब्धि और व्यापक विश्व-बोध की प्राप्ति जैसे उद्देश्य भी इन प्रयासों में घुल-मिल गए हैं।

विशुद्ध अनुवाद के कोण से देखें तो हिंदी के बहुत से मध्ययुगीन काव्य तथा काव्यशास्त्र को मूलतः अनुवाद ही कहना-जानना पड़ेगा। सर्वविदित है कि हिंदी का अधिकांश रीतिशास्त्र और काफी कुछ भक्तिकाव्य, रीतिकाव्य तथा नीतिकाव्य संस्कृत-प्राकृत से या तो सीधे-सीधे उठा लिया गया है या पूरी तरह से प्रभावित है। सूरदास की रचना का तो प्रसिद्ध स्रोत श्रीमद्भागवत था ही, खोजियों ने तुलसीदास द्वारा संकेतित 'नाना पुराण निगमागम' की छानबीन कर, यहाँ तक प्रमाणित कर देना चाहा है कि इस कवि में ऐसा कुछ भी नहीं, जो उनका बिलकुल अपना कहा जा सके।

बहरहाल, यहाँ हमारा उद्देश्य न तो यह बताना है कि हिंदी के अनेक मध्ययुगीन कवि शुद्ध अनुवादक थे, न हम यही कह रहे हैं कि वेद-उपनिषद-पुराण-रामायण-महाभारत की प्रेरणा से रचना-कर्म में प्रवृत्त हमारे अनेक आधुनिक कवि अशुद्ध अनुवादक हैं। फिलहाल तो हम यही मानकर चलें कि मौलिक कृति की भाँति प्रस्तुत रचना सर्जनात्मक होती है और अनूदित कृति की भाँति प्रस्तुत रचना अनुवादात्मक होती है। यह बात अलग है कि पहली वाली कुछ कृतियों में अनुवाद की गंध मिले और बाद वाली कुछ

कृतियों में सृजनात्मक संस्पर्श हो। मुख्य अंतर यह है कि मौलिक कृति का प्रथम संदर्भ स्वयं वह कृति होती है, जबकि अनुवाद का प्रथम संदर्भ होता है -- वह मूल रचना, जो अनुवाद के लिए चुनी गई हो।

अगली कठिनाई या असुविधा का एक पक्ष यह है कि जहाँ रचना के एक मूलपाठ या अंतिम पाठ पर हम टिक पाते हैं, वहाँ उसके अनेक अनुवाद, एक के बाद एक होते और लगातार होते रह सकते हैं। दूसरे शब्दों में, यह कहना बहुत गलत न होगा कि एक बार पूरी हो गई रचना अपने अनुवादकों के माध्यम से विभिन्न अनुवादकों द्वारा बारंबार लिखी जाती है। शायद इसीलिए भाषाओं में अनुवादवाची अनेक शब्द होते हैं। हमारी अपनी भाषा की टीका, व्याख्या, भाष्य, छाया, गूँज, अनुगूँज, अनुकृति, भावानुवाद, शब्दानुवाद, रूपांतरण, देशांतरण, कालांतरण, व्यक्तित्त्वांतरण आदि अनुवाद की इसी भूमिका की ओर संकेत करते हैं।

यही वह परिप्रेक्ष्य है जिसमें आधुनिक काल में हिंदी तथा अन्य भारतीय भाषाओं के कुछ काव्यानुवादों का उल्लेख यहाँ प्रासंगिक होगा। यह अकारण या आकस्मिक न था कि राष्ट्रीय स्वाधीनता संघर्ष के दौरान जिन ग्रंथों ने हमारे अनुवादकों को विशेष रूप से आकर्षित किया उनमें से कुछ प्रमुख थे -- गीता, मेघदूत, भर्तृहरि शतक, शेक्सपियर की त्रासदियाँ, शकुंतला और उमर खैयाम की रुबाइयाँ।

कहना अनावश्यक है कि इनके अतिरिक्त भी असंख्य कृतियों के अनुवाद हुए थे और स्वाधीनता प्राप्ति के बाद के वर्षों में तो अनुवाद का क्षेत्र बहुत ही विस्तृत हो गया -- हाल के वर्षों में दिखा है कि लातीनी अमरीकी, अफ्रीकी और समग्र रूप से तथाकथित तीसरी दुनिया के लेखन में साहित्यकारों, अनुवादकों एवं पाठकों की रुचि विशेष रूप से बढ़ी है, अवश्य ही इसके पीछे भावात्मक और राजनीतिक कारण होंगे।

लेकिन स्वाधीनतापूर्व जिस कालावधि में ऊपर गिनाई कृतियों के अनुवाद राष्ट्रीय आशाओं-आकांक्षाओं की ही नहीं हमारी सर्जनात्मक आवश्यकताओं की भी पूर्ति के प्रतीक बने। यह इस तथ्य से प्रमाणित होता है कि इस अवधि में इन कृतियों के दर्जनों अनुवाद तथा भाष्य हिंदी और अन्य भारतीय भाषाओं में हुए। तिलक, गांधी, विनोबा, अरविंद, राधाकृष्णन, श्रीकृष्ण प्रेम आदि अगणित व्यक्तियों ने गीता की टीका और व्याख्या की। मैथिलीशरण गुप्त, सुमित्रानंदन पंत, केशवप्रसाद पाठक, रघुवंशलाल गुप्त, बच्चन आदि कितने ही कवियों ने 'रुबाइयात ऑफ उमर खैयाम' के अनुवाद प्रस्तुत किए। ठीक इसी तरह, भर्तृहरि के शतकों, शेक्सपियर की त्रासदियों तथा कालिदास के 'शाकुंतलम्' और 'मेघदूत' को भी समझने-समझाने में अनेक महानुभाव प्रवृत्त हुए थे। यहाँ यह बताना है कि उन्नीसवीं सदी के भारतीय तथा हिंदी प्रदेशीय नव-जागरण ने कुछ कृतियों को

अत्यंत प्रासंगिक और महत्त्वपूर्ण बना दिया था।

जहाँ 'मेघदूत' के माध्यम से भारतवासियों के लिए अपने देश की प्राकृतिक सुषमा को एक बार फिर पहचानना संभव हुआ था और जीवन के रंग-अनुराग का नवसंचार हुआ था, वहाँ 'गीता' ने अनासक्ति, कर्म-कर्त्तव्य, तप-संयम आदि से संबद्ध भारतीय जीवन-मूल्यों के प्रति संघर्षशील जन-मानस की निष्ठा बढ़ाई थी। 'रुबाइयात' की मस्ती और बेफिक्री ने जहाँ आजादी के दीवानों को त्याग और बलिदान के पथ पर आगे बढ़ाया था, वहीं उमर खैयाम की रचना में विद्यमान पीड़ा, वेदना और हताशा भी स्वाधीनता-आंदोलन की बार-बार की विफलताओं के साथ घुल-मिल सी गई थी। शेक्सपियर की त्रासदियाँ यदि जीवन की जटिल भयावहता और निरीह व्यर्थता का परिचय देकर भारतीय मन को यथार्थ की ठोस भूमि पर टिकने की आदत डलवा रही थी तो 'अभिज्ञान शाकुंतलम्' ने बाधाओं-विपत्तियों के बावजूद प्रेम, दाम्पत्य, परिवार और संस्कार के प्रति भारतीय निष्ठा के ठेठ आदर्शवादी आधार को पुनः सुदृढ़ बनाया था। इसी क्रम में भर्तृहरि के शृंगार, वैराग्य तथा नीति शतकों ने जीवन के विभिन्न पक्षों से और उनकी परिपूर्णता से हमें परिचित कराया था।

बीसवीं सदी के पूर्वार्ध में जिन कृतियों ने हिंदी अनुवादकों को प्रेरित एवं आकर्षित किया उनकी गुणवत्ता या प्रभावोपादकता का विवेचन यहाँ अपेक्षित नहीं है। लेकिन इसमें कोई संदेह नहीं कि एक चुनौती भरे वक्त में अनुवाद-कर्म ने, अन्य अनेक राष्ट्रीय कर्मों, संकल्पों के साथ जुड़कर, देश के आत्म-साक्षात्कार में जो योग दिया था, उसके महत्त्व को ज्यादा अच्छी तरह समझ सकते हैं। अनुवादकों के जरिए, तब हमें अपने आपको और अपनी मान्यताओं को, देश और विश्व को तथा मानव-चरित्र और मानवीय नियति को जाँचने-परखने में कई बार, कई तरह से मदद मिली थी। पिछली शताब्दी का पूर्वार्ध, अनुवाद के वास्ते पुस्तकों के चयन के विचार से एक अद्‌भुत युग था।

ठीक यही बात पिछली शताब्दी के उत्तरार्ध के बारे में, शायद नहीं कही जा सकती। इधर कुछ वर्षों में गीता की कोई उल्लेखनीय व्याख्या हुई हो, ऐसा याद नहीं आता। संस्थाओं, परीक्षाओं, प्रवचनों, फुटपाथों के जरिए 'गीता' का व्यवसाय अलबत्ता बढ़ा होगा लेकिन पुनर्जागरण वाली उन्नीसवीं सदी के बाद, सतत् जागरण वाली जिस सदी में हम पहुँचे हैं, उससे जूझने की तरकीब गीता में से निकालकर कोई टीकाकार हमें क्यों नहीं बताता, इस प्रश्न का कोई स्पष्ट उत्तर मेरे पास नहीं है। उल्टे, यह प्रश्न और तीखा होकर मन में आ जुड़ा है कि वर्तमान स्थितियों पर सार्थक टिप्पणियाँ कर सकने वाली अन्य पुस्तकें अनुवाद के लिए क्यों नहीं खोजी जा सकीं?

❑

डॉ. बीना श्रीवास्तव

काव्यानुवाद की समस्याएँ

आधुनिक युग ज्ञान-विज्ञान के प्रसार एवं विकास का युग है। जिस प्रकार किसी देश की वैज्ञानिक प्रगति से अन्य देशवासी लाभान्वित होते हैं, उसी प्रकार किसी भाषा की साहित्यिक उपलब्धि से अन्य भाषा-भाषी भी परिचित होना चाहते हैं। लेकिन दूसरी भाषा के ज्ञान का अभाव यहाँ बाधक बनता है। इसके लिए अनुवाद 'सेतु' का काम करता है। इसके माध्यम से आज भाषा के अजनबीपन को तोड़ने का प्रयत्न किया जा रहा है। लेकिन इसका विषय-क्षेत्र इतना व्यापक है कि इसकी प्रकृति और प्रकार्य के विषय में विद्वानों में पर्याप्त मतभेद पाया जाता है।

एक वर्ग इसे कला की कोटि में रखता है (Theodore Savory) क्योंकि वह यह मानता है कि अनुवाद एक पुनःसर्जना है, जबकि दूसरा वर्ग इसे विज्ञान की कोटि में मानता है (Eugene A. Naida) क्योंकि उसके अनुसार अनुवाद मूल पाठ के विश्लेषण से अपनी प्रक्रिया शुरू करता है और उससे प्राप्त संकेतार्थ को दूसरी भाषा में आबद्ध करने के लिए संश्लेषणात्मक प्रक्रिया का सहारा लेता है। इस दूसरे वर्ग के मानने वालों का यह मत है कि अनुवाद प्रक्रिया में लगभग वे ही जटिल तकनीक अपनाए जाते हैं जो तुलनात्मक भाषाविज्ञान में (R.W. Jumplet)। कुछ विद्वान ऐसे भी है जो इसे मात्र कौशल तक सीमित रखते हैं, (Eric Jacobson) क्योंकि इनके अनुसार अनुवाद अपनी प्रकृति में अनुप्रयोगपरक होता है। अनुवाद के क्षेत्र की विविधता को देखते हुए एक वर्ग ऐसा भी है जो इसे कला और विज्ञान के संधि-स्थल पर स्वीकार करता है (Horst Frenz) क्योंकि इनके मत में अनुवाद एक ओर विश्लेषणात्मक (विकोडीकरण) और संश्लेषणात्मक (कोडीकरण) की प्रक्रिया को लेकर चलता है और दूसरी तरफ साहित्यकार की पुनःसर्जना की प्रक्रिया की भी अपेक्षा रखता है।

वस्तुतः विद्वानों में जो मत-वैभन्न दिखाई देता है उसका मूल कारण है -- अनुवाद

के क्षेत्र की व्यापकता और उसमें अपनाई जाने वाली प्रक्रिया की विविधता। इसमें एक ओर मूल सामग्री के रूप में साहित्य जैसे सर्जनात्मक पाठ लिए जा सकते हैं तो दूसरी ओर विज्ञान द्वारा प्रमाणित और तर्क-सिद्ध पाठ भी। इसी प्रकार हम अनुवादक से कभी उसकी सर्जनात्मक प्रतिभा की अपेक्षा रखते हुए उसके व्यतित्व के प्रक्षेपण को स्वीकार कर लेते हैं और कभी शत-प्रतिशत अनुकरण की प्रवृत्ति को प्रोत्साहित करते हुए उससे व्यक्तित्व-निरपेक्ष संक्रिया की अपेक्षा रखते हैं।

अनुवाद को लेकर दिखाई देने वाली विचारों की यह विविधता न केवल अनुवाद की प्रकृति को समझने में कठिनाई उत्पन्न करती है वरन् उसके उद्देश्य पर भी प्रश्न-चिह्न लगाती है। यह प्रश्न काव्यानुवाद के संदर्भ में और भी जटिल बन जाता है, क्योंकि किसी कविता के अनुवाद के लक्ष्य एवं उद्देश्य पर कई दृष्टियों से विचार किया जा सकता है। उदाहरण के लिए, यदि यह मान लिया जाए कि अनुवाद अनुकरणमूलक कौशल है, तब अनुवादक के लिए यह आवश्यक हो जाता है कि वह मूल पाठ या अनुकरणात्मक प्रक्रिया के आधार पर अनूदित भाषा में, बिना अपनी ओर से कुछ जोड़े प्रस्तुत करे। लेकिन यदि विचार यह हो कि अनुवाद सर्जनात्मक प्रक्रिया का परिणाम है तब अनुवादक के लिए आवश्यक हो जाता है कि वह मूल पाठ के भाव और शिल्प (कथ्य और अभिव्यक्ति) को ग्रहण करते हुए अनूदित भाषा से उसकी पुनःसर्जना करे। अधिकांश काव्यानुवाद को पुनःसर्जना के रूप में स्वीकार करते हैं। पुनःसर्जना की धारणा यदि मान्य हो तब भी कार्यान्वयन की प्रक्रिया अपने से सुलझ नहीं जाती, क्योंकि कोई भी कृति (कविता) एक संश्लिष्ट रचना होती है। वह रचना अपने भाव, रंग और अभिव्यक्ति आदि की विशिष्टता से मुक्त नहीं होती और किसी भी सार्थक रचना में अभिव्यक्ति का रूप अपने कथ्य के वैशिष्ट्य से प्रभावित हुए बिना नहीं रह सकता। यहाँ प्रश्न यह उठता है कि अनुवाद में जब एक भाषा से दूसरी भाषा में रूपांतरण/स्थानांतरण के सिद्धांत को अपनाया जाता है तब अनुवादक कथ्य और अभिव्यक्ति में से किसे अधिक महत्त्व दे अथवा अपना ध्यान किस पर केंद्रित करे? काव्यानुवाद के संदर्भ में यह प्रश्न और भी महत्त्वपूर्ण हो जाता है, क्योंकि अनुवादक, अनुवाद-प्रक्रिया के पहले चरण में मूल पाठ का मात्र पाठक होता है। पाठक के रूप में उसे प्रतिपाद्य कथ्य -- मूल पाठ (स्रोत भाषा में लिखित पाठ) -- को संश्लिष्ट रूप में ग्रहण करना पड़ता है। अपने दूसरे चरण में अनुवादक सर्जक भी होता है, क्योंकि वह मूल पाठ के काव्यार्थ को अनूदित भाषा में संप्रेषित करने की महत्त्पूर्ण भूमिका अपनाता है। ऐसा करते समय उसे काव्यार्थ की मौलिकता के निर्वाह के लिए लक्ष्य भाषा में हर स्तर पर अन्वेषण करना पड़ता है। यहाँ इस कथ्य की ओर संकेत देना आवश्यक है कि मूल भाषा में

लिपटी साहित्यिक संवेदना अपनी प्रकृति में इतनी विशिष्ट होती है कि उसका दूसरी भाषा में अंतरण प्रायः असंभव सा होता है। इस असंभव कार्य को अधिक से अधिक संभव बनाने के लिए अनुवादक को कवि धर्म के कठिन दायित्व का निर्वाह करना पड़ता है। इसी तथ्य को ध्यान में रखकर प्रसिद्ध कवि एज़रा पाउंड ने अनुवाद को 'साहित्यिक पुनर्जीवन' (Literary resurrection) कहा है। काव्यानुवाद की इस संपूर्ण प्रक्रिया को निम्नलिखित आरेख द्वारा समझा जा सकता है--

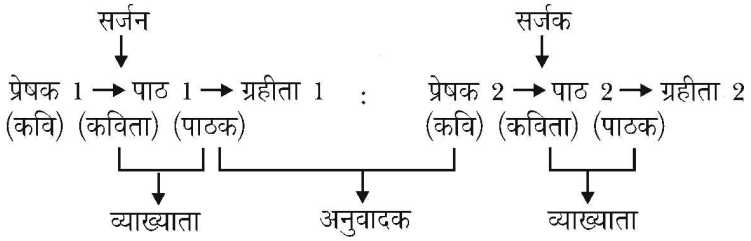

उपरोक्त आरेख से यह बात स्पष्ट है कि अनुवादक दो भूमिकाओं का निर्वाह करता है -- स्रोत भाषा में रचित पाठ (मूल कविता) के व्याख्याता पाठक की भूमिका और लक्ष्य भाषा में रचित पाठ (अनूदित कविता) के सर्जक की भूमिका। यह तथ्य भी ध्यान देने योग्य है कि साहित्यिक कृति का व्याख्याता पाठक अपने व्यापार में निष्क्रिय नहीं होता। पाठ का अर्थ ग्रहण करते समय उसमें अर्थ भरता चलता है। पर जो बात यहाँ सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण है, वह है स्रोत भाषा में रचित सर्जनात्मक पाठ को उनके संश्लिष्ट रूप में ग्रहण करना। साहित्यिक कृति के रूप में पाठ की अपनी विशिष्ट एवं संश्लिष्ट प्रकृति होती है। यहाँ भाषा के सभी आयाम (नाद-योजना, छंद-विधान, शब्द-चयन, वाक्य-विन्यास, अलंकार-विधान आदि) उस पाठ के मूल भाव के संवर्धन की दिशा में प्रवृत्त रहते हैं। अतः व्याख्याता पाठक से अपेक्षा तो यही रहती है कि वह अखंड (संपूर्ण) रूप से पाठ को ग्रहण करे लेकिन सामान्यतया पाठक किसी न किसी दृष्टि विशेष के आधार पर ही पाठ को ग्रहण करता है। प्रसिद्ध रूसी विद्वान् लौटमैन के अनुसार पाठ ग्रहण करने की दृष्टि को ध्यान में रखते हुए इसके निम्नलिखित चार वर्ग बनाए जा सकते हैं :

1. विषय प्रधान दृष्टि : इसमें अनुवादक की दृष्टि कविता की विषय-वस्तु पर केंद्रित रहती है। उसका मुख्य लक्ष्य होता है -- स्रोत भाषा की काव्य-कृति की विषय-वस्तु को लक्ष्य भाषा की कृति में संप्रेषित करना।

2. संरचना प्रधान दृष्टि : इसमें अनुवादक की दृष्टि काव्य की संरचना पर केंद्रित रहती है। इसमें उसका लक्ष्य होता है -- कविता की इकाइयों के परस्पर संबंधों पर

बल देते हुए उनका विश्लेषण और संश्लेषण करना तथा संघटनात्मक बनावट के आधार पर काव्यानुवाद प्रस्तुत करना।

3. भाषिक प्रधान दृष्टि : इसमें अनुवादक की दृष्टि कविता की भाषिक विशेषताओं पर केंद्रित रहती है यथा -- छंद-योजना, शब्द-चमत्कार, अलंकार-व्यवस्था आदि। अनुवाद करते समय उनकी दृष्टि भाषा-व्यवस्था के किसी एक स्तर पर सापेक्षतया अधिक केंद्रित रहती है। यथा -- ध्वनि-स्तर, शब्द-स्तर, वाक्य-विन्यास स्तर आदि।

4. साहित्येतर संदेश प्रधान दृष्टि : इसमें अनुवादक की दृष्टि कविता के काव्य संदेश की अपेक्षा साहित्येतर संदेश पर केंद्रित रहती है। वह मूल कविता के भीतर के धार्मिक, मनोवैज्ञानिक, समाजवैज्ञानिक आदि तत्त्वों को अनूदित कविता में संप्रेषित करने पर अधिक बल देता है।

अनुवादक जब संश्लिष्ट पाठ के किसी एक पक्ष पर बल देते हुए अनुवाद करता है तब उसकी इस प्रवृत्ति के आधार पर भी काव्यानुवाद का वर्गीकरण संभव है। लेफेवेर ने काव्यानुवाद के निम्नलिखित प्रकार बतलाए हैं :

1. स्वनिमिक अनुवाद (Phonemic translation) : इसमें अनुवादक स्रोत भाषा की कविता की ध्वनि को लक्ष्य भाषा की रचना में संप्रेषित करता है। ऐसा करते समय वह मूल कविता में निहित काव्यार्थ का मात्र अन्वयांतर करता चलता है, पर अनुवाद में प्रधानता ध्वनि-व्यवस्था की रहती है।

2. शाब्दिक अनुवाद (Literal translation) : इसमें अनुवादक स्रोत भाषा की कविता में प्रयुक्त शब्दों का शब्द-प्रतिशब्द अनुवाद प्रस्तुत करता है, जिसके फलस्वरूप मूल कविता का भाव-सौंदर्य, अर्थ व्यंजना एवं वाक्य-विन्यास अनूदित कविता में खंडित हो जाते हैं।

3. छांदिक अनुवाद (Metrical translation) : इसमें अनुवादक स्रोत भाषा की कविता में प्रयुक्त छंद योजना को अनूदित रचना में रूपांतरित करने के लिए आवश्यकता से अधिक सजग रहता है। इससे कभी-कभी अनूदित रचना एक तमाशा-सा बनकर रह जाती है।

4. कविता का गद्यानुवाद (Poetry into Prose) : इसमें अनुवादक की दृष्टि मुख्य रूप से कविता के अर्थ-पक्ष पर रहती है। दूसरे शब्दों में कहें तो इस विधि में स्रोत भाषा की कविता का रूपांतरण लक्ष्य भाषा के गद्य में किया जाता है। इसे भी संपूर्ण रूप से उचित अनुवाद नहीं कहा जा सकता लेकिन शाब्दिक और छांदिक अनुवाद से निश्चित रूप से इसका स्तर ऊँचा है।

5. तुकबंदीपरक अनुवाद (Rhymed translation) : इसमें अनुवादक स्रोत भाषा

में प्रयुक्त छंद-योजना के साथ-साथ तुकबंदी को भी अनुदित रचना में स्थान देता है।

6. मुक्त-छंदपरक अनुवाद (Blank Verse translation) : इस प्रकार के अनुवाद में अनुवादक मूल कविता की संरचना तथा लय, यति आदि का बंधन स्वीकार करता है लेकिन उसकी छंद-योजना का अविकल अनुकरण नहीं करता।

7. पुनर्व्याख्यात्मक अनुवाद (Interpretation) : इसमें अनुवादक मूल कविता का कथ्य सुरक्षित रखते हुए, उसके रूप को परिवर्तित कर अनूदित कविता का अपने ढंग से सृजन करता है। कई विद्वान इसे अनुवाद की कोटि में इसलिए नहीं रखते, क्योंकि इसमें अनुवादक मूल कविता की रूप-रचना का कोई भी बंधन स्वीकार नहीं करता और उसे मात्र अपनी कविता के लिए हेतु बनाता है।

वस्तुतः काव्यानुवाद के अंतर्गत पुनःसृजन की प्रक्रिया महत्त्वपूर्ण है। इसके लिए कविता की मूल संवेदना की संप्रेषणीयता पर ध्यान देना चाहिए। इसमें स्रोत भाषा में कवि द्वारा अभिव्यक्त विचारों, भावों एवं संवेदनाओं की रक्षा करते हुए कविता के पुनःसृजन पर बल देना चाहिए। यहाँ यह प्रश्न उठता है कि सभी काव्यानुवादों के लिए क्या समान रूप से पुनःसर्जना का सिद्धांत उपयोगी हो सकता है? क्या विभिन्न कवियों की वर्णन शैली या रचना-विधि भिन्न अनुवाद-विधि की मांग नहीं करती? क्या एक ही मापदंड के अनुसार सभी प्रकार की कविताओं का अनुवाद प्रस्तुत किया जा सकता है? उदाहरण के लिए, यदि मैथिलीशरण गुप्त तथा जयशंकर प्रसाद की कविताओं का अनुवाद करना हो तो क्या उनकी रचना शैली की भिन्नता भिन्न प्रकार की प्रक्रिया की मांग नहीं करती?

यहाँ एक प्रश्न और उठता है कि जब एक भाषा से दूसरी भाषा में कविता का अनुवाद किया जाता है तब क्या अनूदित कविता एक नई रचना नहीं बन जाती? क्या उसकी भाव-प्रवणता, संवेदना और अर्थ, लक्ष्य भाषा में भी वही रहते हैं, जो स्रोत भाषा में थे? मेरे विचार से उसमें अर्थ, भाव और संवेदना का सूक्ष्म अंतर अवश्य आ जाता है, चाहे अनुवादक अपनी ही कविता का अनुवाद क्यों न प्रस्तुत कर रहा हो। यहाँ उदाहरण के लिए अज्ञेय की एक कविता -- ''मैंने देखा, एक बूँद' को देखा जा सकता है, जिसका अनुवाद उन्होंने स्वयं अंग्रेजी में किया है :

मैंने देखा एक बूँद	**I Saw a Drop**
मैंने देखा	I Saw
एक बूँद सहसा	A drop suddenly
उछली सागर के झाग से :	Fly from the scud of the sea
रँगी गई क्षण भर	Flare for a second

ढलते सूरज की आग से।	Fire from the mellowing sun !
मुझको दीख गया :	So there, I thought,
सूने विराट के सम्मुख	Against the wall of emptiness
हर आलोक-छुआ अपनापन	This light-shot one
हे उन्मोचन	Has found release
नश्वरता के दाग से!	From being blurred to nothing.

यहाँ अनूदित कविता का सर्जक अनुवादक भी वही है जो मूल कविता का सर्जक कवि। अतः जहाँ तक अनुवादक के पाठक व्याख्याता की भूमिका का प्रश्न है उसमें दुराव की संभावना नहीं है। मूल और अनूदित -- दोनों ही पाठ के कवि अज्ञेय हैं। अतः यदि इन दोनों कविताओं की काव्य-वस्तु में कोई अंतर आया है तो उसका आधार या तो स्रोत और लक्ष्य भाषा का वैशिष्ट्य है या फिर अनुवादक की अनुवाद संबंधी अपनी सीमा। दोनों रचनाओं की तुलना करने पर उनके बीच पाई जने वाली समानता और असमानता सामने उभर आती है।

समानता के स्तर पर देखें तो (1) दोनों में दो पद हैं; और (2) दोनों में हर पद में पाँच पक्तियाँ हैं। इस तरह हम देख सकते हैं कि अपनी बाहरी रूप-रेखा में दोनों में पर्याप्त प्रभाव साम्य है, किंतु यदि कविता के नाद-सौंदर्य, संरचनात्मक विशिष्टता, शब्द-संस्कार और काव्यार्थ प्रतीक पर ध्यान दें तो इनके बीच पाई जाने वाली **विभिन्नता** स्पष्ट हो जाती है। यह विभिन्नता ही वैशिष्ट्य भी है। इन पर क्रमशः चर्चा इस प्रकार है :

1. नाद सौंदर्य : मूल कविता में पहली दो पंक्तियों का अंत ऽ (गुरु) अक्षर के साथ होता है, जहाँ दोनों पंक्तियों के अंतिम शब्द की मात्रा चार है... **देखा... सहसा**। इसी प्रकार तीसरी और पाँचवीं पंक्तियों में ध्वनि संबंधी समनांतरता देखी जा सकती है, जिसका आधार है -- ।।ऽ ऽ।। ऽऽ।ऽ अर्थात् पंद्रह मात्राएँ और दस वर्ण हैं। दसवीं पंक्ति में शब्दांत की प्रकृति पहली और तीसरी पंक्ति के साथ समानांतरता लिए हुए है। यथा --**'के झाग से', 'की आग से', 'के दाग से'।** पहली और दूसरी पंक्ति की तरह आठवीं और नवीं पंक्ति का शब्दांत (लघु) अक्षर के साथ होता है। दोनों पंक्तियों के अंतिम शब्द की मात्रा छः है -- **अपनापन... उन्मोचन।** ध्वनि के धरातल पर पाई जाने वाली ऐसी कोई भी समानांतरता अंग्रेजी अनुवाद में नहीं दिखाई देती। अगर कुछ है तो वह तीसरी, चौथी और पाँचवीं पंक्ति के प्रारंभ में 'F' (फ) व्यंजन की आवृत्ति है।

2. संरचनात्मक विशिष्टता : हर भाषा की अपनी संरचनात्मक विशिष्टता होती

है, जिसका सर्जनात्मक प्रयोग कवि करता है। कभी-कभी एक भाषा से दूसरी भाषा में अनुवाद करते समय भाषा की संरचनात्मक विशिष्टता बाधक बन जाती है। उदाहरण के लिए यदि मूल कविता के शीर्षक को ही लें -- **'मैंने देखा, एक बूँद',** तब उसमें हिंदी भाषा की पदक्रम व्यवस्था का अत्यंत प्रभावी रूप से सर्जनात्मक प्रयोग मिलता है। हिंदी की सामान्य वाक्य संरचना कर्त्ता+कर्म+क्रिया की क्रम व्यवस्था पर आधारित होती है। संभावना के रूप में वक्ता के दृष्टिकोण के आधार पर इस क्रम व्यवस्था की बदलने की पूरी छूट हिंदी में है। हम कह सकते हैं -- एक बूँद, मैंने देखा (कर्म+कर्त्ता+क्रिया) या मैंने देखा, एक बूँद (कर्त्ता+कर्म+क्रिया)। इस अंतिम रूप में प्रतिफलित शीर्षक वस्तुतः विधेय -- 'एक बूँद देखा' से कर्म को काटकर उसे अलग स्तर पर प्रक्षेपित करता है। देखने की पूरी प्रक्रिया से बूँद को हटाकर उसे एक अलग स्वतंत्र अस्तित्व प्रदान करने के लिए कवि ने दो अन्य संरचनात्मक उपकरणों का सहारा लिया है। पहला उपकरण है अर्ध-विराम का प्रयोग और दूसरा उपकरण है कर्म और क्रिया की अन्विति का खंडन। ध्यान देने की बात है कि सामान्य वाक्य में 'ने' युक्त संरचना, क्रिया की अन्विति कर्म के साथ करता है और चूँकि 'बूँद' स्त्रीलिंग है इसलिए सामान्य वाक्य होना चाहिए था -- मैंने एक बूँद देखी, पर शीर्षक में क्रिया पुल्लिंग रूप में है अतः 'मैंने एक बूँद देखी' के साथ न जुड़कर यह संरचना का एक नया आयाम उत्पन्न करता है -- 'मैंने देखा (कि) एक बूँद (है)'।

इसका अंग्रेजी अनुवाद -- 'I saw a drop' बूँद के स्वतंत्र अस्तित्व की ओर संकेत नहीं दे पाता। इसका मुख्य कारण यह है कि अंग्रेजी भाषा की संरचना सामान्यतः कर्त्ता+क्रिया+कर्म पर आधारित होती है और उसमें पदों का स्थान परिवर्तन उतना मुक्त नहीं होता, जितना कि हिंदी में। अंग्रेजी में A drop I saw (कर्म+कर्त्ता+क्रिया) संभव है, लेकिन इसमें एक बूँद की न तो स्वतंत्र सत्ता का भाव आता है और न वह मूल हिंदी के उस संरचनात्मक अर्थ को व्यक्त करने में समर्थ होता है -- मैंने देखा (कि) एक बूँद (है)। परिणामतः अंग्रेजी अनुवाद में मूल कविता के संप्रेषण अर्थ का जो बल 'एक बूँद' पर पड़ना चाहिए था, वह इस अनुवाद में लुप्त-प्राय सा है।

इसी प्रकार हिंदी कविता में वाक्य है -- 'मुझको दीख गया', जिसका अंग्रेजी में अनुवाद किया गया है -- 'So there, I thought'। मूल कविता में दिया गया वाक्य कर्म वाच्य में है, जिसमें 'मैं' के कर्त्तव्य का लोप है और जहाँ बूँद की विशिष्टता को अपने आप दिख जाने का भाव है, वहाँ अंग्रेजी अनुवाद में 'मैं' के कर्तृत्व पर बल है, क्योंकि वह कर्तृवाच्य में है। दो भाषाओं की संरचनागत विभिन्नता किस प्रकार कविता के सूक्ष्म अर्थ, भाव दृष्टि आदि में दुराव पैदा कर अंत ला देती है, इसे ऊपर के उदाहरण

के आधार पर समझा जा सकता है।

3. शब्द संस्कार : किसी भाषा में शब्द अपनी आर्थी प्रकृति में बहुस्तरीय होते हैं और अपनी अर्थ की सीमा में बँधकर वे विशिष्ट होते हैं। उदाहरण के लिए मूल कविता में दिए गए शब्द -- 'उछली', 'रंग' और 'ढलने' आदि के क्रमशः अंग्रेजी स्पांतरण 'Fly', 'Flare', और 'mellowing' पर ध्यान दें।

'उछलना' शब्द में वस्तु के ऊपर आने का ही भाव नहीं है वरन् गेंद की तरह ऊपर जाकर नीचे आने का भी भाव है। कोई भी वस्तु ऊपर जाती है तो गुरुत्वाकर्षण के कारण नीचे आने की नियति से भी बँधी होती है। मूल कविता में बूँद अपने अलग अस्तित्व के लिए सागर से छिटक कर ऊपर उठती तो है लेकिन वह 'उछलती' है 'उड़ती नहीं', क्योंकि 'उछलना' सागर में फिर से लौटकर आने की उसकी नियति की ओर भी संकेत करता है। अंग्रेजी अनुवाद में इस तथ्य की ओर संकेत नहीं मिलता।

इसी प्रकार 'रंगना' शब्द से बूँद के रंजित होने का भाव है, जो एक विशिष्ट परिस्थिति में ही संभव है। इस बूँद की क्षणिकता के लिए 'क्षण भर' क्रिया विशेषण का प्रयोग किया गया है। अतः 'बूँद' मूल कविता में दो आयाम लेती है -- गुणात्मक (रंगना) और परिमाणात्मक (क्षण भर)। अंग्रेजी कविता में 'Flare' शब्द का प्रयोग मिलता है, जिसका आयाम केवल परिमाणात्मक है क्योंकि वह भी तड़ित-सा चमक कर -- का भाव देता है। इस प्रकार अंग्रेजी अनुवाद में बूँद की क्षण-भंगुरता को तो तीव्रतर किया गया है, लेकिन उसके गुणात्मक आयाम को समेटा नहीं गया है।

इसी प्रकार 'ढलना' शब्द अपने अर्थ संस्कार में पहले शीर्ष की तरफ पहुँचकर फिर नीचे उतरने की ओर संकेत देता है। सूरज के संदर्भ में यह मध्याह्न के बाद का सूचक है। अगर जीवन ही सूरज है तो यह वय के संदर्भ में बुढ़ापे की तरफ (जवानी का ढलना) और अनुभव के संदर्भ में परिपक्वता के बाद की स्थिति की ओर संकेत देता है। पर इसके समानांतर शब्द प्रयोग mellowing में (न अधिक न कम) सूरज के ताप की ओर संकेत मिलता है। इससे अनुभव की परिपक्वता के बाद की स्थिति व्यंजित नहीं हो पाती।

कुछ शब्द तो अपने संस्कार में इतिहास और संस्कृति का संदर्भ लेकर हमारे सामने आते हैं, और उनके प्रयोग से जो भाषिक अभिव्यक्ति बनती है, वह शब्द से ही सांस्कृतिक इतिहास को बाँध लाती है। मूल कविता की ऐसी ही एक भाषिक अभिव्यक्ति है -- 'सूने विराट् के सम्मुख', जिसका अनुवाद है -- 'Against the wall of emptiness' या फिर 'हर आलोक छुआ अपनापन' -- जिसका अनुवाद है मात्र 'this light shot one'।

4. काव्यार्थ प्रतीकन : कविता अपनी मूल प्रकृति में एक संभावना है। इस संभावना को मूर्तवान बनाने के लिए कवि दृष्टांतों का इस प्रकार सहारा लिया करता है कि वह संभावना हमारे लिए प्रत्यक्ष रूप धारण कर ले। इसीलिए कविता में प्रयुक्त प्रतीक दुहरे अर्थ से संयुक्त होते हैं। एक ओर ये प्रतीक हमारे लिए प्रत्यक्षीकरण (Perception) के साधन बनते हैं तथा दूसरी ओर स्थान और समय की सीमा का अतिक्रमण कर किसी शाश्वत (संभाव्य) तत्त्व की ओर संकेत भी देते हैं। दार्शनिक कविता में संभाव्य और प्रत्यक्षीभूत स्तरों का द्वंद्व द्वंद्वात्मक स्थिति में अभिव्यक्त होता है। प्रस्तुत कविता भी एक दार्शनिक कविता है, जिसमें अनुभवगम्य बूँद और समुद्र के दृश्य बिंबों द्वारा रूप देने का प्रयत्न किया गया है। इसमें अगर चाहें तो बूँद को व्यष्टि/व्यक्तित्व/जीवात्मा का प्रतीक मान सकते हैं और सागर को समष्टि/समूह/परमात्मा का। सूरज को जीवन और आग को अनुभव का प्रतीक भी कहा जा सकता है। अतः मूल कविता अपने प्रतीकार्थ में जिस दार्शनिक कथ्य की ओर संकेत दे रही है, उसके लिए न केवल शीर्षक की संरचना अपना विशिष्ट रूप लिए हुए है बल्कि विभिन्न शब्दों का चयन भी उसे विशिष्टता प्रदान करता है। अंग्रेजी अनुवाद में न केवल शब्द संस्कार मूल काव्यार्थ प्रतीकन को खंडित कर रहा है वरन पूरी अंग्रेजी भाषा का संस्कार उसके लिए बाधक बन गया है।

एक ही कवि अज्ञेय द्वारा रचित मूल कविता और अनूदित कविता के ऊपर दिए गए भेद के आधार पर यह कहा जा सकता है कि कविता का अनुवाद असंभव-सा है, क्योंकि मूल कविता और अनूदित कविता में अनिवार्यतः व्यक्तित्व भेद आ जाता है। हर कविता अपनी प्रकृति में समन्वय (generic/universal) भी होती है और विशिष्ट (unique/specific) भी। अनुवादक यदि समर्थ हुआ तो कविता के सामान्य पक्ष का प्रतिमूर्तन अनूदित कविता में सफल ढंग से कर सकता है, पर उसके विशिष्ट पक्ष का अंतरण प्रायः असंभव-सा होता है। इस संदर्भ में कविता के दो पक्षों (विषय-वस्तु, काव्य-पक्ष) के भेद पर विचार कर लेना अनुचित न होगा।

विषय-वस्तु कविता के कथ्य पक्ष की सामान्य अवधारणा है, जिसे अनूदित कविता में व्यक्त करना कठिन नहीं। लेकिन काव्य-वस्तु, कविता के कथ्य पक्ष का वह अंग है, जो उसे व्यक्तित्व प्रदान करता है, और जिसे कविता से अलग करके देखना संभव नहीं है। काव्य वस्तु का आधार कविता की बुनावट (texture), उसकी नाद योजना, शब्द संस्कार और रचना सापेक्ष अभिविन्यास (orientation) आदि तत्त्व होते हैं। इसीलिए विषय-वस्तु को कविता से बाहर निकाल कर देखा-परखा जा सकता है लेकिन काव्य वस्तु कविता में इस प्रकार रची-बसी होती है कि उसका अन्वयन या प्रतिरूपण असंभव-सा हो जाता है। विषय-वस्तु और काव्य तत्त्व का यह भेद कविता का अपना भेद है न

कि दो भाषाओं में रचित मूल और अनूदित कविता का। यही कारण है कि एक ही भाषा में रचित किसी कविता का भी उसी भाषा में यथावत रूपांतरण संभव नहीं है। रोमन याकोब्सन ने प्रतीक सिद्धांत के संबंध में अनुवाद के तीन प्रकार बतलाए हैं -- (1) अंतर-अन्वय अनुवाद अर्थात् अन्वयांतर (2) अंतर्भाषिक अनुवाद अर्थात् भाषांतर; और (3) अंतर प्रतीकात्मक अनुवाद अर्थात् प्रतीकांतर।

अन्वयांतर अनुवाद के रूप में अज्ञेय की दो कविताओं -- 'जैसे तुझे स्वीकार हो', और 'जयतु हे कंटक चिरंतन' को देख सकते हैं, जो प्रथम तार सप्तक में संकलित हैं। इन दोनों कविताओं की समानता और असमानता की चर्चा रवींद्रनाथ श्रीवास्तव ने अपनी पुस्तक 'संरचनात्मक शैली-विज्ञान' में इस प्रकार की है -- 'दोनों ही कविताओं के विषय एक हैं, दोनों ही छायावादी चेतना की अस्वीकृति एवं उसकी शैली के निषेध के लिए छायावाद की वस्तु व्यंजना एवं अभिव्यक्ति पद्धति को प्रतिपाद्य विषय बनाते हैं। वस्तुतः ''जयतु हे कंटक चिरंतन' नामक कविता पहली कविता के निमित्त लिखी रचना है।'' 'जैसे तुझे स्वीकार हो' एक साहित्यिक कृति है और कवि के शब्दों में 'साधारण गद्य में उसकी व्याख्या ही हो सकती है अर्थ नहीं। अतः मैं उसका अर्थ पद्य में करके भेज रहा हूँ।' और यह पद्य दूसरी कविता है पर क्या इस दूसरी कविता में पहली कविता की अर्थपरक संपूर्ण संभावना और व्यंजना समाहित है?''

ऊपर की विवेचना से यह स्पष्ट हो जाता है कि विषय-वस्तु की दृष्टि से ये दोनों कविताएँ एक होते हुए भी काव्य-वस्तु के संदर्भ में नितांत भिन्न हैं और वे विभिन्न सृजन-प्रक्रिया का परिणाम प्रतीत होती हैं। काव्य-वस्तु की विशिष्टता और अनुवादक द्वारा दूसरी कविता में उसके संप्रेषण की असंभाव्य स्थिति को देखकर ही संभवतः रॉबर्ट फ्रास्ट (Robert Frost) ने यह कहा है कि अनुवाद की प्रक्रिया में जो 'तत्त्व' खो जाता है, वही कविता (काव्य-वस्तु) है। (Poetry is what is lost in a translation) और संभवतः यही कारण है कि अनुवाद प्रक्रिया पर बात करते समय अंग्रेजी के प्रसिद्ध कवि शैली ने यह कहा है कि अनुवादक के लिए मूल कविता मात्र बीज रूप होती है, जिसे वह अपनी सर्जना शक्ति के आधार पर वृक्ष और फल के रूप में अपने ढंग से विकसित करता है। ऊपर की विवेचना के आधार पर हम यह कह सकते हैं कि कविता का संभाव्य रूप ही उसका बीज है, जबकि काव्य-वस्तु का संदर्भ उसके वृक्ष का व्यक्तित्व।

मूल कविता और अनूदित कविता के व्यक्तित्व-भेद के अंतर का यह आयाम स्वयं कविता का आयाम है। इसके भेद का दूसरा आयाम अनुवादक के व्यक्तित्व का हो सकता है। अनुवादक, अनूदित कविता का रचयिता होने के पहले मूल कविता का पाठक होता है। कविता का पाठक दी हुई कविता से केवल अर्थ ही ग्रहण नहीं करता वरन उस कविता में अर्थ भरता भी है। यही कारण है कि किसी कविता का एक अर्थ नहीं हुआ करता

और हर समर्थ कविता विभिन्न युगों में विभिन्न ढंग से पढ़ी और समझी जाती रही है। अतः समान रूप से मूल कविता को बीज में ग्रहण कर भी अनुवादक (पाठक-रचयिता) अपने व्यक्तित्व (मूल कविता के प्रति अभिविन्यास) के अनुसार वृक्ष रूप में उसे पल्लवित करता है। यही कारण है कि एक ही मूल कविता के कई अनुवाद संभव हैं। उदाहरण के लिए होमर के तीन अनुवादक -- ड्राइडन, पोप और काउपर देखे जा सकते हैं, जिनकी अनूदित काव्य सामग्री में पर्याप्त अंतर दिखाई देता है। इसी प्रकार फिट्ज्जेराल्ड की रुबाइयों का अनुवाद केशव प्रसाद पाठक, मैथिलीशरण गुप्त, हरिवंशराय बच्चन, सुमित्रानंदन पंत आदि ने विभिन्न शब्द संस्कार एवं रचना विन्यास के साथ किया है।

मूल कविता और अनूदित कविता के बीच के दुराव का एक कारण मूल कवि और अनुवादक के बीच की दूरी भी हो सकता है। उदाहरण के लिए, ऐसा भी संभव है कि अनुवादक जिस कविता का अनुवाद कर रहा हो वह किसी अन्य कवि द्वारा रचित अनूदित कविता हो। अतः यह मूल कविता से दुहरे रूप में भिन्न होती है, क्योंकि यह एक ओर अनुवादक की मध्यस्थता पर आधारित है और साथ ही एक दूसरी मध्यस्थ भाषा से छनकर निकली होती है। उदाहरण के लिए, उमर खैयाम की रुबाइयों का अनुवाद पहले फिट्ज्जेराल्ड ने अंग्रेजी में किया और फिर इस अंग्रेजी में अनूदित रचना का अनुवाद पाठक, गुप्त, बच्चन और पंत ने हिंदी में किया। ऊपर की विवेचना के आधार पर काव्यानुवाद का कुछ वर्गीकरण करना भी संभव है। कम से कम निम्नलिखित पाँच स्थितियाँ दिखाई देती हैं :

पहली स्थिति : जहाँ एक ही भाषा में कविता का अन्वयांतर हो, यथा :

	स्रोत भाषा (मूल कविता)		लक्ष्य भाषा (अनूदित कविता)
	↓		↓
	रचयिता[1]	= या ≠	रचयिता[2]
उदाहरण :	अज्ञेय	=	अज्ञेय
	'जैसे तुझे स्वीकार हो'		'जयतु हे कंटक चिरंतन'

दूसरी स्थिति : जहाँ मूल कविता एवं अनूदित कविता का रचयिता एक ही व्यक्ति हो, यथा :

	(मूल कविता)	(अनूदित कविता)
	↓	↓
	रचयिता[1]	रचयिता[2]
उदाहरण :	अज्ञेय	अज्ञेय
	'मैंने देखा, एक बूँद'	'I saw a drop'

तीसरी स्थिति : जहाँ मूल कविता एवं अनूदित कविता के रचयिता दो भिन्न व्यक्ति हों, यथा :

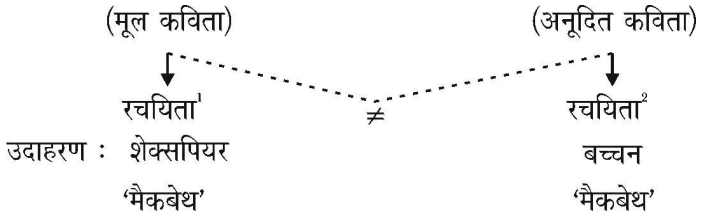

चौथी स्थिति : जहाँ अनूदित कविता स्वयं में दूसरी कविता के लिए मूल कविता (स्रोत) बनती है, यथा :

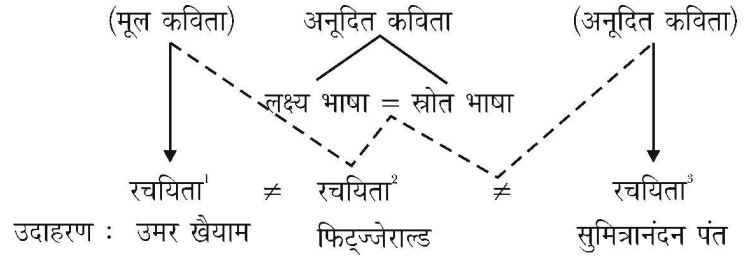

पाँचवीं स्थिति : जहाँ मूल कविता एक से अधिक अनूदित कविताओं का स्रोत बन जाए, यथा :

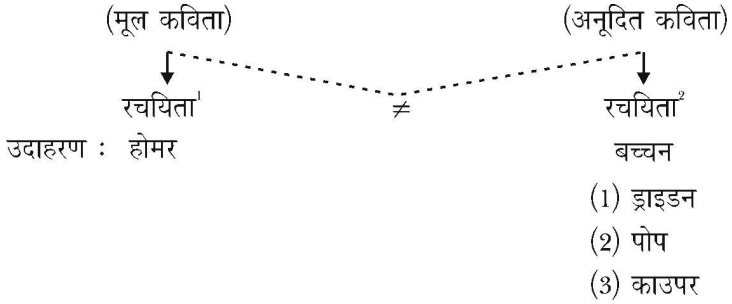

स्पष्ट है कि काव्यानुवाद की समस्या बहुस्तरीय और बहुआयामी है। इसका संबंध दो भाषाओं की टकराहट, अनुवादक की अपनी समझ और अभिविन्यास, मूल कविता की काव्य-वस्तु का काव्य-वैशिष्ट्य और उनका सर्जनात्मक अंतरण के साथ है। ये सभी संदर्भ काव्यानुवाद की समस्या को जटिल रूप से उलझा देते हैं।

❑

डॉ. सुरेश सिंहल

कविता का अनुवाद : स्वरूप और समस्याएँ

विषय-वस्तु के आधार पर अनुवाद-सामग्री का विभाजन मुख्यतः दो प्रकार से किया जाता है। पहला, सृजनात्मक साहित्य का अनुवाद और दूसरा, साहित्येतर विषयों का अनुवाद। यह दोनों प्रकार का अनुवाद विषय, प्रकृति, प्रक्रिया और स्वरूप की दृष्टि से सर्वथा भिन्न हुआ करता है। साहित्यिक कृतियों के अनुवाद की प्रमुख विशेषता होती है -- 'पुनःसृजन' और यही इसका सबसे बड़ी समस्या भी होती है। अनुवाद की परिभाषा के रूप में पुनःसृजन की विशेषता और कठिनाई जितनी सार्थक साहित्यिक अनुवाद के स्वरूप और परिधि के संदर्भ में है, उतनी किसी और प्रकार के अनुवाद में नहीं। यह पुनःसृजन साहित्यिक अनुवाद के प्रत्येक स्तर पर उसे प्रभावित करता है। दूसरी ओर साहित्येतर विषयों के अनुवाद में 'पुनःसृजन' की अपेक्षा 'भाषांतर' किया जाता है या फिर 'रूपांतरण'। दरअसल, सृजनात्मक साहित्य के अनुवाद में कृतियों का अनुवाद सिर्फ शब्दों का प्रतिस्थापन मात्र नहीं है। अपितु इससे कहीं और अधिक है।

यों तो सृजनात्मक साहित्य की विभिन्न विधाओं (जैसे -- नाटक, उपन्यास, कहानी, निबंध, आत्मकथा आदि) का अनुवाद कई दृष्टियों से आसान होता है, किंतु फिर भी प्रत्येक विधा की अपनी कुछ विशिष्ट बारीकियाँ हुआ करती हैं। प्रायः ऐसी बारीकियाँ शैली-स्तर पर ही अधिक होती हैं। निश्चित रूप से इन सभी विधाओं की अनुवाद-प्रक्रिया एक जैसी नहीं हो सकती। कविता में विभिन्न काव्य-रूपों द्वारा, नाटक में रंगमंचीय प्रदर्शन द्वारा और कथा-साहित्य के विभिन्न कथा-शैलियों द्वारा मूल लेखक के कथ्य को पाठकों और दर्शकों तक पहुँचाया जाता है। भाव एवं शैली के स्तर पर विभिन्नता के साथ-साथ भाषा के तेवर भी अलग-अलग होते हैं। कुल मिलाकर कहा जा सकता है कि विभिन्न प्रकार की साहित्यिक विधाएँ चूँकि अपने कलेवर में भिन्न होती हैं, इसलिए उनका अनुवाद भी भिन्न-भिन्न तरीके से ही संभव होता है और उनकी समस्याएँ भी

भिन्न-भिन्न होती हैं। यहाँ कवितानुवाद के सैद्धांतिक एवं व्यावहारिक पक्षों पर विचार करते हुए उनके स्वरूप और समस्याओं पर सविस्तार से चर्चा की जा रही है :

कविता के अनुवाद का स्वरूप

कविता साहित्य की सर्वाधिक सृजनशील विधा है। मानव-मन के अनुभूतिजन्य शब्दों के विस्फोट से ही कविता का जन्म होता है। कविता वास्तव में एक भावात्मक अभिव्यक्ति होती है जिसके माध्यम से लेखक अपनी व्यक्तिगत अनुभूति को व्यष्टिगत रूप में व्यक्त करते हुए समष्टिगत भाव प्रदान करता है। साहित्य में कविता कवि की भावनाओं का सतत प्रवाह होती है, इसलिए उसकी अनुभूति एवं संरचनात्मक अद्वितीयता के कारण ही कहा जा सकता है कि कविता का अनुवाद संभव नहीं होता है। किंतु इस प्रकार की धारणा अतिशयोक्ति ही प्रतीत होती है। विश्व-स्तर पर अनेक कालजयी कृतियों के सफल अनुवाद आज हमारे सामने हैं। यदि कोई प्रतिभावान कवि-अनुवादक अपने पूरे मनोयोग से अनुवाद-कर्म में प्रवृत्त होता है तो वह सृजनात्मकता का प्रतिनिधित्व करने वाला सफल अनुवाद कर सकता है। दरअसल, कविता का अनुवाद करने के लिए अनुवादक के लिए साहित्य-रस का आनंद ले सकने वाला हृदय चाहिए और सृजन की बेजोड़ प्रतिभा चाहिए। इन दोनों के उपलब्ध होने की स्थिति में काव्यानुवाद की सफलता की संभावनाएँ बढ़ती जाती हैं। इसका एक अच्छा उदाहरण फिट्ज्जेराल्ड द्वारा किया गया उमर खैयाम की रुबाइयों का अनुवाद है और फिर उनका हिंदी में हरिवंशराय बच्चन द्वारा किया गया अनुवाद है। लगता ही नहीं कि वह अनुवाद किया गया है। वास्तव में काव्यानुवाद की प्रक्रिया एक रसात्मक प्रक्रिया है, जिसमें से गुजरने के बाद ही कोई सहृदय अनुवादक सफल अनुवाद कर पाता है।

काव्यानुवाद में अनुवादक द्वारा सर्वप्रथम स्रोत भाषा की सामग्री का सतही दृष्टि से अध्ययन किया जाता है और उसका सामान्य अर्थ ग्रहण किया जाता है; उसका काव्यशास्त्रीय अर्थ समझा-परखा जाता है। इस गहन अध्ययन के पश्चात् पाठ्य-सामग्री का रस की दृष्टि से अध्ययन किया जाता है, क्योंकि काव्य स्वभाव से ही संपूर्ण होता है। यदि रस ही नहीं तो काव्य कैसा? रसानुभूति प्रथम आवश्यकता बन जाती है। तत्पश्चात काव्य के समग्र अर्थ को ग्रहण करने का भरपूर प्रयास किया जाता है। इस समग्र अर्थ में स्रोत भाषा को सामग्री में विद्यमान बिंबों, प्रतीकों, अलंकारों आदि की परोक्ष अभिव्यक्ति के अर्थ की परतें भी स्वतः खुलती चलती हैं। इस रस-सम्मत अर्थ को अभिव्यक्त करने के लिए उपयुक्त शब्दावली का चयन करना होता है, उचित पर्याय ढूँढ़ने होते हैं। मूल भाव को सही ढंग से अभिव्यक्त करने के लिए शब्द-गुंफन की प्रक्रिया अपनाई जाती है। पर्याय-चयन, शब्द-गुंफन एवं अभिव्यक्तिकरण के पश्चात इसका अनुशीलन किया

जाता है। इससे अगला चरण भावानुशीलन का होता है। तदुपरांत इसे गद्य रूप में प्रस्तुत किया जा सकता है। यदि इसे पद्य रूप में प्रस्तुत करना हो तो पुनः इस प्रक्रिया का एक चरण और बढ़ जाता है। तब जाकर काव्यानुवाद संभव हो पाता है।

अनुवाद के संदर्भ में यह एक महत्त्वपूर्ण तथ्य है कि मौलिक रचना और अनूदित रचना में एक मूलभूत अंतर होता है। ऐसा इसलिए, क्योंकि मौलिक रचना में मूल रचनाकार का सब कुछ अपना होता है, किंतु अनुवाद में ऐसा नहीं है। वस्तुतः अनूदित रचना में कुछ सीमा तक सब कुछ अपना होते हुए भी उसकी आत्मा पराई ही रहती है। इस कारण अनूदित रचना को मौलिक रचना के बिलकुल बराबर तो नहीं माना जा सकता, किंतु हाँ, उसे पुनर्रचित रचना कहने में भी कोई हिचकिचाहट नहीं होती है। सृजनात्मक साहित्य का अनुवाद वास्तव में अपने आप में एक पुनर्सृजन की प्रक्रिया ही है। यूँ तो साहित्य की सभी विधाओं पर यह बात लागू होती है, किंतु काव्यानुवाद पर यह कुछ अधिक ही लागू होती है। साहित्य की सभी विधाओं के अनुवाद में कलात्मक सृजन का अभाव होते ही वह निर्जीव, प्रभावहीन एवं सौंदर्यविहीन हो जाता है। इस संदर्भ में फिट्ज्जेराल्ड का यह मत विशेष महत्त्व रखता है कि अनुवाद को यथासंभव सजीव बनाना चाहिए, क्योंकि जीवित कुत्ता मरे शेर से कहीं अच्छा होता है। इसलिए अनुवाद को यदि सफल बनाना है तो उसमें मूल रचना का सौंदर्य यथासंभव संप्रेषित होना ही चाहिए। मूल रचना का यह भावगत एवं शैलीगत सौंदर्य जितना अधिक अनूदित रचना में आएगा, उतना ही वह सफल अनुवाद कहलाएगा। निश्चित ही यह एक श्रमसाध्य व्यापार है। जो अनुवादक मूल रचना के सामान्य अर्थ को संप्रेषित करने तक ही सीमित है, उसे सफल अनुवादक नहीं कहा जा सकता। शैली के स्तर पर मूल रचना शब्दों, पदों, वाक्यों, बिंबों, अलंकारों, छंदों, सांस्कृतिक तत्त्वों आदि से सगुंफित होती है। इन तत्त्वों के कारण ही यह रचना एक सामान्य रचना की कोटि से विशेष रचना की कोटि में रखी जाती है। इसलिए अनुवाद में भी ये सभी विशेषताएँ यथासंभव अवतरित की जानी चाहिए, तभी वह सफल काव्यानुवाद कहलाएगा। इन्हीं शैलीगत विशेषताओं को लक्ष्य भाषा में उतारने के कारण ही काव्यानुवाद को पुनःसृजन की प्रक्रिया कहा गया है। श्री अरविंद का मत है कि ''काव्यानुवाद का कार्य मूल के शब्दों को अनुवाद में उतारना मात्र नहीं है, बल्कि उसके बिंब, काव्य-सौंदर्य एवं शैली की विशेषताओं की भी पुनर्रचना करना है।''[1] अतः यह आवश्यक हो जाता है कि काव्यानुवाद कवि की मानसिकता एवं प्रतिभा रखने वाला अनुवादक ही करे।

काव्यानुवाद का कार्य एक जटिल कार्य है, क्योंकि मूल भाषा की साहित्यिक संवेदना अपनी प्रकृति में इतनी विशिष्ट होती है कि उसका दूसरी भाषा में अवतरण प्रायः असंभव-सा

होता है। इसी कारण स्रोत भाषा और लक्ष्य भाषा में भाव एवं शैली के आधार पर अंतर काव्यानुवाद की स्वाभाविक प्रक्रिया का परिणाम है, जो आधुनिक अनुवाद-चिंतन के संदर्भ में काव्यानुवाद की उस संकल्पना को दर्शाता है, जिसे पुनःसृजन कहा जाता है। काव्यानुवाद की प्रक्रिया में मूल संवेदना और संप्रेषणीयता की अनिवार्यता के कारण अनुवादक पुनःसर्जक बनता है। इस संदर्भ में नाइडा का यह विचार महत्त्वपूर्ण है कि अर्थ और शैली के स्तर पर लक्ष्य भाषा में निकटतम, स्वाभाविक तथा तुल्यार्थक उपादान प्रस्तुत करना अनुवाद है। इसलिए एक ही मूल पाठ के दो अनूदित सहपाठों में आधारभूत कथ्य के स्तर पर समानता दिखाई देती है और अभिव्यक्ति के स्तर पर भिन्नता। काव्यानुवाद में मूल कवि द्वारा अभिव्यक्त विचारों और भावों को सुरक्षित रखते हुए कविता का लक्ष्य भाषा में पुनःसृजन किया जाता है। यहाँ यह उल्लेखनीय है कि पुनःसृजन का यह सिद्धांत सभी काव्यानुवादों में समान नहीं होता है, क्योंकि भिन्न-भिन्न कवियों की भिन्न वर्णन-विधि या रचना-शैली के लिए भिन्न अनुवाद-प्रक्रिया अपनानी पड़ती है।

सफल काव्यानुवाद के लिए अनुवादक को मूल कृति के सृजनात्मक पाठ को उसके संश्लिष्ट रूप में ग्रहण करना चाहिए। यह तभी संभव हो पाता है जब अनुवादक मूल कवि के सृजनात्मक क्षणों से तादात्म्य स्थापित करते हुए उसकी रचना को संपूर्णता में आत्मसात् करे। मूल रचना की आत्मा तक पहुँचने का कार्य कोई कवि-अनुवादक ही कर सकता है। काव्यानुवाद में भाषा संरचना अर्थात् शब्दों में परिवर्तन करते ही उसका सौंदर्य नष्ट हो जाता है -- चाहे यह एक ही भाषा में हो या दूसरी भाषा में। इसलिए काव्यानुवाद में मात्र शब्दानुवाद पर्याप्त नहीं होता, अपितु भावानुवाद अथवा पुनःसृजन प्रायः आवश्यक हो जाता है। सभी सफल काव्यानुवाद ऐसे कवि-अनुवादकों द्वारा किए गए हैं, जिन्होंने मूल कवियों की आत्मा को छुआ है और उनकी सृजनात्मक-प्रक्रियाओं से साक्षात्कार किया है। उदाहरण के लिए, इलियट, फिट्ज्जेराल्ड, बच्चन, भारती आदि कवि-अनुवादकों ने काव्यानुवाद में शब्दानुवाद की अपेक्षा पुनःसृजन पर ही जोर दिया है। इलियट का मत है कि ''And good translation...is not merely translation, for the translator is giving the original through himself and finding himself through the original.''[2]

फिट्ज्जेराल्ड का कहना है कि किसी कृति को जीवंत बनाने के लिए अनुवादक को चाहिए कि वह मूल कृति को आत्मसात् करके उसे यथासाध्य अपने ढंग से अनूदित करे। इसी संदर्भ में वे यह भी कहते हैं कि वे शब्दानुवाद के पक्ष में नहीं हैं।[3] बच्चनजी का यह मत भी महत्त्वपूर्ण है कि अनुवाद में अनुवादक को अर्थ लेना पड़ता है, शब्द छोड़ना पड़ता है।[4] भारती जी काव्यानुवाद के संदर्भ में कहते हैं कि यदि सफल अनुवाद

प्रस्तुत करें तो वह सफल नहीं हो पाता।[5] इन कवि-अनुवादकों के विचारों से स्पष्ट है कि काव्यानुवाद में अनुवादक को शब्दों की अपेक्षा भावों पर ही ध्यान केंद्रित करना चाहिए और मूल रचना की भाव-संपदा को गहराई से महसूस करते हुए उसे लक्ष्य भाषा में उतारना चाहिए।

काव्यानुवाद में भी अन्य प्रकार के अनुवाद की तरह समतुल्यता एक आवश्यक तत्त्व है। समरूपता की संभावना क्षीण होने पर समतुल्यता ही महत्त्वपूर्ण हो जाती है। यह समतुल्यता भाव एवं शैली के स्तर पर अधिक होती है। मूल रचना में निहित सामाजिक एवं सांस्कृतिक परिवेश को संप्रेषित किए जाने की स्थिति में और मूल कृति का उसी रूप में लक्ष्य भाषा के पाठकों तक पहुँचाने के लिए समतुल्यता अत्यधिक सहायक सिद्ध होती है। इस प्रक्रिया में अनुवादक का व्यक्तित्व भी महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाता है। उसे काव्यानुवाद करते समय लक्ष्य भाषा की प्रकृति के अनुरूप ही उसमें प्रस्तुत करना होता है, किंतु यह प्रक्रिया विडंबनापूर्ण है, क्योंकि पद्य के बंधन के कारण अनुवादक न तो मूल भावों की रक्षा कर पाता है और न अनूदित रचना के शैलीगत सौंदर्य को बचा पाता है। भाषा अथवा संरचना पर ध्यान देने से भाव नहीं आ पाते और भावों का अनुवाद करने पर व्याकरण साथ छोड़ जाता है। काव्यानुवाद की प्रमुख समस्या यह है कि काव्य में भाषा के कई स्तर होते हैं। कवि के भाषिक संस्कार कवि की अपनी मातृभाषा और उसके क्षेत्र की सामान्य क्षेत्रीय भाषा के आधार पर ही बने होते हैं। कवि का सामान्य प्रेषण-व्यापार इन्हीं संस्कारों पर आधारित रहता है। इस संदर्भ में डॉ. चंद्रभान रावत का कहना है कि काव्य-सृजन एक विशिष्ट व्यवहार है, जिसमें संस्कृति का समग्र रिक्थ, व्यक्तिगत चेतना के पारंपरिक और नवीन स्तर आदि मानसिक केंद्र और सामूहिक चेतन-अचेतन की समग्र शक्तियाँ सक्रिय हो उठती हैं। कवि की उत्तेजित-उद्वेलित चेतना और उद्दीप्त अनूभूति अपनी व्यंजना के लिए उचित सामग्री की खोज और उसके चुनाव और प्रयोग की जटिल प्रक्रियाओं में प्रवृत्त होती है। कवि का भाषा-प्रयोग संबंधी दायित्व ऐसे में बहुस्तरीय हो जाता है। एक ओर तो उसे अपनी रचना को मात्र उक्ति से बचाना है और दूसरी ओर अपनी अनुभूति और सृजन-प्रेरणा के संदर्भ में भाषा-प्रयोग को प्रमाणित करना होता है। एक ओर उसे परंपरागत जनभाषा के प्रति प्रतिबद्ध होना होता है और दूसरी ओर लीक से हटकर नवीन भाषा-भूमियों की खोज भी उसके लिए अनिवार्यता बन जाती है।

काव्यानुवाद के संदर्भ में यह कहना भी समीचीन है कि गद्य और पद्य के अनुवाद में एक मूलभूत अंतर होता है। गद्य की भाषा जहाँ अभिधामूलक होती है, पद्य की भाषा वहीं लाक्षणिक एवं व्यंजना-प्रधान होती है। अभिधामूलक भाषा का अनुवाद तो

फिर भी आसानी से किया जा सकता है, किंतु कविता की लाक्षणिक एवं व्यंजना-प्रधान भाषा का अनुवाद करते समय मूल अर्थ में कुछ-न-कुछ कमी अवश्य आ जाती है। अतः काव्य-भाषा की इन्हीं जटिलताओं के कारण ही अनुवाद प्रायः असंभव-सा प्रतीत होने लगता है। ऐसा इसलिए होता है, क्योंकि प्रत्येक भाषा की प्रकृति दूसरी भाषाओं से कम या ज्यादा भिन्न होती है और उसी के अनुरूप उस भाषा में शैलीगत तत्त्वों का विकास होता है। समान प्रकृति की भाषाओं में तो परस्पर अनुवाद कुछ सीमा तक संभव भी होता है, किंतु असमान प्रकृति की भाषाओं (जैसे अंग्रेजी और हिंदी) में कविता का अनुवाद प्रायः दुष्कर हो जाता है। और फिर कविता इस कारण भी अन्य साहित्यिक विधाओं से भिन्न होती है, क्योंकि इसमें कुछ ऐसे तत्त्व होते हैं जो अन्य विधाओं में नहीं होते और जिन्हें अनुवाद के लिए अनुवाद की भाषा में सुरक्षित रख पाना कठिन होता है। काव्यानुवाद में अलंकार, प्रतीक, बिंब, सांस्कृतिक-शब्दावली, रस-योजना, छंद-योजना आदि से संबंधित समस्याएँ अनुवादक के समक्ष प्रस्तुत होती हें। इन्हीं कारणों से कई विद्वानों ने काव्यानुवाद को असंभव माना है। कुछ विद्वानों ने अनुवाद-कर्म के लिए प्रतिकूल मत व्यक्त किए हैं। एक इतालवी कथन के अनुसार अनुवादक को 'प्रवंचक' बताया गया है -- Traduttori traditori। फारेस्ट स्मिथ ने अनुवाद को 'स्वादहीन स्ट्राबेरी' की संज्ञा दी है -- ''Translation of a literary work is as tasteless as a stewed strawberry.'' एक अन्य अनुवादक अनुवाद को 'कालीन की उलटी तरफ' मानते हैं -- ''Translation from one language to another is like gazing at a flemish tapestry with the wrong side out.'' शावरमैन अनुवाद को 'पाप' ही मानते हैं। हम्बोल्ट तो अनुवाद की परिकल्पना और संकल्पना पर ही प्रश्नचिह्न लगाते हुए प्रतीत होते हैं -- ''All translation seems to me simply an attempt to solve an unsolvable problem.'' किंतु इस सब का अर्थ यह नहीं है कि काव्यानुवाद किया ही नहीं जा सकता। वस्तुतः कविता का अनुवाद कठिन तो है किंतु असंभव नहीं है। कितने ही सफल काव्यानुवादक आज हमारे सामने हैं। हरिवंशराय बच्चन ने शेक्सपियर के 'हैलमेट', डब्ल्यू.वी. यीट्स की कविताओं, अंग्रेजी रोमांटिक कवियों की रचनाओं और उमर खैयाम की रुबाइयों के जो अनुवाद प्रस्तुत किए हैं, वे मौलिक सृजन से किसी भी प्रकार कम नहीं हैं।

यह काव्यानुवाद की विडंबना ही है कि इतना सब होने के बाद भी काव्यानुवाद मूल रचना के समस्त सौंदर्य के बराबर नहीं हो पाता और मूल की छाया-मात्र बनकर रह जाता है। यह सत्य है, किंतु हम यह क्यों भूल जाते हैं कि मूल और अनुवाद में एक मूलभूत अंतर होता है। मूल रचना और अनूदित रचना भला एक जैसी कैसे

हो सकती हैं। ऐसी स्थिति में यह कहना कहाँ तक तर्कसंगत है कि काव्यानुवाद संभव ही नहीं हो सकता। काव्यानुवाद को असंभव मानने वाले शायद यही सोचकर इसे असंभव की संज्ञा देते हैं कि कविता का अनुवाद मूल कृति जैसा स्वाभाविक एवं प्रभावित करने वाला नहीं होता। यह बात काफी हद तक सही है। दरअसल, अनुवाद का उद्देश्य एक अजनबी साहित्य एवं संस्कृति की रचना को ऐसे पाठकों तक पहुँचाना होता है जो उससे परिचित नहीं होते और जो उस भाषा से अनभिज्ञ होने के कारण उसका रसास्वादन करने में असमर्थ होते हैं। अनुवाद चाहे किसी भी विधा का हो, वह मूल रचना को उसके समस्त सौंदर्य सहित अधिक से अधिक ऐसे पाठकों तक पहुँचाने का प्रयत्न करता है। किंतु इस प्रक्रिया में मूल रचना का कुछ न कुछ अंश तो पीछे छूट ही जाता है। इसलिए अनुवाद कभी भी शत-प्रतिशत नहीं हो सकता है और वह भी अनुभूति-प्रधान कविता जैसी विधा का। वास्तव में अनुभूति जैसे तत्त्व को अनुवाद-प्रक्रिया में पकड़ा ही कैसे जाए, जबकि उसका स्वभाव पारानुमा होता है। प्रत्येक लेखक की अपनी अनुभूति होती है, अपनी भाषा होती है और अपना निजी अनुभव होता है। अनुवादक इन तत्त्वों को लाख कोशिश करने पर भी पकड़ नहीं पाता। हाँ, वह अधिक से अधिक उन्हें लक्ष्य भाषा में स्थानांतरित करने का प्रयत्न कर सकता है और वह यह कार्य अपनी पूरी ईमानदारी से करता भी है। इतना होने पर भी मूल लेखक और अनुवादक की अनुभूति, अनुभव और भाषा शत-प्रतिशत समानांतर होंगे अथवा हो सकते है, इसमें संदेह ही है। कविता की भाषा तो वैसे भी अन्य विधाओं की भाषा से नितांत भिन्न होती है, क्योंकि गद्यात्मक विधाओं की भाषा जहाँ अपेक्षाकृत सरल होती है, वहीं कविता की भाषा कठिन एवं जटिल हुआ करती है। भाषा की यह जटिलता बिंबों, प्रतीकों, सांस्कृतिक तत्त्वों, अलंकारों आदि काव्यशास्त्रीय विशेषताओं के कारण होती है।

काव्यानुवाद करना वास्तव में दोधारी तलवार पर चलने जैसा है, क्योंकि जहाँ अनुवादक को इन विशेषताओं के काव्यात्मक सौंदर्य की रक्षा करनी होती है, वहीं ये अनुवाद में कठिनाई भी उत्पन्न करती है। ये विशेषताएँ जितनी अधिक होंगी, अनुवाद उतना ही कठिन होगा। काव्यभाषा की ये विशेषताएँ ही अनुवादक के लिए वास्तविक चुनौती बनकर सामने आती हैं। अनुवादक को इन चुनौतियों का सामना करते हुए ही काव्यानुवाद करना पड़ता है। कविता में अत्यधिक जटिल भाषिक प्रयोगों के कारण ही अनुवादक को एक ओर मूलनिष्ठता का उल्लंघन करने जैसा अपराध करना पड़ता है और दूसरी ओर काव्यानुवाद का हू-ब-हू न कर सकने का दोष भी अपने सिर पर लेना पड़ता है। यदि अनुवादक इन भाषिक प्रयोगों से बोझिल शैली को नजरअंदाज करते हुए काव्यानुवाद करता है तो वह अनुवाद अधूरा कहलाता है और यदि सिर्फ कथ्य को नजरअंदाज करके

अनुवाद करता है तो भी अधूरा ही कहलाता है। वास्तव में काव्यानुवाद की समस्या यह है कि वह कथ्य और शैली दोनों का ही गठबंधन होता है। और ये दोनों ही कुछ सीमा तक एक-दूसरे पर निर्भर करते हैं। इन दोनों के योग के अनुपात पर ही काव्यानुवाद की सफलता निर्भर करती है। अनुवादक इन दोनों में जितना अधिक तालमेल बैठा पाएगा, काव्यानुवाद उतना ही अधिक सफल कहलाएगा।

कविता के अनुवाद की समस्याएँ एवं समाधान

किसी भी साहित्यिक कृति, विशेषतया कविता की वह एक प्रमुख विशेषता होती है कि उसके पीछे एक पूरी की पूरी संस्कृति जुड़ी रहती है और उसी के साथ पौराणिक संदर्भ, सामाजिक मान्यताएँ, ऐतिहासिक घटनाएँ एवं पात्र आदि को बिंबों, प्रतीकों और अलंकारों के माध्यम से व्यक्त किया जाता है। इसीलिए कविता का अनुवाद सामान्य गद्य के अनुवाद से अधिक जटिल होता है। संस्कृति के घटकों में अनुवाद पौराणिक मिथकों को और घटनाओं को प्रतीकों के माध्यम से बिंबात्मकता में पिरोता है। इस प्रकार के रचित काव्य का अनुवाद अनेक प्रकार की समस्याएँ प्रस्तुत करता है। इन समस्याओं की विस्तृत चर्चा यहाँ की जा रही है :

(1) अलंकार-योजना

काव्यानुवाद के संदर्भ में सर्वप्रथम प्रमुख समस्या अलंकार-योजना की आती है। मूल लेखक किसी भाव विशेष को अलंकारों के माध्यम से संप्रेषित करता है और अनुवाद में भी उसी भाव-विशेषज्ञ को उसी अलंकार के द्वारा संप्रेषित करना प्रायः असंभव होता है। अनुवादक इस समस्या का समाधान या तो स्वतंत्र और समरूप अलंकार-योजना की सहायता से करता है या फिर मूल की अलंकार-योजना के अधिक निकट पहुँचने की कोशिश करके। हाँ, अर्थालंकारों को लक्ष्य भाषा में सुरक्षित रखने में अधिकांश अनुवादकों ने सफलता प्राप्त की है। इन दोनों ही प्रकार के अलंकारों के संदर्भ में अनुवादक को यह ध्यान रखना चाहिए कि इन्हें सुरक्षित रखने के प्रयास में कहीं मूल का अर्थ अथवा भाव पीछे न छूट जाए। इसलिए अनुवादक की सफलता इस बात में है कि वह मूल के भाव और अलंकार-योजना को यथासंभव लक्ष्य भाषा में उतारने का प्रयास करे। कुछ अलंकारों का अनुवाद तो लगभग असंभव होता है, जैसे -- श्लेष और यमक।

(i) **श्लेष अलंकार :** श्लेष से अभिप्राय काव्य में ऐसे शब्द के प्रयोग से है जो एक साथ ही दो अथवा अधिक व्यंजना प्रस्तुत करता है। जब ऐसा श्लेष किसी सांस्कृतिक संदर्भ के लिए प्रयुक्त हुआ हो तो उसका अनुवाद किसी प्रकार संभव नहीं होता। हिंदी में भीष्म, भीम, राम, रावण, दुर्योधन, कुंभकर्ण, कृष्ण, सुदामा इत्यादि सांस्कृतिक नाम श्लेष रूप में प्रयुक्त होते हैं। ये सभी शब्द व्यक्ति विशेष का नाम का द्योतन तो

करते ही हैं, साथ ही उसके व्यक्तित्व के गुणों को भी ध्वनित करते हैं, जैसे -- भीम 'शक्ति', भीष्म 'प्रतिज्ञा', राम 'मर्यादा', रावण 'बुराई', दुर्योधन 'दुष्टता', कुंभकर्ण 'नींदप्रियता' आदि। इन सबका अनुवाद यदि अंग्रेजी लक्ष्य भाषा में किया जाए तो ऐसे ही नाम और उनसे जुड़ी सांस्कृतिक प्रतीकात्मक अर्थ-छवियाँ उपलब्ध नहीं हो सकतीं।

सांस्कृतिक श्लेषों के अतिरिक्त व्यक्तिगत श्लेषों के अनुवाद की समस्याएँ भी आती हैं। ये ऐसे श्लेष हैं जिन्हें लेखक अपनी रचना-प्रक्रिया के दौरान प्रयुक्त करता है। उदाहरण के लिए, जयशंकर प्रसाद की 'तुम सुमन नोंचते करते जानी अनजानी' और तुलसीदास की 'साधु चरित शुभ चरित कपासू, निरस विसद गुनमय फल जासू' पंक्तियाँ देखी जा सकती हैं। यहाँ प्रसाद की पंक्ति में 'सुमन' दो अर्थ में प्रयुक्त हुआ है -- 'फूल' और 'हृदय'। यदि इसका अनुवाद अंग्रेजी में किया जाए तो इसमें ऐसा कोई शब्द नहीं मिलेगा जिसके अर्थ 'फूल' और 'हृदय' निकलते हों।

(**ii**) **यमक अलंकार** : ऐसी ही समस्या यमक के अनुवाद में देखने को मिलती है। उदाहरण के लिए, बिहारी के दोहे 'कनक-कनक ते सौ गुनी मादकता अधिकाय', तुलसी की पंक्ति 'मण्डलीक मण्डली प्रताप दाय दालि री', विद्यापति के एक दोहे में 'सारंग' की पाँच बार आवृत्ति और एक अन्य दोहे 'तू मोहन के उरबसी उरबसी समान' में एक ही शब्द का एक से अधिक बार प्रयोग करके उसमें अर्थगत भिन्नता को दर्शाया गया है। अंग्रेजी में 'कनक', 'सारंग', 'उरबसी' आदि शब्दों के ऐसे पर्यायवाची शब्द उपलब्ध नहीं हैं। स्पष्ट है कि इनका अनुवाद करना एक असंभव-सी बात होगी।

(**iii**) **उपमा अलंकार** : काव्यानुवाद में उपमा अलंकारों के अनुवाद की समस्याओं को भी झेलना पड़ता है। इसका अनुवाद प्रायः आसान होता है। उदाहरण के लिए, 'His valour is like a lion' का अनुवाद 'वह शेर की भाँति पराक्रमी है' सहज ही हो सकता है। शारीरिक उपमाओं में शरीर के अंगों की तुलना फूलों, पक्षियों, पशुओं, प्राकृतिक उपादानों आदि से की जा सकती है। जैसे 'हिरणी-सी चाल', 'झील-सी आँखें', 'फूल-सा चेहरा', 'घटाओं-सी जुल्फें', 'कोमल-सी आवाज' का अंग्रेजी में अनुवाद क्रमशः 'gait like a deer', 'eyes like a lake', 'face like a floor', 'locks like clouds', 'voice like a nightingale's melody' आदि किया जा सकता है।

(**iv**) **अनुप्रास अलंकार** : अनुप्रास अलंकार का अनुवाद करते समय समस्या यह सामने आती है कि स्रोत भाषा में पद के अंतर्गत वर्णों की आवृत्ति जिस प्रकार होती है वैसे ही आवृत्तिपरक वर्ण लक्ष्य भाषा में प्रायः नहीं मिलते। फिर भी कुछ सीमा तक अनुवादक इसमें सफल होने का प्रयास कर सकता है; जैसे -- प्रसाद की पंक्ति -- 'रो-रोकर सिसक-सिसक कर कहता अपनी करुण कहानी' का अनुवाद अंग्रेजी में इस

प्रकार किया जा सकता है। ''I sob and say my sad story of sorrow.'' इसी संदर्भ में निम्नलिखित वाक्य देखे जा सकते हैं :

(i) How high His Highness holds his haughty head,

(ii) Bruised breeze blows behind the blamish bank of the river,

निश्चित रूप से ऐसे वाक्यों की आनुप्रासिक ध्वनि साम्यता प्रायः अनुवाद में संभव नहीं हो पाती है। स्रोत भाषा में पद के अंतर्गत वर्ण की आवृत्ति जिस प्रकार होती है, वैसे ही आवृत्तिपरक वर्ण लक्ष्य भाषा में न मिल पाने के कारण ही काव्यानुवाद में अलंकारों का अनुवाद प्रायः अनुवाद की सीमा बन जाता है। विभिन्न अलंकारों के कुछ सफल उदाहरण यहाँ प्रस्तुत हैं। पहला उदाहरण फिट्ज्जेराल्ड की रुबाई का है, जिसका अनुवाद बच्चन जी ने किया है :

Ah, make the most of what we yet may spend,
Before we too into the Dust Descent;
Dust into Dust, and under Dust, to lie,
Sans Wine, sans Song, sans Singers, and--sans End![6]
अरे, अब भी जो कुछ है शेष भोग वह सकते हम स्वच्छंद,
राख में मिल जाने के पूर्व न क्यों कर लें जी-भर आनंद,
गड़ेंगे जब हम होकर राख, राख में तब फिर कहाँ बसंत,
कहा स्वरकार, सुरा, संगीत, कहाँ सूनेपन का अंत[7]।

मूल अवतरण में कवि ने मानव जीवन की क्षणभंगुरता एवं अस्थिरता के भाव को अभिव्यक्ति प्रदान करने का प्रयास किया है। इसके लिए मूल कवि ने 'Dust' शब्द की पुनरावृत्ति की है और इसी भाव को अनुवादक ने हिंदी में 'राख' शब्द की पुनरावृत्ति द्वारा प्रस्तुत किया है। इसी प्रकार मृत्यु के पश्चात् के वातावरण की रचना के लिए मूल कवि ने अंतिम पंक्ति में 'S' ध्वनि की पुनरावृत्ति की है और ऐसा ही अनुवाद में भी 'स' ध्वनि की पुनरावृति द्वारा किया गया है। इस प्रकार मूल और अनुवाद में भाव-साम्य और अलंकार-साम्य को सुरक्षित रखने का अच्छा प्रयास किया गया है।

ऐसे ही डब्ल्यू.बी. यीट्स की पंक्ति 'But dear, cling close to me'[8] का बच्चन जी द्वारा किया गया हिंदी अनुवाद 'लेकिन प्यारी, अब तुम मेरे आलिंगन से अलग न होना'[9] देखा जा सकता है। बच्चन जी ने कभी अलग न होने की भावना और उससे जुड़ी आत्मीयता को सफलतापूर्वक सुरक्षित रखा है। 'cling close' की अनुप्रासता 'अब तुम मेरे आलिंगन से अलग न होना' में भी द्रष्टव्य है।

अर्थालंकार के संदर्भ में तो अनुवादकों ने अत्यधिक सफलता प्राप्त की है। इसका एक अच्छा उदाहरण हमें जॉन कीट्स की पंक्तियों का यतेंद्र कुमार द्वारा किए गए अनुवाद

में देखने को मिलता है :

It a touch sweet Pleasure melteth,
Like to bubbles when rain petleth.[10]
आनंद मधुर तो गल जाता छूने से
पानी में जाते फूट बगूले जैसे।[11]

कीट्स ने अपनी पंक्तियों में मानव जीवन की क्षणभंगुरता की तरह आनंद की क्षणभंगुरता का भाव उपमा द्वारा अभिव्यक्त किया है। ठीक यही भाव उपमा के द्वारा अनुवादक ने भी अभिव्यक्त किया है। अनुवादक की सफलता तीन प्रकार के साम्य से देखी जा सकती है -- भाव-साम्य, अलंकार-साम्य, और ध्वनि-साम्य (bubbles pelteth. बगूले/पानी)।

(2) मिथकीय-सांस्कृतिक अभिव्यक्तियाँ

काव्यानुवाद में दूसरी प्रमुख समस्या मिथकीय एवं सांस्कृतिक अभिव्यक्तियों के लिए लक्ष्य भाषा में समतुल्य अभिव्यक्तियों के उपलब्ध न होने के संदर्भ में है। ये अभिव्यक्तियाँ पात्रों एवं स्थानों के नामों, रचनाओं के शीर्षकों, घटनाओं आदि के रूप में प्रस्तुत होती हैं। ये सभी अपने पीछे एक संस्कृति विशेष को लिए हुए चलते हैं। ऐसी स्थिति में अनुवादक का इनकी पृष्ठभूमि से अवगत होना अति आवश्यक होता है, अन्यथा वह अनुवाद के साथ न्याय नहीं कर पाएगा। संस्कृति प्रत्येक राष्ट्र एवं समाज की अपनी होती है और प्रत्येक रचनाकार अपनी रचना में अपनी संस्कृति को अपने ढंग में व्यक्त करता है। किंतु अनुवादक के लिए भाषा तथा संस्कृति दोनों ही नई होती हैं। अतः वह संस्कृति के प्रति प्रायः उतना सहज नहीं हो पाता और अनुवाद के साथ पूर्ण न्याय नहीं कर पाता। उदाहरण के लिए :

क्षमा बड़न को चाहिए छोटन को उत्पात।
का रहीम हरि को घटियो जो भृगु मारी लात।।

पंक्तियों में वर्णन किए गए पौराणिक मिथक से परिचित होना अनुवादक के लिए आवश्यक है। इसी प्रकार सूर की निम्नलिखित पंक्तियों :

गज निरखी फहरनि बसन की।
ललकि लग्यौ मुख कमल विलोकन।
भूल गयौ सुधि ग्राह ग्रसन की।

में मगरमच्छ के मुँह में फँसे उस गज की पौराणिक कथा का उल्लेख है, जिसकी पुकार सुनकर विष्णु भगवान गरुड़ पर सवार होकर रक्षा के लिए दौड़ आए थे। यहाँ विचारणीय बात यह है कि अनुवाद की भाषा में न तो गरुड़, विष्णु, पितांबर आदि के लिए समतुल्य

पर्याय हैं और न ही इस प्रकार की कोई पौराणिक कथा। ऐसे स्थलों पर व्याख्या ही संभव होती है, अनुवाद नहीं।

हिंदी की मध्यकालीन कविता में इंगला-पिंगला, कुंडलनी, सुषुम्ना, कमल, चक्र, ब्रह्मरंध्र, सप्त सोपान, अनहद नाद इत्यादि शब्दों का बार-बार प्रयोग हुआ है। हठयोग साधना के कितने ही पक्षों का जिक्र वहाँ पर किया गया है। द्वैतवाद, अद्वैतवाद, शुद्ध द्वैतवाद जैसी शब्दावली का बहुतायत में प्रयोग हुआ है। कबीर और जायसी की रहस्यवादी एवं दार्शनिक प्रवृत्तियाँ जब हम भारतवासियों की समझ में ही नहीं आती हैं तो अनुवाद की भाषा का पाठक उन्हें कैसे आत्मसात कर सकेगा? इसी प्रकार 'चूहा' का सामान्य अर्थ जानवर है, किंतु पौराणिक संदर्भ में 'गणेश जी की सवारी' है और ऐतिहासिक संदर्भ में 'पहाड़ी चूहा' का अर्थ 'शिवाजी' हो जाता है। 'विष्णु' सामान्य व्यक्ति का नाम भी है और 'लक्ष्मीपति' भी। मुस्लिम संस्कृति में 'खतना', 'करबला', 'कयामत' आदि अनेक संदर्भ अनुवाद में समस्या उत्पन्न करते हैं।

अनुवादक प्रायः इन सांस्कृतिक अभिव्यक्तियों के लिए लक्ष्य भाषा में समतुल्य अभिव्यक्तियाँ खोजने में असफल ही रहता है और यही स्थिति अनुवाद की सीमा के रूप में प्रस्तुत होती है। उदाहरण के लिए, 'Satan, 'Christ, 'Lucifer' जैसे पात्रों के नामों, 'Pandemonium' और 'Garden of Eden' जैसे स्थानों के नामों, 'The Fire Sermon' तथा 'The Game of Chess' जैसे शीर्षकों तथा 'Crucification of Christ' और 'Satanic Fall' जैसी घटनाओं के लिए हिंदी में समतुल्य अभिव्यक्तियाँ उपलब्ध नहीं हैं। इनके लिए समीपतुल्य अभिव्यक्तियों से काम चलाना ही अनुवादक की विवशता होती है। उदाहरण के लिए, 'Satan' के लिए 'शैतान', 'Christ' के लिए 'बुद्ध', 'Lucifer' के लिए 'यमराज', 'Pandemonium' के लिए 'लंका', 'Garden of Eden' के लिए 'स्वर्ग', 'The Fire Sermon' के लिए 'अग्नि उपदेश', 'The Game of Chess' के लिए 'शतरंज का खेल' जैसी समीपतुल्य अभिव्यक्तियों का प्रयोग किया जा सकता है, यद्यपि शैतान, बुद्ध, यमराज, लंका, स्वर्ग आदि बिलकुल उसी अर्थ के वाहक नहीं हैं जिस अर्थ में अंग्रेजी के शब्दों को किया गया है।

(3) प्रतीक-योजना

प्रतीकों के अनुवाद की समस्या भी काव्यांतर में एक महत्त्वपूर्ण समस्या होती है। मूल रचना की काव्य-भाषा में ये प्रतीक कई प्रकार से संयुक्त रहते हैं। प्रतीक मूल रचना में विभिन्न प्रकार की प्राकृतिक स्थितियों, सामाजिक-सांस्कृतिक संदर्भों एवं पात्रों की विभिन्न मानसिकता को दर्शाते हैं। लक्ष्य भाषा में प्रतीकों का अनुवाद करते समय अनुवादक को इस तथ्य की ओर सतर्क रहना चाहिए कि उस प्रतीक विशेष की अर्थगत

संवेदना स्रोत भाषा एवं लक्ष्य भाषा में एक जैसी हो और उनकी गुणात्मकता में अधिक अंतर न हो। प्रतीकों के अनुवाद में सबसे अधिक कठिनाई उस समय आती है जब अनुवादक उस प्रतीक की अर्थगत, संदर्भगत एवं गुण संबंधी पृष्ठभूमि से परिचित नहीं होता है। ऐसा प्रायः विदेशी संस्कृति से संबंधित प्रतीकों के अनुवाद में होता है। अपने देश की जानी-पहचानी परिस्थितियों से संबंधित प्रतीकों के अनुवाद में अधिक कठिनाई नहीं आती। उदाहरण के लिए, अंग्रेजी के रोमांटिक कवियों की कविताओं में प्रयुक्त किए गए अधिकांश प्रतीक प्रकृति से लिए गए हैं और उनका अनुवाद सहज ही किया जा सकता है। शैली की कविता 'ओड टू वेस्ट विंड' में 'वेस्ट विंड' और 'डेड लीव्स' क्रमशः 'परिवर्तन' और 'पुरानी मान्यताओं' के प्रतीक हैं। ऐसे ही फूल, काँटे, सागर, बादल, आकाश आदि प्रतीकों का अनुवाद सहज ही हो सकता है।

सांस्कृतिक संदर्भों के सूचक प्रतीकों का अनुवाद अपेक्षाकृत कठिन होता है; जैसे -- 'सुदामा के चावल', 'मारीच की चाल', 'जटायु-सा विवश', 'चित्रकूट का घाट', 'लक्ष्मण रेखा', 'चक्रव्यूह की रचना' आदि। स्पष्ट है कि इनके पीछे सांस्कृतिक संदर्भ हैं, जिनका ज्ञान अनुवादक के लिए आवश्यक होता है। लक्ष्य भाषा में चूँकि इनके समतुल्य पर्याय उपलब्ध नहीं होते, इसलिए इनका भावानुवाद ही संभव होता है।

प्रतीकों का अनुवाद करते समय इस बात पर ध्यान देना होता है कि स्रोत भाषा में प्रतीकात्मक रूप में जो वस्तु ग्रहण की गई है, वह वस्तु लक्ष्य भाषा में वही अर्थ देती है या नहीं, जैसे --

हर शाख पे उल्लू बैठा है।
अंजामे गुलिस्ताँ क्या होगा?

का अर्थ मूल भाषा में यह है कि हर पग पर अनिष्टकारी लोग बैठे हैं तो देश का उपवन उजड़कर ही रहेगा। किंतु इसमें 'उल्लू' प्रतीक की अमरीकन अंग्रेजी में यह व्यंजना सार्थक नहीं होगी, क्योंकि वहाँ 'उल्लू' विवेक का प्रतीक है। इसी प्रकार चूहे, गधे, बैल आदि शब्दों का भी प्रतीकात्मक प्रयोग किया जाता है, परंतु अंग्रेजी में इनके पर्यायवाची शब्दों का प्रयोग बहुत सोच-समझकर करना होगा। उदाहरण के लिए 'गधे' का अंग्रेजी पर्याय 'donkey' है किंतु 'मूर्खता के लक्षणों' की दृष्टि से 'donkey' शब्द का प्रयोग गलत होगा। इसके लिए 'ass' शब्द का प्रयोग करना होगा। इसी प्रकार 'सूरज का चमकना' पश्चिमी देशों में, जहाँ बहुत अधिक सर्दी पड़ती है, 'आनंद' का प्रतीक है। लेकिन भारत में स्थिति इसके विपरीत है, क्योंकि यहाँ सूरज का चमकना आनंद का प्रतीक न होकर सामान्य स्थिति का प्रतीक है। इसी प्रकार 'कमीनेपन' को लक्षित करने के लिए 'कुत्ते' का अंग्रेजी पर्याय 'dog' न होकर 'cur' करना होगा। इसी प्रकार, 'वर्षा'

और 'बादल' जैसे शब्द भारतवर्ष में हर्ष और उल्लास के प्रतीक हैं, किंतु पश्चिमी देशों में उदासी के सूचक हैं। मोहन राकेश के 'आषाढ़ का एक दिन' नाटक में मल्लिका को वर्षा में भीगना कितना सुखद प्रतीत होता है, यह सब जानते हैं। ऐसी स्थिति में अंग्रेजी में अनुवाद करते समय सावधानी बरतने की आवश्यकता है।

(4) बिंब-योजना

कवि मानव के छायाचित्रों को सुरक्षित रख पाना अनुवादक के लिए अग्नि-परीक्षा जैसा होता है। बिंबवादियों के अनुसार कविता का उद्देश्य प्रत्यक्षीकरण के किसी विशिष्ट क्षण का बिंब के माध्यम से पाठक के समक्ष उपस्थित करना है। बिंबानुवाद में अनुवादक की समस्या उस विशिष्ट क्षण को, उसकी अनुभूति को सुरक्षित रख पाने की ही है, मनोजगत की उस सूक्ष्म अनुभूति-भंगिमा, जिसे तथ्य-कथ्य द्वारा प्रकट नहीं किया जा सकता, को अनुवाद के द्वारा लक्ष्य भाषा में ढालने की है। जिस प्रकार हुल्मे कविता के प्रत्येक शब्द का आत्यंतिक रूप से उपयुक्त होना अनिवार्य मानते हैं, उसी प्रकार बिंब-शब्दों के अनुवाद का उपयुक्त होना भी अनिवार्य हो जाता है। एडिथ सिटवेल के काव्य में जिस प्रकार बिंबों का उद्देश्य प्रत्यक्ष एवं तात्कालिक प्रभाव की सृष्टि करना है, अनुवाद के क्षणों में भी अनुवादक के लिए यह प्रभाव सुरक्षित रखना अपेक्षित होता है। बिंबों के माध्यम से कवि जिस कल्पना-शक्ति के सौष्ठव का नियोजन करता है, जिस न्यूनतम संभावित परिधि में अधिकतम निश्चित अर्थ की अभिव्यंजना करता है, जिस नई चेतना की संक्षिप्त एवं समग्र अभिव्यक्ति करता है, अनुवादक के लिए उसे लक्ष्य भाषा में उतारना ही उसकी सबसे बड़ी चुनौती बन जाता है।

अनुवादक का यह उत्तरदायित्व देखने में जितना सरल एवं सहज दिखाई देता है, उतना है नहीं। वास्तव में यह एक श्रमसाध्य तथा कठिन व्यापार है। प्रसाद के 'कामायनी' जैसे दार्शनिक एवं मनोवैज्ञानिक महाकाव्य, मुक्तिबोध की 'अंधेरे में' और टी.एस. इलियट की 'दि वेस्ट लैंड' जैसी प्रतीकों, बिंबों तथा मिथकीय सादृश्यों से बोझिल कविताओं का अनुवाद क्या पलक झपकते ही हो जाएगा? एज़रा पाउंड, मलार्मे, रिम्बाद और यीट्स जैसे कवियों की बिंबात्मक एवं प्रतीकात्मक कविताएँ क्या अनुवादक के लिए एक चुनौती भरा काम नहीं है। कॉलरिज की 'कुबला खान' जैसी सुपर नैचुरल एटमासफियर के बिंबों में गुँथी हुई कविता और कीट्स के संबोधन-गीतों के बिंबगत सौंदर्य को लक्ष्य भाषा में उतार पाना क्या कोई सहज कार्य है? निश्चय ही इस प्रकार के अनुवाद में अनुवादक की काफी सतर्कता अपेक्षित होती है, वरना अर्थ का अनर्थ होते देर नहीं लगती। उदाहरण के लिए, यदि इलियट की 'दि वेस्टलैंड' की प्रथम पंक्ति 'April is the cruellest month' अनुवादकों को बिंबानुवाद करने के लिए दी जाए तो अधिकांश

अनुवादक इसका अनुवाद 'अति क्रूर है अप्रैल मास' ही करेंगे। अब यह अनुवाद तो ठीक है, किंतु बिंबानुवाद की दृष्टि से नहीं। इसमें यदि अनुवादक सतर्कता बरतेगा तो वह ऐसा हरगिज नहीं करेगा, अपितु गहराई में जाकर इसका अनुवाद 'टीस रहे हैं वसंत के जख्म' या 'उजड़े हुए का क्या वसंत' ही करेगा। अनुवादक के सामने समस्या खड़ी होती है कि प्रसाद की पंक्ति 'रो-रोकर, सिसक-सिसककर कहता हूँ करुण कहानी' का अनुवाद 'I tell my tale while weeping' करें या 'While sobbing I say my sad story of sorrow.' निश्चय ही बाद वाला अनुवाद बेहतर है, क्योंकि इसमें 'सिसकते' और 'करुण कहानी' के बिंबों को 'Sobbing' और 'sad story of sorrow' के द्वारा लक्ष्य भाषा में सुरक्षित रखा गया है और अनुप्रास के सौंदर्य को सुरक्षित रखने के लिए भी यही उपयुक्त लगता है। इसी प्रकार कीट्स की पंक्ति -- 'Beauty is truth, truth is beauty' का अनुवाद -- ''सुंदरता सत्य है, सत्य ही सुंदर है'' किया जाए या ''सुंदरता परम सत्य की अभिव्यक्ति है।'' शैली की पंक्ति -- ''If Winter comes, can Spring be far behind'' का अनुवाद ''यदि शीत ऋतु आती है, तो या वसंत ऋतु नहीं आएगी?'' किया जाए या ''सुख व दुःख जीवन का शाश्वत क्रम है।'' ऐसी समस्याएँ प्रायः अनुवाद के समक्ष आती हैं कि 'winter' एवं 'spring' जैसे बिंबों को यथावत् लक्ष्य भाषा में रखा जाए या उनका प्रतीकात्मक अर्थ ही लिखा जाए। ऐसी ही कुछ समस्याएँ उस समय अनुवादक के सामने आती हैं जब उसे मलार्म, एज़रा पाउंड, बोरिस पास्तरनक जैसे कवियों की कविताओं के बिंबों एवं प्रतीकों का अनुवाद करना पड़ता है। उदाहरण के लिए, मलार्म की कविता 'अपारिशन' की पंक्ति -- 'in the calm of vaporous flowers' का बिंबानुवाद करते समय उसे सोचना पड़ेगा कि इसका अनुवाद 'सौरभ-युक्त पुष्पों की सुगंध में' किया जाए या 'सुगंधित फूलों की शांति में' या फिर 'सुमनों की महक के बीच'। रिम्बाद की पंक्ति -- 'Low sun with mystic horrows stained' का बिंबानुवाद ''अलौकिक आतंक से युक्त झुका हुआ है सूर्य'' किया जाए या ''रहस्यमय भय के धब्बों से युक्त डूबता सूर्य''। कोर की पंक्ति -- 'as a flower/Belong to its perfume asleep' में 'perfume asleep' बिंब का पुनरुत्पादन 'सुवासित तंद्रा' हो या 'तंद्रिल सुवास'। पास्तरनक की कविता 'दि विंड' की पंक्ति -- 'The wind, crying and complaining' में 'complaining' का बिंबानुवाद 'शिकायत कर रही' होना चाहिए अथवा कुछ और, जैसे 'चीखती हुई', 'चिल्लाती हुई', या फिर 'तीव्र गति से'। इसमें तनिक भी संदेह नहीं है कि ऐसी समस्याओं से केवल एक प्रतिभाशाली कवि-अनुवादक ही जूझ सकता है। क्या 'कामायनी' की पंक्ति -- 'बिखरी अलकें ज्यों तर्क जाल' का और रामचंद्र शुक्ल के सूत्रात्मक वाक्य -- 'भक्ति धर्म की

रसात्मक अनुभूति है' का बिंबानुवाद सहज ही हो जाएगा? अनुभवहीन एवं प्रतिभाहीन अनुवादक ऐसे वाक्यों का अनुवाद करते समय अर्थ का अनर्थ ही करेगा, जबकि एक सृजनात्मक प्रतिभावान अनुवादक अपनी सूझ-बूझ से इनका अनुवाद क्रमशः 'Unbound locks like netted logic' तथा 'singing epistle is an ecstatic experience of religion' ही करेगा।

अब कुछ और उदाहरण यहाँ पर दिए जा रहे हैं, जिनका बिंबानुवाद भी स्रोत भाषा से लक्ष्य भाषा में पुनरुत्थान से ही संभव होगा। जैसे इलियट की कविता 'हॉलोमेन' की अंतिम दो पंक्तियों :

This is the way the world ends.
Not with a bang but a whimper.

का अनुवाद

इस प्रकार होता है अंत विश्व का
धमाके से नहीं अपितु रिरियाते हुए

होगा। एज़रा पाउंड की कविता 'फिश एंड दि शेडी' की पंक्तियों --

Light as the shadow of the fish,
That falls through the pale green water.

का अनुवाद

प्रकाश जैसे रंग-बिरंगे पानी में
तैरती मछली की प्रतिच्छाया

होगा। इसी प्रकार इलियट की 'दि लव सॉन्ग ऑफ प्रुफाक' की निम्न पंक्तियों --

Let us go then you and I,
When the evening is spread out against the sky
Like a patient etherised upon the table.

का अनुवाद इस प्रकार ही संभव होगा --

आओ चलें हम तुम,
जबकि संध्या गगन पर फैल जाए
मेज पर पड़े एक बेहोश रोगी की तरह

इलियट की इसी कविता से कुछ अन्य उदाहरणों का बिंबानुवाद दृष्टव्य है --

(1) 'The streets that follow like a tedious argument of insidious intent.'
(2) 'The yellow fog that rubs its back upon the window panes.'
(3) 'The restless night in one night cheap hotel.'

इन पंक्तियों का अनुवाद क्रमशः इस प्रकार हो सकता है :

(1) 'अप्रिय आकांक्षा के कठिन तर्क जैसी गलियाँ'

(2) 'खिड़की के शीशों से टकराती पीली धुंध'

(3) 'एक सस्ते होटल में अविश्रांत रात्रि'

इलियट की 'दि वेस्टलैंड' के कुछ बिंबों और उनके पुनरुत्पादन के कुछ उदाहरण यहाँ प्रस्तुत हैं : 'A handful of dust' के लिए 'मुट्ठी भर मिट्टी', 'Withered stump of time' के लिए 'समय के नष्टचिह्न', 'Foot steps falling on stair' के लिए 'सीढ़ियों पर पदचाप', 'The stony rubbish' के लिए 'पथरीले खंडहर', 'Frosty silence' के लिए 'गिरते मीनार' इत्यादि।

(5) अर्थगत तत्त्व का संप्रेषण

काव्यानुवाद की अगली समस्या अर्थ और यथासंभव अर्थगत तत्त्व के संप्रेषण की है। स्रोत भाषा में प्रयुक्त शब्द के लिए लक्ष्य भाषा में अनुवादक को यों तो बहुत से शब्द प्राप्त हो सकते हैं, किंतु मूल शब्दावली में निहित अभिव्यंजना जिस अर्थ-तत्त्व की ओर संकेत कर रही है, अनुवादक का दायित्व तो उसके समकक्ष अर्थवाहक शब्दावली की खोज करना है। निश्चय ही ऐसा शब्द शब्दकोश में सहज ही उपलब्ध नहीं हो सकता। उदाहरण के लिए, हिंदी का 'कंचुक' शब्द दुपट्टे या ओढ़नी के लिए प्रयोग में आता है, परंतु भक्त कवियों ने इसे 'माया का आवरण' के लिए प्रयुक्त किया है। अब यदि इसी अर्थ में इस शब्द को अंग्रेजी भाषा में संप्रेषित करना हो तो 'open cloth' जैसा शब्द इसमें निहित व्यंजना का वाहक नहीं हो सकता। यही नहीं, अंग्रेजी की पौराणिकता में माया की अवधारणा न होने के कारण अन्य कोई शब्द भी सहज उपलब्ध नहीं हो सकता। इसलिए अनुवादक को अंग्रेजी पौराणिकता से 'satan' को चुनकर और और उसका विश्लेषण रूप में प्रयोग करते हुए इसका अनुवाद 'satanic veil' ही करना होगा, केवल 'veil' ही इस अर्थ का व्यंजक नहीं होगा।

कविता चूँकि सांस्कृतिक संदर्भों में उगती है, इसलिए उसमें पौराणिकता और अन्य संस्कारात्मक शब्दों का प्रयोग सहज ही हो जाता है। अस्तु, अनुवादक के लिए ऐसे संदर्भों का अनुवाद अर्थ के स्तर पर कर पाना एक बड़ी चुनौती हुआ करती है। इस प्रकार की कुछ सफलता के निकट के उदाहरण मुक्तिबोध की 'मुझे पुकारती हुई पुकार' और 'अँधेरे में' जैसी कविताओं में टी.एस. इलियट की 'दि वेस्टलैंड' के कुछ अंशों के अर्थानुवाद में देखे जा सकते हैं :

(1) And voices singing out of empty cisterns and exhausted wells.
In this decayed hole among the mountains.[12]
पुकार ने समस्त खोल दी छिपी प्रवंचना
कहा कि शुष्क है अथाह यह कुआँ

(2) Sweet is dry and feet are in the sand
मैं उदास रात में
हार की प्रतल्प रेत मलता रहा।

(3) On the memories trapped by beneficient spiders
कि अंधकार अंतराल न लगे महीन शाम जाल
घृण्य कीट जो कि जोड़ दे दिवाल को दिवाल से

यहाँ यह कहना अभीष्ट होगा कि मुक्तिबोध का उद्देश्य इलियट की 'दि वेस्टलैंड' का अनुवाद करना नहीं था। पर फिर भी वे उस कविता के अर्थ-तत्त्व से प्रभावित अवश्य हुए थे और इसी का प्रतिफलन थीं, उनकी कविताएँ। मूल के अर्थ-तत्त्व को लक्ष्य भाषा में संप्रेषित करने के लिए वे काफी हद तक सफल हुए। यदि मुक्तिबोध 'दि वेस्टलैंड' का अनुवाद भी करते तो शायद तब भी इस शब्दावली का प्रयोग करते, क्योंकि अर्थ-संप्रेषण के लिए शब्दानुवाद वह नहीं कर सकते थे।

(6) लक्ष्य भाषा में समतुल्यता की खोज

मूल रचना को लक्ष्य भाषा के अनुरूप ढालने के लिए अनुवादक को यथासंभव स्वतंत्रता देना आवश्यक हो जाता है। उसे कुछ अंशों को त्यागना और कुछ अंशों को अपनी ओर से जोड़ना पड़ता है। लक्ष्य भाषा की समतुल्यता की खोज के लिए ऐसा करना जरूरी हो जाता है। ध्यान रखने योग्य बात यह है कि भारतीयकरण अथवा रूप-परिवर्तन केवल यांत्रिक कार्य-मात्र ही न हो। भारतीय तुल्याभिधान प्रस्तुत करते समय अनुवादक को यह ध्यान रखना चाहिए कि वह अनुवाद में उस परिवेश अथवा प्रभाव की सृष्टि करे जो मूल में वर्णित संज्ञा-शब्द करते हैं। इसका सुंदर उदाहरण हमें पोप के 'ऐस्से ऑन क्रिटिसिज़्म' के बाबू जगन्नाथदास 'रत्नाकर' द्वारा किए गए हिंदी काव्यानुवाद 'समालोचनादर्श' में देखने को मिलता है। पोप ने जिस संदर्भ में 'learned Greece' का अभिवंदन किया है, वहाँ 'रत्नाकर' ने 'भारती' का यशोगान किया है। पोप ने जिस प्रकार होमर, होरेस, लांजाइनस इरेसमय को साहित्यिक रूप में प्रतिष्ठित किया है, उस रूप में 'रत्नाकर' जी ने वाल्मीकि मुनि, जयदेव, पंडितराज जगन्नाथ, नागेश भट्ट को प्रतिष्ठित किया है। इस संदर्भ में इस अंश को देखा जा सकता है :

When ajax strives some rock's vast weight to throw,
The line too labours, and the words move slow;
Not so, when swift Camilla scours the plain,
Flies o'er he' unbending corn, and skims along the main.[13]
जहँ रावण ले जान चहत हठि हरिगिरि भारी,
हीहि छंदगति क्लिष्ट शब्दहू शिथिलित चारी

पै ऐसी नहिं जँह हनुमत धावन बनि धावत
लाँघत सिंधु निसंक, लंकगढ़ कूदि जरावत।[14]

प्रस्तुत दोनों काव्यांशों की तुलना करने पर ज्ञात होता है कि अनुवादक ने अर्थ तत्त्व के संप्रेषण पर ही अधिक ध्यान दिया है। इसके लिए उन्होंने लक्ष्य भाषा के अनुरूप ही शब्दावली का प्रयोग किया है। सांस्कृतिक एवं पौराणिक संदर्भ में भी ऐसा ही किया गया है। 'rock's vast weight', 'The line too labours', 'words move slow', 'swift Camila scours the plain', 'files o'er the unbending corn', 'skims along the main' के लिए क्रमशः 'हरिगिर भारी', 'छंदगति क्लिष्ट', 'शब्दहू शिथिलता चारी', 'हनुमत धावत बनि धावन', 'लाँघत सिंधु निसंक', 'लंकगढ़ कूदि जरावत' का भारतीयकरण करना सफल अनुवाद के ही उदाहरण हैं। अन्यथा लक्ष्य भाषा का पाठक मूल के अर्थ को सहज रूप से ग्रहण नहीं कर सकता था। मूल में यह संदर्भ जितने क्लिष्ट होते गए हैं, अनुवादक उतनी ही पैनी दृष्टि से भारतीय साहित्य से उपयुक्त समतुल्यों की खोज करता रहा है। अनुवाद ने प्रस्तुत काव्यांश में भारतीय पाठक के लिए रावण के बल-पराक्रम और हनुमान की उछल-कूद के द्वारा एक परिचित-सा वातावरण बना दिया है। यह अनुवाद की सफलता ही कही जाएगी। इसी संदर्भ में 'रत्नाकर' जी के इसी अनुवाद का एक अन्य अंश देखा जा सकता है --

Such was Roscommon--not more
learn'd than good,
With manners gen'rous as his noble blood;
To him the wit of Greece and Rome was known,
And ev'ry author's merit, but his own.
Such late was Walsh--the Muse's judge and friend,
Who justly knew to blame or the commend.[15]

प्रस्तुत पंक्तियों में पोप ने रास्कोमन और वैल्श की साहित्यिक गुणों के कारण प्रशंसा की है। अब हिंदी में इन्हें कोई नहीं जानता, इसलिए हिंदी पाठक के लिए अनिवार्य रूप से इनके समतुल्य साहित्यिक गुणों के व्यक्तियों की ही खोज करनी होगी। 'रत्नाकर' जी ने इस काव्यांश का हिंदी अनुवाद इस प्रकार किया है :

ऐसा केशव ज्यों पंडित त्योंहि सुशील बर
जैसो श्रेष्ठ कुलीन उदार चरित तैसो घर
सुभग संस्कृतवरसाहित्य ज्ञान जेहि माहीं
प्रति कवि को गुनगान, गर्व अपने को (नाहीं)
ऐसा अबहिं भयो हरिचंद मित्र कविता को,
जाननहारा उचित पंथ अस्तुति, निंदा को।[16]

प्रस्तुत अनुवाद में अनुवादक ने रास्कोमन और वैल्श की तुलना में दो ऐसे भारतीय कवियों का समतुल्य रूप में जिक्र किया है जो केवल नाम में भिन्न हैं, लेकिन गुण-साम्य के कारण एक-दूसरे के बहुत करीब पड़ते हैं। इनके नाम बदल देने से ही अनुवाद में मूल के अर्थ-तत्त्व का पूर्ण रूप से लक्ष्य भाषा में संप्रेषण हो गया है। रास्कोमन और वैल्श के लिए क्रमशः केशव और हरिचंद कवियों का वर्णन किया गया है। ये दोनों ही कवि साहित्यिक गुणों और साहित्य के इतिहास के कालक्रम के अनुसार भी एक-दूसरे के नजदीक दिखाई पड़ते हैं। 'not more learned than good', 'with manners generous', 'his noble blood', 'every author's merit', 'The muse's judge and friend' के लिए समतुल्य अभिव्यक्तियाँ क्रमशः 'पंडित त्योंहि सुशील बर', 'उदार चरित', 'श्रेष्ठ कुलीन', 'प्रति कवि को गुनगान', 'मित्र कवियों की' बहुत अच्छी बन पड़ती हैं।

(7) ध्वनि-योजना

काव्यानुवाद के संदर्भ में अगली समस्या ध्वनि-विधान की है। ध्वनि अथवा शब्द-सापेक्ष होने के कारण अनुवाद में मूल के शिल्प-सौंदर्य को सुरक्षित रख पाना कोई आसान काम नहीं है। इस संदर्भ में नगीन चंद सहगल का कथन महत्त्वपूर्ण है -- ''अर्थ अथवा भाव का परिवर्तन अनुवाद का सामान्य नियम होने के कारण अनुवादक को स्रोत भाषा से भिन्न लक्ष्य भाषा की शब्दावली में मूल के कथ्य का कथन होता है। इस शब्द-परिवर्तन अथवा ध्वनि-परिवर्तन के कारण अनुवाद में वह कार्य संभव नहीं हो पाता, जो मूल लेखक अपनी भाषा की ध्वनियों के सहारे पूरा करता है।''[17] फिर भी अनुवादक इस समस्या से जूझता है और मूल से भिन्न ध्वनियों द्वारा भी वैसा ही प्रभाव उत्पन्न करने की कोशिश करता है। नगीनचंद सहगल ने अपनी पुस्तक में कुछ अच्छे उदाहरण दिए हैं। यहाँ उन्हीं के कुछ उदाहरण लेकर चर्चा की गई है। इस संदर्भ में वड्र्सवर्थ की इस पंक्ति को देखा जा सकता है -- 'All bright and glittering in the smokeless air'[18] इस पंक्ति में लेखक 'bright' और 'glittering' शब्दों के ध्वनि-संयोजन द्वारा पाठक पर जगमगाहट या झिलमिलाहट का प्रभाव डालना चाहता है। हिंदी के लिए 'जगमग' और 'झिलमिल' शब्द उपलब्ध हैं और वे ध्वनि के नाते अंग्रेजी से भिन्न होते हुए भी प्रभाव की दृष्टि से लगभग एक समान हैं। इसलिए अनुवादक श्री यतेंद्र कुमार ने अपने अनुवाद में इन्हीं ध्वनियों का प्रसंगानुसार प्रयोग कर मूल जैसा प्रभाव उत्पन्न करने का सफल प्रयास किया है और साथ ही अर्थ-संप्रेषण भी भली-भाँति किया है -- ''जगमग झिलमिल करते निर्धूम अनिल के भीतर।''[19] वड्र्सवर्थ की ही एक अन्य पंक्ति -- 'The river glideth at his own sweet will'[20] में मंथर गति से बहती सरिता का चित्र प्रस्तुत किया गया है और मृदु-मंथर ध्वनियों के काव्य-बंधन के लिए मृदु-कोमल वर्ण-संयोजन

का सहारा लिया है। इसके हिंदी अनुवाद 'सहज सरकती जाती सरिता अपनी ही इच्छा पर' में 'र' वर्ण की आवृत्ति द्वारा ध्वनि-संयोजन करने का सफल प्रयास किया गया है।

इस संदर्भ में इस समस्या पर और विचार करने हेतु पोप के 'ऐस्से ऑन क्रिटिसिज़्म' का एक अंश प्रस्तुत है :

'Tis not enough no harshness gives offence;
The sound must seem an Echo to the sense,
Soft is the strain when Zephyr gently blows,...
But when loud surges lash the sounding shore,
The hoarse, rough verse should like the torrent roar;[21]

प्रस्तुत अंश ध्वनि के सिद्धांत और व्यवहार की दृष्टि से महत्त्वपूर्ण है। स्वयं पोप ने यहाँ प्रसंग एवं भावानुकूल ध्वनि-संयोजन के महत्त्व पर प्रकाश डाला है। प्रस्तुत काव्यांश के हिंदी अनुवाद में अनुवादक ने मूल के इसी सौंदर्य को सुरक्षित रखा है और इसे लक्ष्य भाषा के अनुरूप ढालते हुए एक सफल प्रयास किया है :

एतोही नहि इष्ट सदा कविता में, भाई,
कै कर्कषता सहृदय को न होहि दुखदाई।
परमावश्यक धर्म, वरन, यह सुमति प्रकासैं
कै रचना के शब्द अर्थ प्रतिध्वनि से भासैं,
चहियत कोमल बरन पवन जहँ मंद बहत वर,
सरिता सरल चाल बरनन हित छंद सरल तर,
पै भैरव तरंग जहँ रोरित तट टकरावैं,
उत्कष्ट, उद्धत वरण, प्रबल प्रवाह लौ आवैं।[22]

उपर्युक्त पंक्तियों में अनुवादक ने मंथर गति से बहने वाली वायु और सरिता को ध्यान में रखते हुए जहाँ हिंदी अनुवाद में आत्मप्राण एवं अघोष ध्वनियों 'चहियत कोमल बरन पवन जहँ मंद बहत वर' और 'सरिता सरल चाल बरनन हित छंद सरल तर' का प्रयोग किया है, वहीं 'loud surgue', 'rough verse', 'sounding shore' और 'torrent roar' के लिए घोष ध्वनियों 'प्रबल प्रवाह', 'रोहित तट' और 'भैरव तरंग' का प्रयोग किया है।

(8) छंद-योजना

काव्यानुवाद के संदर्भ में अगली समस्या लक्ष्य भाषा में काव्यत्व की रक्षा करने से जुड़ी है। काव्यत्व की रक्षा से अभिप्राय सिर्फ यह नहीं है कि स्रोत भाषा के छंद, संगीत और अन्य लावण्य गुणों की रक्षा लक्ष्य भाषा में की जाए, बल्कि लक्ष्य भाषा

के ही छंद, संगीत आदि के सम्मिलित प्रयोग से है। प्रायः स्रोत भाषा और लक्ष्य भाषा के छंद-विधान एक जैसे नहीं होते और उन्हें अनुवाद में ज्यों-का-त्यों सुरक्षित रख पाना कठिन होता है। उदाहरण के लिए, हिंदी अनुवाद में हिंदी का कवित्व या सवैया छंद का प्रयोग नहीं किया जा सकता। यह ठीक है कि अनुवाद सछंद रचना को निष्छंद में लिख सकता है, परंतु निष्छंदता में भी भाव अथवा अर्थ की गति को बनाए रखना अति आवश्यक होता है। इस प्रकार का असफल उदाहरण बी.एल. साहनी द्वारा किया गया कामायनी का अंग्रेजी का अनुवाद है और सफल उदाहरण सर विलियम एटकिंस द्वारा किया गया रामचरितमानस का अंग्रेजी अनुवाद है।

हिंदी में अनूदित अधिकांश रचनाओं के अध्ययन से ज्ञात होता है कि विभिन्न अनुवादकों ने अपनी रुचि एवं सुविधा के अनुसार छंदों का प्रयोग किया है। इन्हें प्रमुख रूप से तीन प्रकारों में विभाजित किया जा सकता है -- एक, ऐसे अनुवादक, जिन्होंने मूल रचना के छंद-विधान को ज्यों का त्यों रखा है, दूसरे ऐसे अनुवादक, जिन्होंने मूल से भिन्न छंद-योजना का प्रयोग किया और तीसरे ऐसे अनुवादक, जिन्होंने मुक्त छंद का प्रयोग किया है। प्रश्न उठता है कि सफल अनुवादक किसे कहा जाए? लेकिन याद रखना होगा कि सफलता का मापदंड केवल मूल के छंद-विधान का अंतरण नहीं है। स्थिति तीनों में कोई भी हो, लेकिन जब तक छंद के साथ-साथ अर्थ-तत्त्व का संप्रेषण नहीं होगा, उसे सफलता की कोटि में नहीं रखा जा सकता। स्पष्ट है कि सफलता की इस कोटि में बहुत कम रचनाएँ आ पाएँगी। अनुवादक को छंद-परिवर्तन की छूट तो दी जा सकती है, लेकिन अर्थ को सुरक्षित न रख पाने की कीमत पर नहीं। हर्ष का विषय है कि हिंदी में अनूदित अधिकांश रचनाओं में अनुवादकों ने छंद प्रयोग करने की छूट तो अवश्य ली है; लेकिन ऐसी स्थिति नहीं है कि इस प्रयास में मूल रचना का भाव अथवा अर्थ-तत्त्व पीछे छूट गया हो। अधिकांश अनुवादकों ने हिंदी की प्रकृति के अनुसार छंद प्रयोग करते हुए अपने अनुवादों में अर्थ-तत्त्व एवं छंद का सफल प्रयोग किया है। उपर्युक्त तीनों स्थितियों के उदाहरण नीचे दिए जा रहे हैं। पहली स्थिति अर्थात् मूल के छंद-विधान को ज्यों-का-त्यों सुरक्षित रखने का उदाहरण हमें फिट्ज्जेराल्ड की ज्रुबाइयात उमर खैयाम' के मैथिलीशरण गुप्त द्वारा किए गए अनुवाद में देखने को मिलता है :

And those who husbanded the Golden Grain,
And those who flung it to the Winds like Rain,
Alike to no such aureate Earth are turn'd
As, buried once, Men want dug up again.[23]

वे कि जिन्होंने लाख यत्न कर भारी स्वर्ण-राशि जोड़ी,
और जिन्होंने जलधारा-सी वह सब स्वयं बहा छोड़ी।

बनती नहीं अंत में ऐसी हेमधूलि उन दोनों की,
गड़ने पर उखाड़ने की फिर जाय जनों से जो गोड़ी।[24]

प्रस्तुत काव्यांश से स्पष्ट है कि गुप्त जी ने मूल के अर्थ एवं शिल्प को अनुवाद में सफलतापूर्वक सुरक्षित रखा है। मूल की भाँति ही उन्होंने प्रथम, द्वितीय और चतुर्थ चरण में तुकांत -- (Grain/Rain/again) जोड़ी / छोड़ी / गोड़ी -- का प्रयोग किया है और तृतीय चरण स्वाधीन रखा गया है।

दूसरी स्थिति का उदाहरण अर्थात् जहाँ के छंद से भिन्न छंद का प्रयोग किया गया है, हमें फिट्ज्जेराल्ड की 'रुबाइयत उमर खैयाम' के पंडित बलदेव प्रसाद मिश्र द्वारा किए गए हिंदी अनुवाद में देखने को मिलता है :

कुछ ने दिया सुवर्ण कणों के संचय में ही अपना ध्यान।
तथा किसी ने दूर उड़ाया, उसको कहलाकर मतिमान।
दोनों ही उठ गए एक से, दोनों की बन बैठे मौन।
मायामय सुवर्ण अवनी पर कहो लौटकर आया कौन?[25]

यहाँ स्पट है कि अनुवादक ने मूल के छंद का प्रयोग करते हुए वीर छंद का प्रयोग किया है। पर फिर भी अर्थ और शिल्प को सुरक्षित रखने में सफल हुआ है।

तीसरी स्थिति का उदाहरण अर्थात् जहाँ अनुवादक छंदबद्ध रचना का अनुवाद छंद-मुक्त रूप में करता है, हमें डब्ल्यू.बी. यीट्स की बच्चन द्वारा हिंदी में अनूदित कविता में देखने को मिलता है :

Dance there upon the shore;
What need have to care.
For wind or water's roar?
And tumble out your hair.
That the salt drops have wet.[26]

नाचे जाओ सिंधु-तीर पर
तुमको क्या परवाह
तरंगें और हवाएँ गरज रही हैं?
खारी बूँदों से भीगी अलकें लहराओ। नाचे जाओ।[27]

स्पष्ट है कि छंद-मुक्त होने पर भी इसमें भाव एवं शिल्प, दोनों का निर्वाह हुआ है।

(9) रस-योजना

काव्यानुवाद के संदर्भ में अगली समस्या रस-योजना से संबंधित है। मूल रचना में लेखक ने जिस भाव-विशेष पर बल दिया हो, वह अनुवाद में भी अवतरित होना चाहिए। ऐसा न होने पर अनुवाद असफल ही कहा जाएगा। मूल रचना में विभिन्न

प्रकार के रसों का संयोजन हो सकता है, जैसे शृंगार, शोक, क्रोध, उत्साह आदि। अतः अनुवादक को भी ऐसे ही भावों का निरूपण अपने अनुवाद में करना चाहिए। इसे निम्नलिखित उदाहरणों की सहायता से समझा जा सकता है। पहला उदाहरण डब्ल्यू.बी. यीट्स की कविता से है, जिसमें प्रेमियों के हृदय में वियोग की असहनीय स्थिति का वर्णन किया गया है :

मूल : The hour of the waning of love has beset us,
And weary and worn are our sad souls now;
Let us part, ere the season of passion forget us,
With a kiss and a tear on thy drooping brow.[28]

हिंदी अनुवाद : और प्यार ढलने की बेला घिर आई है --
मन उदास है,
प्राण थके हैं,
जी भारी है।
जो बसंत आने वाला है
हमें न बिलकुल ही बिसरा दे,
एक-दूसरे से, आओ, हम आज विदा लें,
चुंबन लेकर
अध-सूखे अधरों से
अध-भीगी पलकों पर।[29]

बच्चन जी, जो कि स्वयं प्रेम-भाव के कवि हैं, के द्वारा विरह-वेदना को शब्दों के माध्यम से साकार रूप देना एक सफल अनुवाद का नमूना है। लगता ही नहीं कि यह अनुवाद किया गया है। मूल के विरह-भाव को इस प्रकार अनुवाद में प्रस्तुत करना एक सफल अनुवादक के ही बस की बात है। यद्यपि अनूदित अंश मूल की अपेक्षा कम अलंकृत है, फिर भी भाव की दृष्टि से यह उतना ही सफल है। अंग्रेजी के काव्यांशों 'the hour of the waning love', 'the season of passion', 'let us part', 'on drooping brows', 'weary sad souls' में निहित विरह-वेदना को हिंदी की वैसी ही भावानुकूल शब्दावली में 'प्यार ढलने की बेला', 'जो बसंत आने वाला है', 'आओ हम आज विदा लें', 'अध-भीगी पलकों पर', 'मन उदास है, प्राण थके हैं, जी भारी है।' अनुवादक ने अत्यंत सफलतापूर्वक अनूदित किया है।

दूसरा उदाहरण टामस ग्रे की प्रसिद्ध कविता 'एलेजी रिटन इन ए कंट्री चर्चयार्ड' से उद्धृत करना चाहूँगा, जिसमें शोक का पूर्ण परिपाक हमें देखने को मिलता है। इसका अनुवाद श्री कामता प्रसाद गुरु ने 'ग्रामीण विलाप' शीर्षक से किया है। इस कविता

में कवि अपने गाँव के साधारण प्रकृति के किसानों के साथ निर्दयी भाग्य द्वारा किए गए दुर्व्यवहार से शोकाकुल है और वह अपने मनोवेगों को अत्यंत करुण-भाव से अभिव्यक्त करता है। अनुवादक ने भी इन भावों को अपने अनुवाद में उतारने की सफल कोशिश की है। यहाँ दोनों काव्यांश प्रस्तुत हैं :

मूल : Beneath those rugged elms, that yew-tree's shade,
Where heaves the turf in many a mould'ring heap,
Each in his narrow cell for ever laid,
The rude forefathers of the hamlet sleep.[30]

हिंदी अनुवाद : उन पेड़ों के पास खेत-सा है जो फैला,
पंचतत्व में मिला पड़ा है वहाँ अकेला।
ठौर-ठौर में एक-एक ग्रामीण सयाना।
तज निज घर परिवार भूमि रथ वाहन नाना।[31]

उपर्युक्त विवेचन के आधार पर कहा जा सकता है कि काव्यानुवाद एक कठिन व्यापार है और इसके लिए अनुवादक में कुछ विशेष गुणों का होना अति आवश्यक होता है; क्योंकि उसे काव्यानुवाद में आने वाली सभी प्रकार की समस्याओं के समाधान की खोज करनी होती है। काव्यानुवाद किसी भी अनुवादक के लिए एक गंभीर चुनौती के रूप में प्रस्तुत होता है। यह एक जटिल कार्य है, क्योंकि मूल भाषा की साहित्यिक संवेदना अपनी प्रकृति में इतनी विशिष्ट होती है कि उसका दूसरी भाषा में अवतरण प्रायः असंभव-सा होता है मूल रचनाकार विभिन्न काव्यगत शिल्पों द्वारा जिस अर्थ-विशेष को संप्रेषित करना चाहता है, उसे अनुवाद में अवश्य ही सुरक्षित रखना पड़ता है और वह भी शिल्पगत सौंदर्य को कम-से-कम क्षति पहुँचाकर। इसी कारण स्रोत भाषा में भाव और शैली के आधार पर अंतर काव्यानुवाद की स्वाभाविक प्रक्रिया का परिणाम है, जो आधुनिक अनुवाद-चिंतन के संदर्भ में काव्यानुवाद की उस संकल्पना को दर्शाता है जिसे पुनःसृजन कहा जाता है।

❑

संदर्भ

1. श्री अरविंद, ऑन ट्रांसलेटिंग कालिदास : कलेक्टिड वर्क्स, अंक दो, पांडिचेरी, 1970
2. टी.एस. इलियट, एज़रा पाउंड के काव्य-संग्रह, 'सलेक्टिड पोएम्स' की भूमिका सें
3. फिट्ज्जेराल्ड द्वारा कॉवेल को लिखित दो पत्रों से अनूदित
4. हरिवंशराय बच्चन, शेक्सपीयर के मैकबेथ के अनुवाद के प्रथम संस्करण की भूमिका से

5. धर्मवीर भारती, 'देशांतर' की भूमिका से
6. फिट्ज्जेराल्ड, 'रुबाइयात उमर खैयाम', रुबाई 23
7. हरिवंशराय बच्चन, 'खैयाम की मधुशाला', रुबाई 23
8. दि कलेक्टिड पोएम्स ऑफ डब्ल्यू.बी. यीट्स, पृष्ठ 102
9. हरिवंशराय बच्चन, मरकत द्वीप का स्वर, पृष्ठ 68
10. दि पोइटिकल वर्क्स ऑफ कीट्स, पृष्ठ 237
11. यतेंद्र कुमार, महाकवि वर्डस्वर्थ का काव्यलोक, पृष्ठ 80
12. टी.एस. इलियट, दि वेस्टलैंड
13. दि बेस्ट ऑफ पोप, पृष्ठ 90-91
14. बाबू जगन्नाथ दास 'रत्नाकर', समालोचनादर्श, पृष्ठ 185
15. दि बेस्ट ऑफ पोप, पृष्ठ 63
16. बाबू जगन्नाथ दास 'रत्नाकर', समालोचनादर्श, पृष्ठ 29-30
17. नगीनचंद्र सहगल, काव्यानुवाद : सिद्धांत और प्रयोग, पृष्ठ 185
18. (संपा.) फिलिप बेन, सेलेक्शन फ्रॉम वर्डस्वर्थ, पृष्ठ 77
19. यतेंद्र कुमार, महाकवि वर्डस्वर्थ का काव्यलोक, पृष्ठ 63
20. नगीनचंद्र सहगल, काव्यानुवाद : सिद्धांत और प्रयोग, पृष्ठ 185
21. दि बेस्ट ऑफ पोप, पृष्ठ 63
22. बाबू जगन्नाथ दास 'रत्नाकर', समालोचनादर्श, पंक्तियाँ 381-388
23. फिट्ज्जेराल्ट, रुबाइयत उमर खैयाम, रुबाई 15
24. मैथिलीशरण गुप्त, रुबाइयात उमर खैयाम, पृष्ठ 37
25. पंडित बलदेव प्रसाद मिश्र, मादक प्याला, पृष्ठ 36
26. दि कलेक्टिड पोएम्स ऑफ डब्ल्यू.बी. यीट्स, पृष्ठ 136
27. हरिवंशराय बच्चन, मरकत द्वीप का स्वर, पृष्ठ 78
28. दि कलेक्टिड पोएम्स ऑफ डब्ल्यू.बी. यीट्स, पृष्ठ 16
29. हरिवंशराय बच्चन, मरकत द्वीप का स्वर, पृष्ठ 20
30. टॉमस ग्रे, एलेजी रिटन इन ए कंट्री चर्चयार्ड, पंक्तियाँ 13-16
31. कामता प्रसाद गुरु, ग्रामीण विलाप, पंक्तियाँ 13-16

लेखक मंडल

मु. इलियास 'नवैद' गुन्नौरीः फारसी भाषाविद्।

राजेंद्र प्रसादः हिंदी कहानीकार और हिंदी साहित्य में नई कहानी क्रांति के प्रणेता।

डॉ. श्रीनारायण समीरः भाषा व अनुवादविद्, निदेशक, केंद्रीय अनुवाद ब्यूरो।

डॉ. हरीश कुमार सेठीः इंदिरा गांधी राष्ट्रीय मुक्त विश्वविद्यालय में सहायक हिंदी प्रोफेसर।

डॉ. एल. सुनीताबाईः कोंकणी कवियत्री।

सुरेंद्र कुमार दीक्षितः भाषा व अनुवादविद्।

डॉ. कुसुम अग्रवालः भारतीय अनुवाद परिषद से आरंभ से संबद्ध और केंद्रीय हिंदी संस्थान में कार्यरत।

रमेश चंद्रः सेवानिवृत्त राजभाषा अधिकारी, मानक भवन।

डॉ. सरोजनी प्रीतमः गद्य और पद्य में हास्य-व्यंग्यकार।

डॉ. नीलिमा सिंहः हिंदी कवियत्री।

डॉ. अजित कुमारः प्रतिष्ठित समालोचक, साहित्यकार व अनुवादविद्।

डॉ. बीना श्रीवास्तवः भाषा व अनुवादविद्, सत्यवती कॉलेज, दि.वि.।

डॉ. सुरेश सिंहलः प्रतिष्ठित अनुवादविद्, पूर्वएसोसिएट प्रोफेसर, एम.डी., रोहतक विश्वविद्यालय।